नयी कहानी का समाजशास्त्र

डॉ. ऋचा सिंह
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
श्री हरिश्चन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय
वाराणसी

विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी-1

भूमिका

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे शोध के विषय के लिये चिंतित थी। गुरुदेव डॉ० रामनरायन शुक्ल ने सहज भाव से नयी कहानी का समाजशास्त्र विषय सुझाया था। डॉ० रामकली सर्राफ के साथ इस विषय पर शोध कार्य प्रारम्भ किया पर 'नयी कहानी' का नाम प्रारम्भ होने का समय दूसरे प्रस्तोता कथाकारो को लेकर बेहद उलझन से गुजरना पड़ा। हिन्दी साहित्य के सुधी अध्येता जानते और मानते है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद रचनाकारो का मोह भंग होता है और वे जिस सुखद युतोपिया मे रम रहे थे वह धराशायी हो जाती है, समाजवादी समाज के गठन की चर्चा उठती है और इसी समय आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ० राममनोहर लोहिया, डॉ० जय प्रकाश नारायण ने युवा मानस को, भारतीय मध्यवर्ग को झकझोर देते है। अज्ञेय, भारती, प्रो रघुवश, विजयदेव नारायण शाही, शिव प्रसाद सिह, फणीश्वरनाथ रेणु मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव कमलेश्वर मार्कण्डेय आदि ने इस परिवर्तन को स्वीकार किया तथा उसे साहित्यिक अभिव्यक्ति दी। समीक्षा और रचना का आधार दिया।

इधर साहित्य को समाजशास्त्रीय सोच एवं समीक्षा के आधार पर जाचने की दिशा मे पाश्चात्यचिंतको की सरणि पर डॉ० मैनेजर पाण्डेय, डॉ० बच्चन सिंह आदि ने आधार भूमि तैयार की थी और समाजशास्त्रीय समीक्षा की पद्धति को समझने, समझाने का भरसक प्रयास किया था। इनके अवदान को स्वीकारती हूँ।

समाज मे रहकर समाज के लिये ही साहित्यकार सृजन सलग्न होता है इस पर बड़ा गंभीर विचार एवं अध्ययन पाश्चात्य विचारको ने किया था पर हिन्दी मे नया कुछ करने की पहल ज ने. वि. दिल्ली, का० हि० वि० वि० वाराणसी इलाहाबाद वि० वि० और पटना भोपाल के लोग ही करते है।

इसी क्रम मे समाज और साहित्य के सरोकारो के समझने के लिये प्रारम्भ मे गुरुजनो के आधार पर पाश्चात्य चितको की अवधारणा को हमने समझने का प्रयास किया है।

मानवीय सबंध और उसके निर्वाह की स्वीकृति विधि ही यदि समाज है तो उसके उपादानो, समुदाय, समिति, व्यक्ति, परिवार, धर्म, प्रथा एव सस्था की स्वाभाविक सरचना

को समझना जाना चाहिये।

हमने नयी कहानी के विकास तथा उसके ऐतिहासिक क्रम को उठाने का सत्प्रयास किया है। देश-विभाजन सीमा-विवाद, दगा, विस्थापन, भाषा, गरीबी, बेरोजगारी नगरीकरण, यांत्रिकता, कुंठा, सत्रास, हताशा के भोग हुये यर्थाथ पर रचित नयी कहानी नारी अस्मिता और सरोकारो से जुड़कर प्रेम त्रिकोण और विघटन से सराबोर हो उठी थी। हमने कथाकारो की रचना प्रक्रिया के साथ-साथ समाज मे घटित होने वाले परिवर्तन का भी जिक्र उठाया है। यद्यपि डॉ० मैनेजर पाण्डेय, डॉ० रघुवश, डॉ० बच्चन सिह, जैसे सुधी समीक्षक समाजशास्त्रीय समीक्षा को पूर्ण रूपेण लागू होने वाली एक मात्र समर्थ समीक्षा पद्धति मानने के पक्षधर नही है पर यह पद्धति भाषा के बाद सबसे कारगर औजार के रुप मे स्वीकृत है।

यह पुस्तक यदि साहित्य प्रेमियो, समीक्षको और नवअध्येता छात्र-छात्राओ को किंचित भी सन्तोष दे पाये तो यह मेरा अहो भाग्य होगा। जिन चिन्तको विद्वानो आचार्यो को उद्धृत किया है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ और अपनी संस्था के प्रबन्धक श्रीयुत श्यामसोहन अग्रवाल तथा प्राचार्य डॉ० पी० एन० तिवारी की स्नेह वात्सलता के प्रति विनत हूँ।

ऋचा सिंह

आभार

प्रस्तुत पुस्तक को रुपाकार देने की कथा लम्बी है, और इस दिशा मे प्रयास के प्रेरक भी मेरे अपने शुभेच्छु एवं परिजन ही है, पर 'बदौ प्रथम गुरुन के चरना' को परम्परा मे सर्वप्रथम का० हि० वि० वि० के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. चौथीराम अपनी शोध निर्देशिका डॉ० रामकली सर्राफ, प्रो० श्रीनिवास पाण्डेय, डॉ० अवधेश प्रधान, डॉ० रामसुधार सिह, डॉ० विजय बहादुर सिह, डॉ० मनोज सिह, डॉ० विभा सिह को सादर नमन एव विनम्र प्रणाम अर्पित करती हूँ यह जो कुछ भी है जैसा भी बन पड़ा है उन्ही का दाय है, मैं तो प्रस्तोता मात्र हूं।

इसलिये 'तेरा तुझको सौपता क्या लागे है मोहि' अपने माता-पिता श्रीमती प्रेमबाला सिंह, डॉ० सत्येन्द्र लीलावती, डॉ० नरसिंह बहादुर सिंह की वदना करती हूँ जो उद्‌भव विकास के आस और सहज विश्वास के प्रस्तोता है। प्रेरक डा गया सिह, डॉ० बलवीर सिह, डॉ० अमरेश त्रिपाठी, डॉ० पकज सिह, डॉ० राघवेन्द्र सिह, डॉ० सत्यप्रिय सिह, अशोक एवं भाई सत्यमित्र की प्रेरणा के प्रति आभारी हूँ। पति डॉ० एस० बी० सिह को आभार की औपचारिकता से उपर का सहधर्मी मानती हूँ क्योकि उनके बिना सहयोग के एक पग रखना भी सम्भव नही था। अपने परिवार के माला वन्दना व अन्य सदस्यो आदि के सहयोग के प्रति उन्हे धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ अपने पितामह श्री गजनाथ सिह एव स्व बाबू रामाश्रय जी की मुदिता के प्रति श्रद्धा विनत हूँ और अन्त मे अपने प्रकाशक को उनकी सहज सहयोगिता के प्रति सम्मान अर्पित करती हूँ।

पूर्व पुरुषो की असीम भक्ति एव परमपिता और रघुकुल के देवताओ को श्रद्धा सहित।

–[illegible] सिंह

अर्पण

उन्हे जिन्होने जनम दिया है,
ध्वनि, आखर लिपि वरन दिया है,
कदम, कदम चलना सिखलाया
मिलना, जुलना हॅसना, खिलना
उस समाज को गॉव, ठॉव को,
महाद्वीप के शीर्ष सरीखे
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के
परिजन, गुरुजन, धूप-छॉव को।
पितरो लीला-नरसिहम को,
'शिव' के महावचन की साक्षी
चारु सरीखे सहज नाव को
विनत भाव से यह अर्पित है।

–डॉ० ऋचा सिंह

विषयानुक्रमणिका

पहला अध्याय

साहित्य के विवेचन की समाजशास्त्रीय पद्धति — 1-30

साहित्य और समाज, साहित्य विवेचक और उनकी दृष्टियाँ, साहित्य विवेचन की दृष्टियाँ।

दूसरा अध्याय

साहित्य-स्वरूपों का समाजशास्त्रीय अर्थ — 31-85

समाज की शास्त्रीय अवधारणा, समाज अर्थ, विवृत्ति और स्थिति, व्यक्ति और समाज, साहित्य और समाज, भारतीय समाज की स्थिति, वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में सामाजिक चेतना, हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना का स्वरूप।

तीसरा अध्याय

हिन्दी कहानी के विकास-क्रम की ऐतिहासिक-सामाजिक दृष्टि — 86-106

हिन्दी कहानी का राजनीतिक परिदृश्य, संस्कृति-समाज और कहानी, कहानी और नयी कहानी, नयी कहानी सामाजिक परिवेश के सन्दर्भ में, नयी कहानी ग्राम एवं नगर-बोध।

चौथा अध्याय

नयी हिन्दी कहानी तथा उसके प्रमुख कहानीकार — *107-136*

नयी कहानी का धरातल, प्रमुख कथाकार।

पाँचवाँ अध्याय

नयी कहानी के वस्तुत्व का समाजशास्त्रीय विश्लेषण — 137-167

नयी कहानी का परिवेशगत यथार्थ, नयी कहानी की चेतना और व्यक्ति-मन की उलझन, नौकरीपेशा नारी की स्थिति, विधवाओं की सामाजिक स्थिति, प्रेमत्रिकोण एवं विघटन, वस्तुत्व की समीक्षा।

छठाँ अध्याय

नयी कहानी का सरचनागत समाजशास्त्रीय विवेचन — 168-194

नयी कहानी की भाषा-सरचना, नयी कहानियो में विविध प्रयोग, शैलीगत प्रयोग।

उपसंहार — 195 200

सहायक ग्रन्थ-सूची — 201-203

1

साहित्य के विवेचन की समाजशास्त्रीय पद्धति

समाज

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यह सही है कि मनुष्य ने समाज का निर्माण किया किन्तु समाज के निर्माण के बाद मनुष्य के निर्माण मे समाज की भूमिका प्रधान हो गयी। प्रश्न यह है कि, व्यक्ति समाज में किन स्तरों पर निर्भर करता है और उसका स्वरूप क्या है? मनुष्य का जन्म ही सामाजिक सम्बन्धों और उसकी निश्चित संस्था की देन है। व्यक्ति इसी मे जन्म लेता है, बड़ा होता है, सीखता है। साथ ही समाज उसके व्यवहार का मापदण्ड निश्चित करता है, जिसके अनुसार आगे चलकर व्यक्ति समाज से स्वीकार मूलक अभियोजन स्थापित करता है।

परिवार वह पहली इकाई है, जिसमे मनुष्य सामाजिक सम्बन्धों की सीख लेता है। 'सामाजिक व्यवस्था वह स्थिति है, *जिसमे समाज की विभिन्न क्रियाशील इकाईयाँ आपस मे तथा समग्र समाज के साथ एक अपूर्व ढंग से सम्बन्धित होती है।*' समाज *व्यक्ति के अस्तित्व की एक ऐसी शक्ति बन जाता है कि उससे अलग व्यक्ति की कल्पना* सम्भव नही।

समाज मे ही व्यक्ति का विकास होता है। व्यक्ति के प्रति समाज के सम्बन्धो के फलस्वरूप सामाजिक संगठनात्मक व्यवस्थाएं उत्पन्न होती हैं, जैसे— आर्थिक, राजनीतिक, सास्कृतिक आदि। 'समाज सामाजिक सम्बन्धो का सचरित स्वरूप है। समाज वह सामान्यीकृत व्यवस्था है, जो अपनी सभी इकाईयो को अन्त क्रिया द्वारा एकीकृत करती है।'[1]

साहित्य और समाज

साहित्य के विवेचन की समाजशास्त्रीय पद्धति पर विचार करने और इस विषय को पूरी गहराई तथा व्यापकता से जानने और समझने के पूर्व साहित्य और समाज की मूल अवधारणा को साफ कर लेना बेहद जरूरी है। 'साहित्य समाज का दर्पण है, साहित्यकार समाज का अगुवा है' अथवा 'साहित्य समाज की मशाल है' आदि अनेक ऐसे सूक्ति वाक्य इस क्षेत्र मे प्रचलित हैं जिनके द्वारा दोनो के गहरे सम्बन्धो का जिक्र

१ *समाजविज्ञान परिचय, पृ०३०*

किया जाता रहा है, ताकि पाठक, श्रोता, भावुक के मन मे साहित्य तथा समाज के गहरे सम्बन्धो को उतारने समझाने का उपक्रम होता रहा है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा साहित्य मानव की मांगलिक अभिव्यक्ति को कहा जाता रहा है, यह एक सामान्य समझ रही है। भारत के साहित्य को ध्वनि, अलंकार, गुण, गीति, वक्रोक्ति के आधार पर विवेचित करने की परम्परा रही है। जबकि पाश्चात्य समीक्षा मे साहित्य को कल्पना, त्रिकमगति, संवेदना, प्रतीक, बिम्ब, प्रभाव, औदात्य, अभिव्यंजना आदि अनेक विभावनो के आधार पर समझा जाता रहा है। क्रम चाहे जो रहा हो पर साहित्य के विवेचन के लिये रचना, रचनाकार, पाठक, भावुक तथा देशकाल, परिस्थिति, परिवेश एवं अभिव्यक्ति निरन्तर महत्वपूर्ण रही है। साहित्य का महत्व समाज के लिये समाज मे ही उठता तथा उभरता रहा है। समाज ही साहित्य की श्रेष्ठता का निर्धारक और मानक है, यह सोच भी महत्वपूर्ण है। बहरहाल हम विषय को थोड़ा और खोल कर रखने का प्रयास करेगे और चाहेगे कि समाज और साहित्य के अन्तर्बाह्य सम्बन्धो का कुछ और खुलासा हो सके। मनुष्य ही समाज का निर्माता है पर समाज बन गया तो वही मनुष्य का स्वामी हो गया, उसकी गतिविधियो का नियन्ता हो गया। मनुष्य ने अपनी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विभिन्न संस्थाओ का निर्माण किया जैसे परिवार, गाँव, राज्य, समिति, सघ आदि किन्तु परिवार मे मनुष्य का जन्म ही विविध सामाजिक सम्बन्धों मे जुड़ गया है। व्यक्ति समाज मे जन्म लेता है, पढ़ता और समाज मे सीखता है, परिवार से ही मनुष्य सामाजिक सम्बन्धो की शिक्षा लेता है।

'सामाजिक व्यवस्था वह स्थिति है जिसमे समाज की विभिन्न क्रियाशील इकाईयाँ आपस मे तथा समग्र समाज के साथ एक अपूर्व ढंग से सबधित होती है'।[1] गाँव, शिक्षणसंस्थाएँ और विविध आयोजन—त्योहार, गोष्ठी, समितियो से व्यक्ति का व्यवहार संघटित होता है। समाज मे ही व्यक्ति विकसित होता है, इसी विकास क्रम मे व्यक्ति के अन्त सम्बन्धो एवं उसकी आवश्यकताओ के प्रतिफल स्वरूप अनेक सगठनात्मक व्यवस्थाएं आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आदि रुप और आकार ग्रहण करती हैं, इन व्यवस्थाओं के सम्पूर्ण योग को ही हम सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।

सामान्यत समाज सामाजिक सम्बन्धो का सचरित स्वरूप है। समाज वह सामान्यीकृत व्यवस्था है जो अपनी सभी इकाइयो को अन्तर्क्रिया द्वारा एकीकृत करती है। आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व्यवस्था से निर्मित सम्पूर्ण समाज मे जब विविध सामाजिक सरचनाएँ व्यापक मानवीय हितो के स्थान पर व्यक्ति या व्यक्ति समूहो का हित संयोजन करती है तो समाज मे विविध वर्ग पैदा होते है। सामाजिक सरचना का मूल आधार निश्चय ही आर्थिक होता है। राजनीतिक शिक्षा, कला, साहित्य आदि संरचना के बाह्य

[1] *बेसिक सोसियोलॉजिकल सिद्धान्त-न्यूयार्क, १९४१ एस डेन्स का अनुवाद।*

ढाँचे होते है। सामाजिक परिवर्तन इसी अर्थ के आधार पर होते हैं, यह परिवर्तन चक्रिय और रेखात्मक दोनो प्रकार का माना गया है। चक्रिय स्थिति को स्वीकार करने वाले लोगो का मानना है कि समाज मे भी प्रकृति की ही भाति परिवर्तन चाक्रिक होता है। पाश्चात्य चिन्तक स्वेगलर ने भी चक्रिय स्थिति को स्वीकार किया है। टायसन और सोरोकिन जैसे विचारक ने विकास की तीन सामाजिक, सास्कृतिक स्थितियो को स्वीकार किया है। 'स्पेन्सर' ने विकासवाद के लिये शक्ति तथा पदार्थ दो तत्वो की अनिवार्य स्थिति को स्वीकार किया है। उन्होंने "शक्ति को गतिमान एव शाश्वत दोनो माना है, पदार्थ के बारे मे उनका विचार है कि पदार्थ के परिवर्तन मे केवल रूप भाव बदलता है, उसका कभी विनाश नही होता। सामाजिक परिवर्तन के रेखीय सिद्धान्त मे मार्क्स का सिद्धान्त महत्वपूर्ण है।"

साहित्य मे समाजशास्त्रीय सोच अति प्राचीन होते हुए भी विवेचन के कारगर हथियार के रूप मे नये तेवर तथा नये अन्दाज के साथ उभरी है। इस पद्धति मे समाजशास्त्र एक प्रतिमान के रूप मे कार्य करता है। इस सबध मे प्रसिद्ध समीक्षक डॉ० बच्चन सिह का कथन है कि "लेखक साहित्य का स्रष्टा है। साहित्य मे उसके व्यक्तित्व का प्रतिफलन होता है अत साहित्य को समझने के लिए लेखक के व्यक्तित्व को रूपायित करने वाले तत्वो का विश्लेषण जरूरी है।"[1]

रचनाकार या लेखक समाज का द्रष्टा, उपभोक्ता, निर्माता और प्रवक्ता होता है। वह समाज मे ही जन्म लेता है, सीखता, अनुभव करता है, बढता है, पढता है और अन्ततत समाज मे रहकर, समाज के लिए सृजन करता है एतदर्थ उसके बहुआयामी सन्दर्भ, सम्पर्क समाज से जुड़ते और उसी मे उसी के लिए अभिव्यक्ति पाते है। समाज की बुनावट से साहित्यकार की चेतना निर्मित होती है अतएव साहित्य ही अन्तत समाज को अभिव्यक्ति देता है उसे परिष्कृत, अग्रगामी और प्रेरित भी करता है।

शैली, फिलीप, सिड़नी और रूचके जैसे चिन्तको का मानना है कि "साहित्य समाज का नियामक होता है।"

मैथ्यूआर्नल्ड का कथन है कि- "साहित्य जीवन की समीक्षा है। पाश्चात्य चिन्तकों का समूह जीवन को एक प्रक्रिया मानकर उसे समाज को आकर देने वाली शक्ति मानता रहा है, जबकि मार्क्सवादी चिन्तक द्वन्द्व के वैज्ञानिक विश्लेषण की सायास वास्तविकताओ के चित्रण पर बल देते हुए से प्रतीत होते है। मार्क्सवादी समाजशास्त्र के अनुसार साहित्य समाज के प्रति विद्रोह है। साहित्य मे कुठा, सत्रास, मूल्यहीनता और निरर्थकता का बोध इसी निष्फल विद्रोह के कारण आता है। राबर्ट, एस्कारपिट, एच० डी० डकन, जोसेफ रूचेक का यह विश्वास रहा है कि लेखक, पाठक और रचना के त्रिकोण द्वारा

१ सोसियोलॉजी आफ नावेल-लुसिए गोल्डमान का अनुवाद, पृ० ७।

साहित्य-सृजन की समग्र प्रक्रिया को समझा जा सकता है। इस त्रिकोण मे मनोवैज्ञानिक, नैतिक, राजनैतिक, आर्थिक समस्याएँ सन्निहित होती है।

आगे चलकर लुसिए गोल्डमान ने व्यापक चेतना की कल्पना की जो पूरे सामाजिक वर्ग की मानस संरचना का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने इसके दो भेद स्वीकार किए है— १- वास्तविक चेतना, २- सामान्य चेतना । वे मानते हैं कि 'सार्यक रचना के लिए उपयुक्त सुसंगत एवं व्यापक विश्वदृष्टि का निर्माण सम्भाव्य चेतना से होता है। वे मानते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था मे सब कुछ वस्तु बनता जा रहा है। खण्ड-खण्ड होकर टूट रहा है, जिसके कारण नजरिया भी खण्डित हो रही है। अतएव चेतना की समग्रता को ही संरचना कहा जा सकता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री दुर्खीम और वेबर की अपनी अध्ययनगत सीमाएं है। उन्होने साहित्य के समाजशास्त्र को पूर्णता मे नहीं देखा है। उनकी यह खण्डित दृष्टि ही उनकी सोच को अपर्याप्त बनाती है।

मानवीय सृष्टि के प्रारंभ से ही, जानने-खोजने तथा पहचानने की प्रक्रिया से जुड़कर मानव ने नाम,रूप, स्थिति तथा गुणो वाली सृष्टि की खोज की और अपनी अभिव्यक्तियो के द्वारा उसकी पुनर्रचना भी की है। मनुष्य ने अपने भीतर की खोज में प्रवृत्त होकर मानवीय संसारका सृजन किया तथा एक समाज की संरचना करते हुए मूल्यो और मान्यताओ का गम्भीर आधार भी प्रदान किया। समाज व्यक्ति, परिवार, समूह, गोत्र, ग्राम, कबीलो से होकर, धीरे-धीरे संगठित होता गया। आदिम मानव की समूह चेतना ही विकसित होकर व्यवस्थित होकर समाज बना होगा। विविध स्थितियो, समस्याओ और परिस्थितियो के बीच से गुजरते हुए अपनी भाषिक क्षमता को अधिक सक्षम और कारगर बनाते हुए आदिम जनो ने विविधता के बीच एकता तथा सामंजस्य के जो सूत्र खोजे वह मात्र भाईचारे का एक मजबूत आधार था। भाईचारा आघातभूत मानव-मूल्य का रूप है जिसे हम सामान्यतः प्यार कहते हैं। यही भाईचारा, सदाचार हमारे सामाजिक मूल्य हैं। सहजभाव से मूल्यो के स्वीकार के साथ परस्पर सम्बन्धो के स्तर पर रहने, जीने का अनुभव हमको बचपन से ही अपने परिवार-गाँव में मिलता रहा है। परस्पर प्यार-सम्मान है तो परिवार में सहयोग और सामंजस्य रहता है। इस प्रकार मनुष्य ने मूल्यों की खोज की है तथा जीवन के आधार रूप मे उन्हें स्थापित किया। दुनियाँ के सारे देशों, सभी संस्कृतियो मे करुणा, प्रेम तथा बन्धुत्व के आधार पर ही मानव-समाज की संरचना को स्वीकार किया जायेगा।

१. साहित्य मानव जीवन का आकलन करता है।

२. लुइस बोनाल्ड का कथन है 'साहित्य से मानवीय जीवन का बोध होता।

समाज की प्राथमिक इकाई है व्यक्ति। मनुष्य का जन्म, उसका पालन-पोषण, माता-पिता तथा परिवार के सहयोग के बिना सम्भव नही है। परिवार समाज संस्था की दूसरी

सीढ़ी है जहाँ से व्यक्ति सुरक्षा तथा संस्कार पाता है, शिक्षा, व्यवसाय, भरण-पोषण तथा विकास की असीम संभावनाएँ व्यक्ति को समाज का अनिवार्य अग घोषित करती है आज मानव समाज मे विघटन के कगार पर है। कबीले तथा कुटुम्ब से खण्डित हुआ आज का एकल परिवार भी अपने मूल स्वरूप को नही बचा पा रहा है। अधिक सुख की अभीप्सा तथा अधिकाधिक समेट लेने की दुर्निवार लालसा मे परिवार की हर इकाई असम्पृक्त एवं विछिन्न होती जा रही है। युवा पीढ़ी परिवार का दायित्व, अनुशासन स्वीकारने की मुद्रा मे नही है। इसलिए विवाह संस्था जो परिवार को संकल्पो, निश्चयो, कर्म तथा भोग की प्रतिज्ञाओ से बाँधती थी, अब बेमानी तथा बेअसर होती जा रही है, उन्मुक्त जीवन शैली की चर्चा कितनी ही नयी और बेहतर क्यो न लगे पर वह परिवार, समाज का विकल्प बन नही सकती।

समाज एक-दूसरे के लिये जीने की भावना, उदारता, क्षमा, दया, कृपा, सहयोग, साहचर्य और सहकर्म की पाठशाला है और यही उपर्युक्त गुणो का परीक्षण भी होता है पर समाज की प्राथमिक इकाई व्यक्ति स्वार्थ, अहंकार तथा सुखभोग की लिप्सा का शिकार होगा तो व्यक्ति की यह वस्तुवादी दृष्टि समाज एव हितकारी संस्थाओ का विघटन ही करेगी। तथाकथित आधुनिकता के नाम पर समाज के अग-अंग को तोड़ते जाना तथा उसे अपंग और एकागी बना देने की उस प्रक्रिया को तथाकथित बुद्धिजीवी भी देख रहा है, समाजशास्त्री भी चुप है, साहित्यकार भी चुप है तथा छद्म समाज शास्त्री भी बाना धरे सुधार की ढोल पिटता राजनेता भी गजब तो यह है कि शहरी समाज का धनाढ्य वर्ग, प्रशासक, नेता, सार्थक साहित्य, सच्चे सवाद, सही पहल की दिशा मे कोई कोई कदम नही उठाया जा रहा है।

साहित्य मानव का मानव के लिए सृजन है, मानव द्वारा अपने भावो को स्थिरता देने की भावना ने साहित्य को जन्म दिया, यह कथन महत्वपूर्ण है। मनुष्य की प्रतिज्ञा, प्रतिभा, कल्पना की प्रतिक्रिया तथा ज्ञान की द्विधा प्रतिक्रिया मे साहित्य का सृजन होता है। ज्ञान-भावना तथा संकल्प से मनुष्य रचनात्मक प्रतिक्रिया करता है। जिनका आनंदपरक, कल्याणपरक भाव ही साहित्य कहलाता है। साहित्य का शाब्दिक अर्थ होता है। सहितस्य भाव साहित्यं। यहाँ सह के साथ होना तथा हित के साथ होने का भाव मूल मे है। केन्द्रीय है। यहाँ 'धा' धातु के साथ 'क्त' प्रत्यय के सयोग से 'हित' के साथ साहित्य शब्द बनता है। 'हितेन सह सहितम्' की व्याख्या करे तो हित के साथ होना, अथवा जिससे सबका हित सम्मानित हो, का अर्थ ध्वनित होता है। सबका हित, समवेत हित ही साहित्य को समाज का अभिन्न सहचर सिद्ध करता है। साहित्य साथ-साथ चलने, एकदम हित की साधना से जुड़ कर समाज की अनिवार्यता से जुड़ता है। सहित होने का भाव सिर्फ हित ही नही साथ हित की बात करता है। एकत्र हुए

अनुभव एवं ज्ञानराशि के सचित कोष का हित के भाव से सायुज्य होना तथा समाज के लिये उसे अर्पित होना ही साहित्य है। अरबी का *अदब* तथा अंग्रेजी का *लिटरेचर* आदर, शिष्टता व विस्तार का मान कराते हैं। व्यापक अर्थ में साहित्य के अन्तर्गत अक्षरों, शब्दों, अभिव्यक्तियों की समस्त विधाय, सम्पूर्ण विस्तार निहित है। पर संकुचित अर्थ में वह मानव की काव्यात्मक, व्याख्यात्मक, आनन्द प्रदायक रचना-विधा या शैली का पर्याय है। *'शब्द कल्पद्रुम'* में श्लोकमय ग्रंथ का साहित्य कहा गया है। राजशेखर उसे शब्द तथा अर्थ के योग वाली विधा कहते हैं।

गंगा प्रसाद पाण्डेय साहित्य को विचारशील व्यक्ति की अमर अभिव्यक्ति कहते हैं।[1]

भारतीय साहित्य-शास्त्रियों ने *साहित्य* को अनेक रूपों में जानने, समझने का उपक्रम किया है।

आचार्य विश्वनाथ ने **'वाक्य रसात्मकं काव्यम्'** कह कर 'रस' को महत्त्व दिया। परन्तु आचार्य भामह आचार्य 'दण्डी' ने *अलंकारों* को महत्त्व देकर उसे ही काव्य की आत्मा कहा है। काव्यस्य आत्मा ध्वनि, वक्रोक्ति काव्य जीविनम् कहकर ध्वनि की उक्ति-वैचित्र्य को भी आचार्यों ने पर्याप्त महत्व दिया। साहित्य को आत्मा में आगे उसे *'हितं सन्निहितं तत् साहित्यम्'* अथवा *'सहित रसेन युक्तम् तस्य भाव साहित्यम्'* कह कर उसकी समाज सापेक्षता व सार्थकता का उद्घोष किया गया। हम सर्वतोभादवेन अध्ययन, मनन के पश्चात् इस निर्णय पर आकर ठहरते हैं कि साहित्य का चरम अभिप्रेत्य है मानव का हित साधन पर यह हित आनन्द से जब जुड़ता है, सायुज्य होता है तभी साहित्य की संज्ञा से अभिहित हो पाता है। रचनाकार यथार्थ का भवन करता है उसे कल्पना से संवलित करता है। वह भाषा में अनुभवों को समेट कर भाषा में ही सम्प्रेषित कर देता है।

पाश्चात्य साहित्य में साहित्य का उद्देश्य ही जीवन और समाज रहा है। इसी के समानान्तर कला, कला के लिये भी यहाँ पर्याप्त प्रचलित अवधारणा रही है। पाश्चात्य विचारक साहित्य को ललित कला के ही अन्तर्गत स्वीकार करता है। पाश्चात्य विचारकों ने कल्पना, बुद्धि, भाव तथा शैली को साहित्य के चार महत्त्वपूर्ण उपादान के रूप में स्वीकार किया है। कल्पना के द्वारा सर्जक, अमूर्त एवं अप्रत्यक्ष का रूपायन करता है। कल्पना से वह सौन्दर्य, सुरुचि तथा शुचिता को सम्भव करता है साथ ही भविष्य की सुघर सृष्टि करता है। बुद्धित्व से वह श्रेष्ठ विचारों, सन्देशों को सम्प्रेषित कर पाता है। यहाँ समीक्षकों ने भाव, संवेदन तथा प्रतिक्रिया को काव्य या साहित्य का महत्वपूर्ण उपादान माना है, परन्तु भाषा-शैली पाश्चात्य समीक्षा में वह केन्द्रिय तत्त्व है जिसे सर्वोपरि माना गया है। भाषा वहाँ एक ऐसा उपादान माना गया है जो एक तरफ अनुभव संवेदन को जानने-समझने का माध्यम है, और दूसरी तरफ वह अभिव्यक्ति को भी सक्षम बनाता

१. छायावाद और हिन्दी कविता-हिन्दुस्तानी पत्रिका, गंगा प्रसाद पाण्डेय, अंक ७, पृ० ११

है। हेनरी हडसन ने 'भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति' को साहित्य माना है। वर्ड्सवर्थ जीवन की वास्तविक घटनाओ के यथातथ्य वर्णन को साहित्य कहता है, शेली कल्पना की अभिव्यक्ति को। कला सेवा के लिए, कला जीवन के लिए, कला आनन्द के लिये, कला मनोरंजन के लिये आदि अनेक मन्तव्यो, अवधारणाओ की व्यापक चर्चा पाश्चात्य समीक्षा मे हुई है तथा अनेक निष्कर्ष भी निकाले गये है। अन्तत यह बात सर्वथा सिद्ध है कि साहित्य सामाजिक सरोकारो से जुड़कर ही अर्थवान होता है।

पाश्चात्य समीक्षको ने अन्त प्रक्रिया के फलस्वरूप उद्‌भूत रचना के अस्तित्व की चर्चा को पूरी शिद्दत से उठाया है। वे इस चिन्ता को बार-बार उकेरते है कि साहित्यिक धाराएँ कैसे अस्तित्व मे आती है और कैसे छपा हुआ रूप धारण कर पाठको के पास पहुँचती है। उनके स्वीकार तथा अस्वीकार का आधार क्या और कैसा होता है। इस दिशा मे लूसिए गोल्डमान ने जार्ज लूकाच के विचारो के आधार पर आगे चल कर उल्लेखनीय योगदान किया है। उन्होने साहित्य के विश्लेषण की एक सुसगत प्रणाली विकसित की और उसे उत्पत्ति मूलक सरचनावाद कहा है।

भारतीय समीक्षा पद्धति मे समाजशास्त्रीय समीक्षा पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करते हुए अपनी पुस्तक 'साहित्य का समाजशास्त्र की भूमिका मे प्रसिद्ध समीक्षक डॉ बच्चन सिह की स्पष्ट मान्यता है कि "जहॉ तक समाजशास्त्र की परम्परा का सवाल है हमारे साहित्य मे कुछ खास नही मिलेगा किन्तु सौन्दर्य शास्त्री तथा रूपात्मक पक्ष पर सूक्ष्म विचार किया गया है। सौन्दर्य शास्त्रीय विवेचना मे नैतिकता का प्रश्न उठा है जो एक स्थिर व्यवस्था के पक्ष मे जाता है।'१. .वे रूपवाद और समाजशास्त्रीय समीक्षा के ताल-मेल, अन्तर्सम्बन्धो पर विशेष बल देते है। इन दोनो मे गहरे द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध को स्वीकृत करते है।

साहित्य सामाजिक चेतना मे सास लेता है, उसे समाज का दर्पण या परिधान कहा गया है। उसमे व्यक्ति से लेकर समूह तक के मन की आशा, आकाक्षा, जय-पराजय, हानि-लाभ सभी ध्वनित होती है। वह जन-जीवन की व्याख्या है। साहित्य मानव के सामाजिक सम्बन्धो को मजबूती देता है, उसे मुखर करता है। साहित्य मानव-मन को विकसित एवं परिष्कृत करता है। वह सोच को विस्तार तथा हृदय को उदार बनाता है। वह शिष्टता एव शालीनता का प्रसार करता है। उससे व्यवहारिकता, शान्ति, सुख और आनन्द की अनुभूति होती है। जीवन के प्रयोजना की दृष्टि से ही साहित्य उपयोगी है। आचार्य मम्मट ने ठीक ही लिखा है—

'काव्यं यशसेऽर्थकरे, व्यवहार विदेशिवतरक्षतये।
सद्य परनिर्वृत्तये, कान्ता सम्मितयोपदेश युजे।।'[२]

---

१ साहित्य का समाजशास्त्र— डॉ० बच्चन सिह, भूमिका भाग, पृ० १०, द्वितीय सस्करण।

२. काव्यशास्त्र— डॉ० भगीरथ मिश्र द्वारा उद्धृत, आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र के सबध मे।

उपर्युक्त वर्णित छः प्रयोजन यश, धन, व्यवहार कुशलता, अमगल से रक्षा, आनन्द तथा कान्ता के समान मधुर उपदेश, जीवन के सर्वमान्य उपयोगी तथा श्रेयस प्रयोजन है। विश्व की समस्त ज्ञात सम्यताओ, संस्कृतियो का प्रधान उद्देश्य ही जीवन को श्रेष्ठ, उदात्त एवं आनन्दमय बनाना रहा है। मनुष्य भौतिक सुखो, मनन-चिन्तन, सोच व साहचर्य के साथ ही सत्य, सौन्दर्य, शिव की आकांक्षा मे निरन्तर कर्म सलग्न है। साहित्य भौतिक सुखो, दार्शनिक चिन्तनो मे सामंजस्य स्थापित करके उसे आनन्द की ओर अग्रगामी बनाता है। साहित्य का सत्य, जीवन का यर्थाथ होता है पर वह उसे आदर्श को चासनी मे सराबोर करके पाठक, भावुक, दर्शक के सामने रखता है जिससे समाज का उन्नयन होता है। समाज शुद्ध एवं परिष्कृत होता है।

साहित्य समाज के बाह्य और आन्तरिक जीवन को प्रभावित, परिचालित तथा परिष्कृत करता है। जीवन मे सुन्दरता, मधुरता, सरसता तथा व्यापकता के लिये संरचना को जीवनोन्मुखी बनाना साहित्य का चरम लक्ष्य माना जाता रहा है। साहित्य मातृवत पालक है, पितृवत संरक्षक है, गुरुवत परम शिक्षक है। रचनाकार समाज से ही उभरता है और रचना की प्रेरणा रचना के तथ्य समाज के भीतर से ही चुनता है। व्यवस्था, परिवेश, रीति-नीति तथा लोक-व्यवहार की प्राथमिक पाठशाला समाज ही होता है अतएव समस्या व समाधान दोनो के लिए साहित्य को समाज का मुखापेक्षी रहना पड़ता है। साहित्यकार अपने समाज एवं समय दोनो का प्रतिनिधि होता है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्य समाज का नियामक एवं उन्नायक दोनो होता है। समाज एवं साहित्य अन्योन्याश्रित है।

साहित्य विवेचक और उनकी दृष्टियाँ

पाश्चात्य विचारको के साहित्यिक-समाजशास्त्र के पुरोधा— **'इपॉलिट अडोल्फटेन'** है सामान्यत· टेन, लियोलावेयल, लूमिए गोल्डमान और रेमण्ड विलियम्म को पाश्चात्य साहित्य समाजशास्त्रीय समीक्षा का पुरोधा माना जाता ह। फ्रांस मे समाजशास्त्रीय चिन्तन की परम्परा से सुदृढ आधार और उसका सक्षम प्रयोग इपॉलिट अडोल्फटेन ने किया। मादाम स्टेल की प्रसिद्ध पुस्तक 'सामाजिक सस्थाओं के साहित्य के सम्बन्ध पर विचार' १८०० ई० की कृति है। क्रान्तिकारी विचारों की महिला स्टेल को नेपोलियन की तानाशाही का विरोध करने के कारण फ्रांस छोड़ना पड़ा था। जहाँ से पलायन करके वह जर्मनी चली गयी थी। आगे चलकर टेन ने उनके विचारो को पर्याप्त विकाम एवं विस्तार दिया। जर्मनी के फ्रैंकफुर्न विश्वविद्यालय मे १९२३ मे एक सामाजिक शोध संस्थान की स्थापना हुई थी। अडोर्नो, हर्बट मारकुस तथा लियोलावेयल, फैंकफुर्न समुदाय से जुड़े हुए विचारक थे। अडोर्नो सौन्दर्यशास्त्रीय था तथा मारकुस दार्शनिक दोनो आधुनिकता के समर्थक थे। लियोलवेयल ने साहित्य के समाजशास्त्र की चर्चा पूर्ववर्ती लेखकों और

उनकी रचनाओ के सबंध मे उठाया। लुसिए गोल्डमान ने समाजशास्त्रीय समीक्षा के क्षेत्र मे व्यवस्थित और उत्कृष्ट प्रयास किया है। वेल्स के मजदूर परिवार मे जन्मे रेमण्ड विलियम्स इंग्लैण्ड के बहुचर्चित समीक्षक रहे है। यहाँ इन चारो की पद्धतियो, विचारो पर सक्षिप्त प्रयास डालकर हम देखेगे कि साहित्य के समाजशास्त्र की अवधारणा कैसे और क्यो कर विकसित हुई।

मादाम द (१७६६-१८१७)– मादाम स्टेल ने जर्मन चिन्तन को समझा और उसे आत्मसात किया था जिसकी समवेत अभिव्यक्ति उनकी पुस्तक 'सामाजिक सस्थाओ के साहित्य के सम्बन्ध पर विचार' के रूप मे आगे आयी। इस रचना मे पहली बार साहित्य के भौतिक आधार की चर्चा उठायी गयी सामाजिक अस्तित्व पर विचार का क्रम रखा गया। उन्होने सामाजिक संस्थाओ से क्रिया-प्रतिक्रिया पर सम्यक् विचार रखा। मादाम स्टेल ने कहा कि 'मैने साहित्य पर धर्म, नैतिकता और कानून के प्रभाव तथा उनके साहित्य से संबंधो की खोज की।' इसे एक नयी पद्धति माना गया। मादाम स्टेल की कई मान्यताये ऐसी रही है जिनको टेन ने आगे विस्तार दिया। मादाम स्टेल की पुस्तक 'समसामयिक योरोपीय' चिन्तन की नई प्रवृत्ति नयी दिशा की प्रस्तुती मानी गयी है प्रगति की धारणा, युग की चेतना, जातीय चरित्र आदि के माध्यम से मादाम स्टेल ने साहित्य के सामाजिक आधार का विवेचन किया। मादाम द स्टेल ने अपने ग्रंथ साहित्य के विषय मे 'दि लालितशव्यार' के आरभ मे ही कहा है 'मेरा उद्देश्य साहित्य मे धर्म, रीति-रिवाज और कानून के प्रभाव का परीक्षण करना है।'[1]

मादाम स्टेल ने साहित्य से राजनीति की निकटता को एक महत्वपूर्ण मूल्य मानकर उसको स्वीकारने का संकल्प दुहराया। उनके अनुसार प्रत्येक युग और समाज के साहित्य को अपने समय के राजनीतिक विश्वासो की गहरी जानकारी होनी ही चाहिए। वे जनता और किसानो को रचना के केन्द्र मे रखने की पक्षधर थीं और न्याय तथा स्वतत्रता के लिये चलने वाले आन्दलनो के चित्रण को आवश्यक मानती थी। उन्होने उपन्यास विधा की संरचना के लिये मध्यमवर्ग के उदय की अनिवार्यता का प्रत्याख्यान किया है। उनका विश्वास था कि मध्यम वर्ग ही कला के लिये स्वतत्रता तथा ईमानदारी जैसे गुणो को बढ़ावा देता है। उन्होने उपन्यास की सरचना मे नारी की उच्चस्तरीय स्थिति को महत्वपूर्ण माना। स्त्रियो की अच्छी सामाजिक स्थिति ही उपन्यास सरचना का कारण होती है। उनके अनुसार उपन्यास आधुनिक युग के नये दृष्टिकोण की कला है वह नयी यथार्थ चेतना की देन है, इवान वाट्स जैसे समीक्षको ने भी मादाम स्टेल के महत्व को पूर्णता मे स्वीकार किया है।

1 साहित्य का समाजशास्त्र- डॉ० बच्चन सिंह, पृ० १।

इपॉलिटे अडोल्फतेन मूलत इतिहासकार, कला-चिन्तक तथा दार्शनिक, समालोचक थे। उनके ऐतिहासिक दृष्टिकोण के एक पक्ष के रूप म साहित्य का समाजशास्त्र विवेचित हुआ है। १८६३ मे उनकी कृति 'अंग्रेजी साहित्य का इतिहास' प्रकाश में आयी और इसके बाद उनकी दूसरी कृति 'कला का दर्शन' प्रकाशित हुई। टेन ने साहित्य के विवेचनों के लिए सामाजिक सन्दर्भों पर जोर दिया है। उन्होंने लेखक के व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण माना और उन्होने रचना मे सामाजिक सत्यों को खोजने का अभियान प्रारंभ किया। टेन ने मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी के रूप में देखने का आग्रह रखा तथा समाज को समूहों और वर्गों का समुच्चय माना। फ्रांसीसी समाज एव साहित्य पर भी बहुत लिखा होने के समय मे भाववादी एव भौतिकनावादी सोचो मे संघर्ष चल रहा था। इस प्रकार एक विशेष प्रकार का बौद्धिक वातावरण टेन के समय मे मौजूद था। १७वी १८वी सदी के फ्रांसीसी साहित्य के साथ ही साथ उन्होंने अपने समकालीन रचनाकारो की भी समीक्षा की है। रेसिन, फातने तथा वाल्जाक पर टेन की समीक्षा दृष्टि बेहद मूल्यवान मानी गयी है। *तेन* जिस समय समाजशास्त्रीय पद्धति पर अपने विचारो को स्थापित करने मे संलग्न थे उस समय प्रकृति की विविध विधाओ विज्ञानो का अभूतपूर्व विकास हो रहा था। उस समय इतिहास, विज्ञान और प्रकृति विज्ञानों के समानान्तर ही सामाजिक विज्ञानो की विविध दिशाओं की चिन्तन धाराओं पर गम्भीर विचारों की प्रक्रिया जारी थी। कला और साहित्य के सामाजिक आधारो के लिये यह काल ऐतिहासिक दृष्टि और वैज्ञानिक निर्माण के विकास की कालावधि थी। ***टेन*** ने ***कला दर्शन*** नामक निबन्ध मे लिखा कि 'मैंने जो पद्धति अपनायी है वह सभी नैतिक विज्ञानो मे चल रही है। उसके अनुसार सभी मानवीय उत्पादन और विशेष रूप मे कलात्मक उत्पादन तथ्य एवं घटनाये हैं, जिनकी विशेषताओं की पहचान और कारणों की खोज आवश्यक है।' टेन के विचार मे कला और साहित्य को सामाजिक तथ्य के रूप मे देखा जाना चाहिए। साहित्य के उत्पादन के कार्य-कारण सम्बन्धो को खोजा जाना चाहिए। उन्होंने प्रकृति विज्ञानों की वस्तुपरक पद्धति को अपनाने का आग्रह स्थापित करने का प्रयास किया। वे सभी कृतियों को मानव-चेतना की विशेष अभिव्यक्ति मानने पर बल देते हैं। वे कला तथा साहित्य के साथ, धर्म, दर्शन, मिथकशास्त्र भाषा को परस्पर सम्बद्ध एवं सायुज्य मानते हैं। यद्यपि कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करने की टेन की पद्धति मे अनेक असम्बद्धताये एव विसगतियाँ दिखायी देती हैं, परन्तु इस प्रक्रिया के खतरों से सावधान रह कर साहित्य पर गम्भीर विचार किया जा सकता है। समीक्षक *टेन* मानवतावादी विचारधारा के प्रबल पोषक हैं। वे मनुष्य की प्रकृति, उसकी चित्तवृत्ति तथा उसकी उपलब्धि को जानने का सम्यक् विधान रचने की कोशिश मे लगे रहने वाले समीक्षक थे।

समाज से साहित्य की वस्तुपरक व्याख्या मे उन्होने माना कि साहित्य समसामयिक रीति-रिवाजो का पुर्नलेखन है, मनुष्य की सम्पूर्ण सोच, सम्पूर्ण अनुभव को जानने, समझने की दिशा मे सचेष्ट होते है। टेन का साहित्य के समाजशास्त्र के चार पक्षो पर सर्वाधिक बल था— **पहला**– साहित्य के भौतिक सामाजिक मूलाधार की खोज, **दूसरा**– लेखक के महत्व का सम्यक् विवेचक्, **तीसरा**– साहित्य मे समाज के प्रतिविम्बन की व्याख्या तथा **चौथा**– साहित्य का पाठक समुदाय से सम्बन्ध। टेन अपनी समीक्षा विधि का प्रारम्भ साहित्य के मूलाधार की खोज से करते है। वे प्रजाति की धारणा पर विशेष बल देते है तथा व्यक्ति की परम्परा, वशानुगत विशेषता एव मानसिक एव शारीरिक सग्चना पर बारीकी से ध्यान देते है। वे परिवेश अथवा वातावरण की स्थिति को भी विशेष महत्व देते है। उनका मानना था कि ससार, सृष्टि मे मनुष्य अकेला नही है। उसके चारो ओर प्रकृति परिवेश तथा समग्र समाज होता है। वे युग-चेतना एव काल-प्रवाह की विशेष स्थिति को भी स्वीकारते है। उनका स्पष्ट मानना था कि युग-विशेष के कुछ प्रमुख विचार होते है और उनका एक बौद्धिक ढाँचा होता है। जो पूरे समाज के चिन्तन को प्रभावित करता है। सक्षेप मे टेन की सोच का निष्कर्ष कि 'कला मनुष्य की मानसिकता की उपज है और मनुष्य की मानसिकता उसकी परिस्थितियो से प्रभावित होती है।' टेन के समाजशास्त्रीय आग्रह और उनकी कलात्मक अभिरुचि की चर्चा समीक्षाशास्त्र मे बराबर महत्वपूर्ण रहेगी।

आलोचनात्मक समाजशास्त्र के पुरस्कर्ता लियोलावेथल– जर्मनी के फ्रैकफुर्ट विश्वविद्यालय मे १९२३ मे स्थापित सामाजिक शोध सस्थान से जुड़े हुए समाजशास्त्रीय चिन्तको के विचार मंथन से आलोचनात्मक समाजशास्त्र का विकास हुआ। नाजी आतक से भयभीत इस समुदाय के अनेक चिन्तक जर्मनी से अमेरिका पलायन कर गये और वहाँ पर नये सिरे से फ्रैंकफुट सस्थान को कायम किया। दूसरे महायुद्ध के बाद वापस लौटकर पुन इस संस्थान का गठन कतिपय विचारको ने किया। प्रारभ मे आलोचनात्मक समाजशास्त्र के चिन्तन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव पड़ा परन्तु आगे चल कर जर्मन विचारको की दृष्टि का व्यापक प्रभाव इन विचारको पर परिलक्षित होता है। पूँजीवादी समाज-व्यवस्था मे मनुष्य की दशा और उसकी चेतना को प्रभावित करने वाली परिस्थितियो पर विचार ही आलोचनात्मक समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य था। इन समीक्षको से एक बड़ी असावधानी यह हो गयी कि वे बाजारू कला तथा जनकला के अन्तर को नही पहचान सके। सामाजिक क्रान्ति की निराशा के बाद आडोर्नो तथा मारकुस जैसे विचारको ने कला मे क्रान्ति की मांग को महत्व देने का अनथक प्रयास किया।

सस्कृति समाजशास्त्र का विकास करने का प्रयास इस समुदाय से जुडे हुए चिन्तको ने किया। मार्क्सवादी आलोचक वाल्टर बेजामिन भी इस समुदाय से जुड़े हुए थे।

लियोलावेथल ने व्यवस्थित रीति से साहित्य के समाजशास्त्र का विकास करने विशेष प्रयास किया। इस विषय पर लिखे गये उनके तीन विशिष्ट निबन्ध संग्रह प्रकाश मे आये— १. साहित्य और मनुष्य की परिकल्पना, २. साहित्य लोकप्रिय संस्कृति और समाज, ३. कथा की कला और समाज। लियोलावेथल की खुद की स्वीकारोक्ति है कि मैं पुराने ढंग का साहित्य वैज्ञानिक हूँ। वे साहित्य की सामाजिकता का विश्लेषण करते है। वे साहित्य को वैयक्तिक अनुभवो का भण्डार मानते है। वे लेखक को सर्वथा सम्पन्न व्यक्ति मानते है। वे पूँजीवादी व्यवस्था से पीड़ित और प्रताड़ित व्यक्ति की आवाज को पूरा-पूरा महत्व देते है। लावेथल की धारणा थी कि साहित्य मे जीवन का विशिष्ट अनुभव होना चाहिए। जीवन के अनुभवो म भी वे वैयक्तिक अनुभवो को महत्व देकर साहित्य के समाजशास्त्र मे मनोविज्ञान के विशेष योग को स्वीकार करते है। वे मनोविश्लेषण की पद्धति पर जोर देते है तथा समूह चेतना और व्यक्ति चेतना के बीच के सम्बन्धो की समझ को बेहद जरूरी मानते है। उन्होने यथार्थवादी दृष्टि को पर्याप्त महत्व दिया तथा यथार्थवादी सोच की सम्यक् व्याख्या भी प्रस्तुत की। वे यथार्थ नही, मानवीय यथार्थ के प्रस्तुतीकरण के हिमायती है। वे साहित्य मे सामाजिक चेतना की अनेकना को खोलने व रखने के पक्षधर थे, उनकी अवधारणा थी कि भौतिकवादी दृष्टि से ही साहित्य की सच्ची व्याख्या की जा सकती है। उन्होने रचनाकारो की वर्गदृष्टि, सामाज्कि चेतना और विचारधारा का विश्लेषण करने का भरसक प्रयास किया है। अमेरिका प्रवास के दौरान लावेथल मार्क्सवाद मे दूर होते चले गये तथा उन पर अनुभववाद का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उन्होने अन्य अमूर्त धारणाओ पर भी विशेष बल दिया। आगे चलकर वे लेखको को वर्ग के स्थान पर दार्शनिक सम्प्रदायो के रूप मे देखने के पक्षधर होते गये। लावेथल अन्य समाजशास्त्रियो की तरह अर्न्तवस्तु पर ही नही वरन रूप पर भी सम्यक् विचार करते चलते है। वे भाषा तथा शैली पर विशेष बल देने वाले समीक्षक थे उनकी मुकम्मल सोच थी कि साहित्य रूपो के विकास की प्रक्रिया सामाजिक विकास से प्रभावित होती है। साहित्य समाज से प्रभाविन होता है। साथ ही समाज को प्रभावित भी करती चलती है। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। वे साहित्यिक रचनाओ के ग्रहण बोध तथा प्रभाव के अध्ययन का सम्यक् विकास करते है। वे पाठको की दृष्टि से विचारात्मक प्रभाव का विस्तार मे विश्लेषण करते है। साहित्य रूपो के विकास की प्रक्रिया सामाजिक विकास से प्रभाविन होती है। साहित्य समाज से प्रभावित होता है साथही समाज को प्रभावित भी करती चलती है। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। वे साहित्यिक रचनाओ के ग्रहण बोध तथा प्रभाव के अध्ययन का सम्यक विकास करते है। वे पाठको की दृष्टि मे विचारात्मक प्रभाव का विस्तार मे विश्लेषण करते है, साहित्य रूपो के विकास की प्रक्रिया सामाजिक विकास से प्रभाविन होती है इसका विवेचन जार्जलुकाच

ने अपने 'उपन्यास का सिद्धान्त' मे प्रारम्भ किया जिसे आगे चलकर लावेयल एव गोल्डमान ने विस्तार दिया। लावेयल साहित्य की सामाजिक अर्थवत्ता की खोज के साथ ही समाज मे साहित्य की स्थिति का विश्लेषण भी करते है। वे सामान्य लोकप्रिय साहित्य के विभिन्न रूपो के सामाजिक अर्थ की छानबीन भी करते है। इस प्रकार व साहित्य की सम्पूर्ण प्रक्रिया के समाजशास्त्री है। उनका मानना है कि समीक्षक को लोकप्रिय सस्कृति का तथ्यात्मक ज्ञान होना चाहिए परन्तु लोकप्रिय मस्कृति अथवा साहित्य के मूल्याकन के लिए एक नैतिक एवं सौन्दर्य बोधिय दृष्टि का होना आवश्यक है। वे तथ्यो के ज्ञान एव ग्रहण के लिये पाठकीय चेतना के बोध की भी सम्यक् जानकारी को विशेष महत्व देते है। एक कठिनाई तब आती है जब लोकप्रिय सस्कृति और साहित्य मे वे लोक, जन तथा सर्वहारा या भीड़ के विभेद को अस्वीकार कर देते है। लावेयल यह नही देख पाते की भीड़ की न कोई सस्कृति होती है न ही कोई विशिष्ट मनोवृत्ति। वे यह अन्तर नही कर पाते कि बाजारू साहित्य जनता के लिए तो होता है पर वह जनता का साहित्य होता नही। वे दलित जनसमुदाय की सम्कृति को भी मानने से इन्कार करते प्रतीत होते है। आगे चलकर डेनियल, वेल आदि ने सास्कृतिक अनेकान्तवाद या सास्कृतिक बहुलतावाद की धारणा को भी पेश किया। इस प्रकार दैनिक जीवन की हर चीज सस्कृति मे शामिल हो गयी और उपभोग की चिन्ता ही मुख्य बन गयी। आगे के समीक्षको ने जन-चेतना को ही अधिक से अधिक उन्नत बनाने तथा व्यापकता देने का प्रयास किया। लावेयल ने इस प्रकार उन्नसवी सदी की समीक्षा प्रवृत्ति को बीसवी सदी मे विकसित करने का उपक्रम किया। कला और साहित्य के अन्त की जब चर्चाये प्रमुख थी, उस समय लावेयल साहित्य मे आस्था बनाये रखने से कामयाब रहे।

समग्रता का संवाहक लूसिए गोल्डमान (१९१३-१९७१)– मात्र ५७ वर्ष की अवस्था मे ही लूसिए गोल्डमान का निधन हो गया। १९६१ मे ही साहित्य के समाजशास्त्र के शोध केन्द्र के निर्देशक हो गये थे। १९३४ से ही वे पेरिस मे स्थायी रूप से बस गये थे। जार्जलूकाच की दो प्रारंभिक कृतियो का जबरदस्त प्रभाव गोल्डमान पर पड़ा। १. उपन्यास सिद्धान्त तथा २. इतिहास और वर्ग चेतना। गोल्डमान ने ही उपेक्षित पड़ी हुई जार्ज लूकाच की कृतियो का पुनरुद्धार करके समाजशास्त्रीय विश्लेषण की एक सुसंगत प्रणाली विकसित की। गोल्डमान इस प्रणाली को जेनेटिक स्ट्रक्चरलिज्म के नाम से अर्थात् 'उत्पत्ति मूलक' सरचनावाद के नाम से अभिहित करते है। उत्पत्तिमूलक संरचनावाद की आधारभूत अवधारणा है। समग्रता— 'टोटैलिटी' की तलाश का मूल अभिप्राय जीवन से लेकर चिन्तन तक फैली हुई धारणा वस्तुकरण के विरुद्ध संघर्ष। जीवन का सब कुछ 'वस्तु' से ही रुपान्तरित नही होता। गोल्डमान ने जार्ज लूकाच

की समग्रता की अवधारणा को साहित्यिक समाजशास्त्र के क्षेत्र में 'संरचना' के रूप में लागू किया। गोल्डमान ने चेतना के दो भेद किये वास्तविक चेतना और संभाव्य चेतना, गोल्डमान की साहित्यिक समाजशास्त्र के विवेचन परिधि में केवल महान् एवं कालजयी कृतियों का ही समावेश हो पाता है। गोल्डमान की कृति 'हिडेन गाड अर्थात् अर्न्तनिहित ईश्वर' तथा उपन्यास का समाजशास्त्र के आधार पर ही सामाजिक सरचना के आधार की चर्चा उभरती है उत्पत्तिपरक संरचनावाद की दो सीमाये हैं—

१. विश्वदृष्टि और लेखक द्वारा निर्मित ससार के बीच संवाद, २. उक्त संसार तथा उसे व्यक्त करने के लिये लेखक द्वारा प्रयुक्त शैली, विम्ब, वाक्य-विन्यास आदि के बीच की सवाद।

साहित्यिक समाजशास्त्री के अतिरिक्त लूसिए गोल्डमान एक वैज्ञानिक विचारक और दार्शनिक भी थे। वे मार्क्सवाद से प्रभावित थे। छात्रशक्ति के फ्रांसीसी उभार और 'नववाम' की अगुवाई भी उन्होंने की। इस दृष्टि से मार्क्सवाद और 'मानव-विज्ञान' उनकी विशिष्ट कृति है। उनकी आस्था समाजवाद एवं मानववाद में प्रबल है। साहित्य तथा समाज को समझने में उनकी अवधारणा में अमूल्य एवं उपयोगी योगदान करती है। जार्ज लूकाच की दृष्टि क्रान्तिकारी थी। जिसका सम्यक् उपयोग लूसिए गोल्डमान की संरचना मे दिखायी देता है। गोल्डमान के उत्पत्तिमूलक समाजशास्त्र एवं मनोविश्लेषण मे बड़ी समानता है। सारा मानव व्यवहार कम-से-कम एक सार्थक संघटन का अंग होता है। इस संगठन को शोधकर्ता प्रकाश मे ले आता है। यह संघटन तभी बोधगम्य होता है जबकि उसे तत्क्षण मे ग्रहण किया जाय। गोल्डमान सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के सम्यक् अध्ययन, मनन के बाद अपनी बात खोजते है तथा एक विशिष्ट पद्धति निर्मित करते है। वे मार्क्सवाद की भूमि पर टिक कर अस्तित्ववाद, अनुभववाद तथा मनोविज्ञान के व्यक्तित्ववाद से टकराते हैं। वे एक ऐसी पद्धति के खोज मे संलग्न थे जिसके द्वारा कलाकृतियों का व्यापक ऐतिहासिक सामाजिक प्रक्रिया की समग्रता के भीतर मनुष्य की सार्थकता क्रियाशीलता के रूप मे अध्ययन, विवेचन हो सके। इस उद्देश्य मे सबसे बड़ी बाधा थी रूपवादी आलोचना दृष्टि जो समाज से साहित्य के संवाद का विरोध करती थी। दूसरी बड़ी बाधा थी मनोवैज्ञानिक आलोचना की तथा तीसरा व्यवधान अनुभववादियों की दृष्टि था। उनके सामने विधेयवाद की सीमाएँ भी थी जो समाज मे साहित्य को अर्न्तवस्तु के रूप मे जोड़ता था। उन्हे सरचनावादी प्रवृत्ति से भी चुनौती मिल रही थी। जो कृति के रूप को तो महत्व दे रहे थे पर उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ की उपेक्षा करते थे। संरचनावाद मे मनुष्य और उसकी चेतना की क्रियाशीलता के लिये भी कोई जगह नही थी।

गोल्डमान ने पुरानी मान्यताओं की सम्यक् छान-बीन के पश्चात उन्हे उपयोगी

बनाने का प्रयास किया है। जार्ज लूकाच के प्रारंभिक चिन्तन, मनोवैज्ञानिक 'पिजे' के मनोविज्ञान और सरचनावाद से जो प्रारंभिक तथ्य मिले है, उनके अर्थ और प्रयोजनो को उन्होने अपनी सोच से उपयोगी बनाया है तथा परिवर्तित भी किया है।

इस प्रकार के उत्पत्ति मूलक संरचनावाद की स्थापना करते है। जिसकी पद्धति बेहद जटिल है। समाज से साहित्य के सम्बन्धो की खोज की दिशा मे सामाजिक यथार्थ से साहित्य मे व्यक्त यथार्थ के सबंध का विश्लेषण तथा कृति मे व्यक्त चेतना के सामाजिक उद्गम की खोज मे गोल्डमान प्रवृत्ति होते हैं। गोल्डमान ने स्वीकार किया है कि प्रत्येक कृति लेखक की रचना होती है। वह लेखक के विचारो तथा अनुभूतियो को व्यक्त करती है परन्तु वे विचार और भाव समाज तथा वर्ग के दूसरे व्यक्तियो के व्यवहार और चिन्तन से प्रभावित होते है। इस प्रकार एक वर्ग और व्यापक समाज के रहन-सहन और वृत्ति की खोज से रचनाकार का कृतित्व स्वत जुड़ जाता है। क्योकि कृति एक वर्ग की पूर्णतया सम्भावित चेतना से ही विश्वदृष्टि का निर्माण करती है, जिसकी अभिव्यक्ति, धर्म, दर्शन और कला मे हो पाती है। साहित्य के समाजशास्त्र के बुनियाद मे विश्वदृष्टि की धारणा के महत्व को गोल्डमान ने सर्वोपरि स्वीकृति प्रदान की है। उनके अनुसार एक वर्ग या समूह की जीवन-जगत् के बारे मे सुसंगत दृष्टि ही विश्वदृष्टि है। विश्वदृष्टि उनके लिये एक वैचारिक रूप है। उनके अनुसार विश्वदृष्टि सामाजिक वर्ग के जीवन मे निहित होती है और कला, दर्शन, साहित्य मे ही व्यक्त होती है। वे विश्वदृष्टि की खोज का प्रारम्भ कृति के अध्ययन से मानते हैं न कि वर्ग के अध्ययन से। वे जार्ज लूकाच की इतिहास चेतना और वर्ग चेतना से साहित्य की वैश्विक चेतना को सायुज्य करके रखने के आग्रही है। गोल्डमान ने समाजशास्त्रीय विवेचन की कोटि मे समानधर्मिता को विशेष महत्व दिया है और इस प्रसग पर वह बार-बार सुसगति की चर्चा करते हैं। उन पर बहुधा यह आरोप लगाते है कि उन्होने कलाकार और उसकी रचनाशीलता पर उसकी सृजन क्षमता पर सन्देह व्यक्त किया है परन्तु गोल्डमान कृतिकार की सीमा को संकुचित मानते रहे है तथा वर्ग के भीतर ही उसके विस्तार को स्वीकृति देते है। गोल्डमान १६६० के आसपास परम्परा से आगे बढ़कर सामयिक साहित्य के मूल्यांकन की ओर मुड़ते है तथा पूँजीवादी समाज मे कला और साहित्य की वास्तविक स्थिति पर विचार करते है। वे पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ उपन्यास के स्वरूप को इतिहास से जोड़ देते है। उन्होने पूँजीवाद की तीन अवस्थाओ उदार पूंजीवाद, सकटग्रस्त पूँजीवाद तथा उपभोक्ता पूँजीवाद की गम्भीर चर्चा उठायी है। गोल्डमान साहित्यिक कृति का सरंचनात्मक विश्लेषण करते हैं। वे अर्थ की संरचनाओ पर चर्चा करते है पर रूप की सरचना पर चर्चा वे नही करते। वे समग्रता की धारणा से अनुशासित समीक्षक इसी अर्थ मे प्रतीत होते है। वे कृति की एकरुपता तथा सुसगति पर बेहद जोर देते हैं। वे साहित्यिक रचना

को सापेक्ष स्वायत्त मानते है। वे 'मानव विज्ञान और दर्शन' नामक ग्रन्थ में रूप तथा शैली की विवेचन को आलोचना का आवश्यक अग स्वीकार करते है।

संस्कृति के चिन्तक, समाजशास्त्री, समीक्षक रेमण्ड विलियम्स– अंग्रेजी समीक्षा को नयी दिशा, नयी गति रेमण्ड विलियम्स ने दिया है उनका मानना है, कि जब संस्कृति तथा समाज म ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण परिवर्तन घटित होते है तभी सस्कृति, समाज तथा साहित्य की समस्या सामन आती है। वे द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के काल के इग्लैण्ड की सस्कृति और उसके विविध रूपो, स्थितिया के अग्रणी विचारक माने जाते है। उन्होंने अंग्रेजी समीक्षा म सास्कृतिक चिन्ता की बहस और सन्दर्भ दोनो को बदलने म प्रमुख भूमिका निभाई है। रेमण्ड विलियम्स ने ब्रिटिश समाज की विभिन्न समकालीन राजनीतिक समस्याओ के साथ सास्कृतिक सवालो और समस्याओं पर भी सविस्तार चितन किया है। वे साहित्य के विविध रूपो, विधाओ की समीक्षा मे सलग्न थे। उनके चिंतन और लेखन मे भी विविधता थी। उनके विचारो को सांस्कृतिक विचारो का इतिहास-साहित्य का समाजशास्त्र आदि कहा गया है क्योंकि उनकी सोच व्यापक रही है, विचार पद्धति बहुआयामी रही है। कई लोगो ने उन्हे सामाजिक दार्शनिक भी कहा है। वे विचारक ही नही रचनाकार भी थे। १९२१ मे वेल्स के मजदूर परिवार मे उत्पन्न रेमण्ड को जीवन की विविध स्थितियो का, गरीबी एवं दिक्कतो का, समाज की बदली स्थितियाँ का गहरा भान था। मुकम्मल अन्दाजा था। मजदूर वर्ग के जीवन मूल्यो और सांस्कृतिक चेतना के वे प्रत्यक्षदर्शी भोक्ता और कर्त्ता भी थे इसलिए वे जनजीवन की जटिलता को देखने, जानने और भोगने वाले यथार्थवादी शिल्पी रहे है। अंग्रेजी की प्रभुत्वशाली अभिजात्य एवं समीक्षा धारा मे जनजीवन के बलबूते टकराते रहे। वे अभिजात्यवादी प्रभावो से असम्पृक्त बने रहे तथा जनसंस्कृति के महत्व को स्थापित एवं प्रतिपादित करने मे समर्थ हो सके। रेमण्ड विरोधी विचारो से संघर्ष के दौरान उनसे सीखने, समझने की प्रक्रिया से भी गहरे स्तर से जुड़ते है।

टी० एस० इलियट, एफ० आर० लीविस की संस्कृति संबंधी मान्यताओं, उनके अभिजात्य आग्रहो के विरोध मे १९५४ मे उन्होने 'कल्चर एण्ड सोसाइटी' की बहस प्रधान रचना की। वे अतीत की महानता के मोह के साथ भविष्य की निराशावादी अपने पूर्ववर्ती समीक्षको की दृष्टि की विवेचनात्मक समीक्षा की। वे सम्पूर्ण सांस्कृतिक प्रक्रिया का लोकतंत्र तथा समाजवाद की ओर बढ़ने का स्वागत किया तथा उनके अनिवार्य होने की व्याख्या भी की।

एफ० आर० लीविस की पुस्तक 'दी ग्रेट ट्रैडिशन' मे जो एक विशेष परम्परा तथा चयन सबंधी आग्रह था उसकी सम्यक् समीक्षा के उपरान्त रेमण्ड विलियम्स ने इग्लिश नावेल फ्राम डिकेन्स टू डी० एच० लारेंस (१९७०) की रचना की। विलियम्स

ने परम्परा की उस धारणा को चुनौती दी और उपन्यासो का नया मूल्यांकन करते हुए परम्परा की दूसरी धारणा पेश की। रेमण्ड ने मार्डन ट्रैजिडी १९६६ मे ट्रेजडी की धारणा पर पुर्नविचार करने का प्रयास किया। रेमण्ड ने सस्कृति के क्षेत्र मे विज्ञान और टेक्नालाजी के रचनात्मक उपयोग को स्वीकार किया है तथा 'टेलीविजन टेक्नालजी कल्चरल फार्म' १९७४ मे प्रकाशित हुई तथा सचार माध्यमो पर उन्होंने 'कम्युनिकेशन्स' १९६२ मे ही लिख दी थी। उनकी सर्वोत्तम समीक्षात्मक कृति है 'दी कन्ट्री एण्ड सीटी' १९७३। इस कृति मे विवाद और संवाद की दोहरी प्रक्रिया मौजूद है। उन्होंने अग्रेजी मे कई लोकप्रिय देहाती कविताओ का विश्लेषण करते हुए समाज, इतिहास और साहित्य की कई रूढ़िवादी मान्यताओ का खण्डन किया है।

१९४० से १९४७ तक रेमण्ड का लेखन फैला हुआ है, उनकी सोच विकासात्मक रही है। वे अपनी धारणाओ मे परिवर्तन एवं विकास करते रहे है। उनकी समीक्षा का पहला चरण 'रीडिंग एण्ड क्रीटिसिज्म' १९५० मे परिलक्षित होता है। इस काल मे उनके चिन्तन पर एफ आर लिविस का प्रभाव देखा जा सकता है। इसके समान्तर ही वे मार्क्सवादी सोच से उलझते है। जिसकी अभिव्यक्ति 'मार्क्सिज्म एण्ड लिटरेचर' १९७७ मे हुई तथा जिसकी सम्पूर्ण परिणति दी कन्ट्री एण्ड दी सिटी' मे देखी जा सकती है। यहाँ वे परम्परा और प्रचलित मान्दताओ को स्वीकारते हुए से दिखाई देते है।

रेमण्ड विलियम्स ने स्वच्छन्दतावादी साहित्य चिन्तन, लीविस तथा इलिएट की सोच तथा मार्क्सवादी आलोचना धारा का सम्यक अध्ययन व अवगाहन किया था। रेमण्ड ने शेष योरोप के अन्य सांस्कृतिक साहित्यिक आन्दोलनो, पद्धतियो से विवाद एवं सवाद की स्थिति मे अपने को रखकर सस्कृति और साहित्य का एक अलग समाजशास्त्र विकसित किया। रेमण्ड विलियम्स के सस्कृति के समाजशास्त्र का विकास 'लम्बी क्राति' नामक पुस्तक मे देखा जा सकता है। १९७० के बाद जार्ज लूकाच, गोल्डमान एवं ग्राम्भी के विचारो के सम्पर्क मे आकर रेमण्ड की सस्कृति सबधी मान्यता मे परिवर्तन के लक्षण दिखाई देते है। और यही से वे साहित्य को सस्कृति का प्रमुख रूप स्थपित करने के प्रति सजग होते है। वे द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक तथा समग्रतावादी समाजशास्त्रीय दृष्टि विकसित करते है। 'रीडिंग एण्ड क्रिटिसिज्म' के माध्यम से वे आलोचना के क्षेत्र मे प्रभावी पहल करते है। वे *व्यावहारिक आलोचना का समर्थन करते है।* रेमण्ड ने व्यावहारिक तथा मनोवैज्ञानिक और मूल्याकन परक आलोचना की गहन छानबीन के *पश्चात ही समाजशास्त्रीय समीक्षा का सूत्रपात किया।* पूर्वोक्त समीक्षा पद्धतियो के गुण-दोषो का संधान ही उन्होने नही किया वरन उनकी सीमाओ को पहचान कर वे उनसे टकराते, समझते एव मुक्त होते गये। उपभोग और अभिरुचि के सिद्धान्तो की भी सम्यक परीक्षा उन्होने की। वे कृति को वस्तु मानने के आग्रह से आगे उसे *व्यवहार विधि*

से सीधे जोड़ने मे सफल हुए। रेमण्ड विलियम्स ने 'की वर्ड्स' बीज शब्द १९७६ मे अंग्रेजी समीक्षा के छिद्रान्वेषण की वृत्ति से उपर उठकर सोचने तथा सामाजिक सन्दर्भो, अनुषंगो को जानने का महत उपक्रम किया। वे आलोचना को एक सास्कृतिक कर्म की ऊंचाई तक पहुँचाने के अभिलाषी थे। वे कृति को उत्पादन की ऐतिहासिक, भौतिक परिस्थिति मे देखते है और पुन-पुन. रचना के समाजशास्त्रीय औचित्य को जाँचते-परखते है। उन्होंने साहित्य की धारणा पर भी पुर्नविचार को आवश्यक माना। इसके लिए वे अपनी ही पुरानी मान्यताओ को अतिक्रमित करते प्रतीत होते है। वे साहित्य को मानवीय अनुभव का दस्तावेज मानते है।

उपर्युक्त भारतीय एव पाश्चात्य समाजशास्त्रीय चिन्तन के आधार पर कतिपय महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते है तथा उन आधारो पर कृति, कथा, उपन्यास या किसी अन्य विधा की समर्थ समीक्षा सम्भव हो सकती है।

साहित्य के विवेचन की दृष्टियाँ

भारतीय दृष्टि– साहित्य के विवेचन के लिये समाजशास्त्रीय दृष्टियो का उपयोग भारतीय समीक्षा मे भी हुई और पाश्चात्य समीक्षा मे भी, परन्तु प्राचीन भारतीय मनीषा मे समाज की जो अवधारणा थी वह व्यापक और विशिष्ट प्रकार की सूचक थी। वहाँ जीव, आत्मा सभी विराट प्रकृति और परमात्मा के अंश ही माने गये। अतएव ज्ञात प्राचीन साहित्य, वेदो मे 'अनोभद्रा , सर्वेभवन्तु सुखिन. विश्वानुदेव सवितुः वरेण्यं' यद्र भद्रम तत्र आसुव' की बात कही गयी। वहाँ चेतन की तात्विक एकता, जीव-जगत् की महत्ता सर्वभूत हितेरत की उच्च मनोभूमि पर आधारित थी। वहाँ गोत्र, कुल, परिवार ग्राम से बढती हुई सामाजिकता, संस्कारशीलता और हीनता के खानो मे बँटी। वहाँ समानवर्णी, समानधर्मी चेतना से सजातीय चेतना विकास पाती है और समाज कर्म के आधार पर विभाजित होता है। वहाँ वर्ण-व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था तथा कर्मकाण्डो के आधार पर प्राथमिक समूह सगठित होते है। वहाँ गोठ और गोष्ठी महत्वपूर्ण है, उपयोगितावाद प्रभावी है।

साहित्य और उसके विवेचन, संवाद, सूक्ति मंत्र होता, उदगाता के स्तर से वैदिक साहित्य मे उभरे है। साहित्य के सम्यक् विवेचन की परम्परा भारत मे धुर प्राचीन काल से ही परिलक्षित होती है। विवेचन की इस प्राचीन परम्परा मे काव्य की आत्मा, रस, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण प्रयोजन अंग, उपागो, कृति एवं भावक, प्रभाव और परिणति की व्यापक और गहरी चर्चा न केवल ऋषियो, आचार्यो ने उठायी वरन् कृतिकारो ने भी उस पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया। संस्कृति-साहित्य में साहित्य विवेचन की परम्परा विस्तृत भी है, समृद्ध भी परन्तु संस्कृत साहित्य मे समाज के अन्तर्गत की चिन्ता उस अर्थ मे नही है, जिस अर्थ मे आज के साहित्य समाजशास्त्री उसका उल्लेख

कर रहे है। संस्कृत का काव्यशास्त्री आचार्य है और वह रचना और कृति को ही केन्द्र मे रखता है। भावक का आनन्द ही उसके लिये सर्वोपरि है। वह कृति की आन्तरिक बनावट, रस, सौन्दर्य, चमत्कार को ही महत्वपूर्ण मानता है। रचना मे वर्णित समाज उसकी चिन्ता का विषय नही रहा है। प्रारंभिक साहित्य धर्म, दर्शन, अध्यात्म का पोषक रहा है, अतएव उसमे समाज, व्यक्ति की चिन्ता उभरती है। परन्तु यहाँ भी इच्छा, ज्ञान, क्रिया सभी कुछ आध्यात्म, मोक्ष आदि के संबंध मे ही कवि की वाणी विस्तार पाती है। 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' की स्थापना वाले आचार्यों ने काव्य के गुण-दोषो तक ही अपने को सीमित रखा है। वैसे भी आध्यात्मिक प्रवाह और आनन्द की आकाक्षा साहित्य को भौतिक सांसारिकता से अलग असम्पृक्त ही रखती रही है।

संस्कृत काव्य, नाटक साहित्य राजकीय सरक्षण मे विकसित हुआ तथा समाज के ऊपरी तबके अभिजात्य वर्ग तक ही सीमित रहा, शेष पूरा समाज लौकिक, प्राकृत, पालित था। अपभ्रंश भाषा मे अपना काम चलाता रहा इसीलिए सस्कृत प्रबुद्धजनो, राज परिवारो, पण्डितो, पुरोहितो, आचार्यो एवं ऋषियो की ही भाषा रही। व्यापक समाज से उसका सरोकार कम ही था। ग्राम्यदोष, सस्कृत काव्यशास्त्र का वह दृष्टान्त है जो जन बोली, ग्राम्य प्रयोगो को दोष मानता है। इस प्रकार वह प्रकारान्तर से सस्कृत भाषा और उसके साहित्य को व्यापक जन-समुदाय से अलग-थलग करता है। साहित्य की सीमा का संकुचन करता है।

संस्कृत-साहित्य सम्पूर्ण समाज की उच्चस्तरीय मूल्यवत्ता का साहित्य रहा है। सस्कृत का रचनाधर्मी व्यक्तिगत मूल्यो को सामाजिक मूल्यो से भिन्न नही मानता क्योकि वह समाज का अविच्छिन्न अंग है, वही अन्तत समाज की पूर्णता भी है। साहचर्य, प्रेम करुणा, दया, सहानुभूति, सौन्दर्य व्यक्ति के मूल्य है परन्तु सम्पूर्ण समाज की स्थिरता, कल्याण के इन्ही तत्वो पर आधारित है। आन्तरिक स्वधर्म और अनुभूत सत्वो के रूप मे उपलब्ध व्यक्ति का स्वातंत्र्य मौलिक प्रतिमान बनता है। सस्कृति के महत्वपूर्ण साहित्यकारो ने अपने युग के सामाजिक जीवन को सास्कृतिक चेतना के रूप मे ग्रहण किया है। उन्होने अपने साहित्य को युगीन सांस्कृतिक उपलब्धियो का वाहक बनाया है। साहित्यकार की आन्तरिक संवेदना उसके वैयक्तिक स्वातत्र्य की शर्त है। इसी के माध्यम से उदात्त मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा करने में समर्थ हो पाता है। सस्कृत और आगे चल कर हिन्दी के साहित्यकार, धार्मिक मतवादो, दार्शनिक चिन्तन पद्धतियो तथा राजनीतिक सघर्षो के विरोध के बीच भी सामंजस्य और समन्वय का मार्ग प्रशस्त करता आया है। वह युग था जब व्यक्ति की, राजा की सत्ता, सारे समाज को नियत्रित करती रही है। उस समय के साहित्यकारो ने अपने वैयक्तिक स्वातत्र्य की रक्षा की तथा सामाजिक मूल्यो, मान्यताओ की अपेक्षित गति भी प्रदान की है। भारतीय मनीषा ने पाश्चात्य साहित्यकारो

एवं चिन्तको की भाँति मानव-जीवन को वस्तु नही माना। उसने व्यक्तिगत सवेदन को सम्प्रेषणीय बनाकर सामाजिक गत्यात्मकता को आगे बढाया है। उसने सम्पूर्ण मानवता को लक्ष्य बनाया। सत्य और सौन्दर्य की अद्भुत छवियो को रचित करती रही है भारतीय मनीषा। लोकमान्यता, लोकदृष्टि परम्परित मानस की उच्चशयता को रूपायित करने वाला भारतीय साहित्य मात्र समसामयिक समाज और उसकी सीमा मे अट नही पाता। वह व्यक्ति से विश्व बनने की कामना का रचनाधर्मी ही आद्यन्त बना रहा है इसलिए उसे छोटे चौखटो मे बाँधना मुश्किल काम है।

हिन्दी समीक्षा में सामाजिक दृष्टि का विकास– साहित्य के विवेचन को दो दृष्टियो से देखा जा सकता है। साहित्य मे सामाजिक अभिव्यक्ति की खोज तथा दूसरे स्तर पर साहित्य समाज की प्रेरक शक्तियो को जागृत एव उद्‌बुद्ध करता है। एक पक्ष आज यह मानने को तत्पर है कि साहित्य मे समसामयिक समाज उभरता है, उसका हर्ष-विषाद, उसकी आशा-आकांक्षा रूपायित होती है। जैसा समाज होता है, वैसा ही साहित्य बनता है, निर्मित होता है। अर्थात् सामाजिक दबाव साहित्य को दिशा देता है। सम्पूर्ण भक्ति साहित्य विदेशी सभ्यता, संस्कृति के दबाव मे निराशा से उपजे दैन्य के आधार पर तारनहार प्रभु को समर्पित है। सम्पूर्ण रीतिकालीन काव्य मुगलकालीन पच्चीकारी और शृगार का वाहक है। सम्पूर्ण आधुनिक साहित्य की प्रारभिक रचनाएँ, सुधारवादी आन्दोलनो, स्वातंत्र्य चेतना और मुक्ति की सामाजिक पृष्टिभूमि पर रचित उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन और निष्कर्ष न केवल सतही है वरन् अपूर्ण और असंगत भी है। व्यक्ति चेतना, सामाजिक चेतना, युग चेतना, परिवेश की जटिलता साहित्यकार को प्रभावित करती है। पर उसकी सोच, उसका सस्कार, उसकी उन्मुक्तता तथा उसका चैतन्य बड़ी भूमिका अदा करते है। जिसे सामाजिक सोच वाले चिन्तकों ने बराबर दबाने का उपक्रम किया है। दूसरे स्तर पर साहित्य समाज के विकास करने, परिवर्तित करने की शक्ति के रूप मे देखा गया है। साहित्य की यह सामाजिक सोच पाश्चात्य साहित्य पाश्चात्य चिन्तन की देन है। जिसने आधुनिक भारत के बगला, गुजराती, कन्नड़, मलयालम साहित्य को बहुविध प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य के ऊपर यह प्रभाव स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठिभूमि मे उभरता है। भारतेन्दु वह पहला साहित्यकार है जो समसामयिक समाज को, सामन्ती शोषण को, अंग्रेजी दासता, आतक तथा उसके क्रूर प्रभावो दबावो को शब्दबद्ध करता है। गद्य के क्षेत्र में पं बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप मे' एक निबन्ध लिखा 'साहित्य जनसमूह के हृदय विकास है।'[१] इस निबध मे जनसमूह का प्रयोग 'जाति' के संबंध मे किया गया है। इस प्रकार जातीय साहित्य की धारणा का स्वर उभरता है। इसी प्रसंग मे आगे बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है–– 'प्रत्येक देश का साहित्य उस देश

१ *हिन्दी प्रदीप बालकृष्ण भट्ट, जुलाई १८८१।*

के मनुष्यो के हृदय का आदर्श रूप है, जो जाति जिस समय, जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है, वे सब उसके भाव उस सम्य के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते है।'[१] बालकृष्ण भट्ट का उपर्युक्त कथन समाज साहित्य के प्रतिबिम्ब की खोज ही है। इसी क्रम से उन्होने भारतीय प्राचीन काव्यो तथा योरोपीय साहित्य के लेखको की भी चर्चा की है। उन्नीसवी सदी के अन्तिम चरणो मे साहित्य के व्यापक प्रभावो, परिणामो की चर्चा तत्कालीन भारतेन्दु मण्डल के बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, बालमुकुन्द गुप्त की टिप्पणियाँ निबन्धो मे मिलती है। भट्ट ने साहित्य के भावात्मक पक्ष को उभारने का प्रयत्न किया तो आचार्य द्विवेदी ने उसके ज्ञानात्मक पक्ष पर अत्यधिक बल देने का प्रयास किया। उनका सबसे चर्चित एव प्रसिद्ध कथन है— ज्ञान-राशि के संचित कोश का नाम ही साहित्य है यह धारणा समाज के साहित्य के गहरे और स्तरीय सम्बन्ध को उभारती है। उनका स्पष्ट कथन है कि 'जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है, उसका साहित्य भी वैसा होता है। इससे साहित्य और समाज के आपसी रिश्तो की समझ' विकसित हुई। आचार्य द्विवेदी ने साहित्य को समाज को परिवर्तित करने का औजार भी स्वीकार किया तथा उसकी उपयोगिता को रेखांकित करने का भी प्रयास किया। समाज की प्रेरक ही नही परिवर्तनकारी शक्ति के रूप मे उन्होंने साहित्य को विवेचित करने का उपक्रम भी किया है। साहित्य की सामाजिक चेतना को आचार्य शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास मे' स्थापित करने की पुरजोर कोशिश की है। उन्होंने लिखा है कि 'जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप मे भी परिवर्तन होता चला जाता है।'[२] जनता की चित्तवृत्ति पर बल देकर शुक्ल जी ने साहित्य की सामाजिक सोद्देश्यता का अद्भुत इजहार किया है। आचार्य शुक्ल ने साहित्य के विकास को व्यक्ति चेतना तथा समाज चेतना के विकास से जोड़ कर देखा। सामाजिक परिवेश और परिस्थिति से साहित्य के भाव सवेदन स्वरूप ही प्रभावित नहीं होते उसका वाह्य कलेवर, अभिव्यक्ति के तेवर, शैली आदि भी बदल जाते हैं। उन्होने आधुनिक कविता के विकास के द्विवेदी युगीन और तृतीय उत्थान का उदाहरण देकर अपनी उपर्युक्त कविता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। राजनीतिक परिस्थिति के परिवर्तन से भाव बदले, भाव सवेदना के स्तर बदलने से भाषा और अभिव्यक्ति के तेवर बदले। प्राचीन भारत की गौरवगाथा से लेकर वर्तमान भारत की दुर्दशा के स्पष्ट चित्रो की भरमार भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, मैथिलीशरण

१ हिन्दी प्रदीप, बालकृष्ण भट्ट, जुलाई १८८१।

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य शुक्ल पृ० १।

गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय, सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रारंभिक कृतियों में मिलते हैं। परन्तु समाज का मन बदलता है। भारतीय राजनीति में सुधारवादी आन्दोलनों के साथ, सविनय अवज्ञा, असहयोग के स्वर तीव्र होते हैं तथा इनके समानान्तर ही, सशस्त्र विद्रोह, प्राणोत्सर्ग सक्रिय विरोध के स्वर क्रान्तिकारियों के साथ उभरता है। परिणामत रचनाकारों के स्वर में क्रोध अमर्ष, पौरुष, वीरतत्त्व उभरता है। अनेक प्रमाण, उद्बोधन एव धरती तथा राष्ट्र के गीत स्वर पाने लगते हैं। भावों का परिवर्तन भाषा-शैली तथा गद्य की विभिन्न विधाओं मे मुखरित होना है। आचार्य शुक्ल ने रचना मे पाठकों की रुचि की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'आधुनिक साहित्य के विवेचन करने में यह बात ध्यान मे रखनी होगी कि किसी विशेष समय मे लोगो मे रुचि विशेष का सचार और पोषण किधर से और किस प्रकार हुआ।'[1] आचार्य शुक्ल ने भक्तिकाल को जनचेतना का प्रवाह माना है तथा रीतिकाल को आश्रयदाताओं की अभिरुचि का परिणाम कहा है। यह सही है कि बालकृष्ण भट्ट, श्यामसुन्दर दास, महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य शुक्ल साहित्य के मनीषी हैं, चिन्तक हैं, गद्यकार, सुधारक तथा निर्माता हैं। वे हिन्दी गद्य तथा आधुनिकता के पुरोधा हैं। वे निबन्धकार, पत्रकार, समीक्षक एव सम्पादक हैं परन्तु साहित्य के समाजशास्त्री वे नही है। परन्तु यदि हम उनकी गद्य कृतियों का सचेत, सम्यक् अवगाहन करे तो समाजशास्त्रीय विवेचन के महत्वपूर्ण सूत्रों, संकेतों को पकड़ पाने मे सक्षम तथा समर्थ हो सकते हैं तथा उससे समसामयिक सामाजिक परिवेश की परिणति का अन्दाज पा सकते हैं। इतनी सार्थकता भी कम नही है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी बहुचर्चित कृति 'कबीर' में कबीर के व्यक्तित्व और उनकी कविता को कबीर कालीन समाज से जोड़ कर देखने का उपक्रम किया। यह भी सच है कि स्वयं द्विवेदी जी ने समाज और साहित्य के सम्बन्धों की खोज को न तो कोई सुनिश्चित क्रम और न व्यवस्था ही देने का सुचिन्तित प्रयास किया। द्विवेदी जी ने कबीर की कविता और उनके व्यक्तित्व को तत्कालीन समाज के वर्गीय साँचे में देखते हुए उन्हें भक्ति आन्दोलन की सांस्कृतिक प्रक्रिया की उपज कहा। इस प्रकार कबीर के काव्य के सामाजिक आधारों, अर्थों एवं प्रयोजनों का स्पष्टीकरण हुआ। साहित्य की सामाजिक दृष्टि पर सम्यक् विचार हिन्दी के मार्क्सवादी आलोचकों ने किया। सामाजिक, आर्थिक, चिन्तन की एक नयी सरणि यहीं से उभरी है।

मार्क्सवादी-प्रगतिवादी दृष्टि एवं समाजशास्त्रीय सोच-

१९३६ में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक सघ का प्रथम अधिवेशन हुआ। रोटी का राग और क्रान्ति की आग को 'एक हरी भरी ठोस जनपूर्ण धरती' पर उतार कर

१ *हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य शुक्ल, पृ० ८२।*

देखने की बलवती इच्छा ने जन-जीवन मे साहित्य के रिश्तो की जाँच-परख करने का अभिनव प्रयास किया। कुछ ने इसे छायावाद की प्रतिक्रिया कहा और कुछ ने रूसी कम्युनिस्ट पार्टी का प्रभाव परन्तु एक नवीन समस्या, एक नवीन चेतना, धन-धरती-धर्म-राजकर्म को देखने-समझने का नया तरीका उभरा। यह लम्बे अरसे की कुंठा, संत्रास, पीड़ा तथा भय के विरुद्ध असंतोष एवं विद्रोह की भावनाओ का प्रतिफलन था। मार्क्स का दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहा जाता है। मार्क्स अपने अध्ययन काल मे प्रसिद्ध विचारक हीगल से बेहद प्रभावित था। उसने हीगल के उत्पत्ति, परिवर्तन तथा विकास के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया परन्तु उसके निरपेक्ष ब्रह्म की कल्पना को खारिज कर दिया। मार्क्स के पूर्व ही दार्शनिक **फायरबाख** हीगल के प्रमुख विचारो का खण्डन करके भौतिकवाद की महत्वपूर्ण चर्चा उठा चुका था। उसने साफ कहा था कि किसी वस्तु के बिना उसका ज्ञान या बोध नही हो सकता। हीगल और बाख दोनो ने वर्ग संघर्ष की चर्चा नही की। वर्ग संघर्ष की प्राथमिक चर्चा चार्ल्स हॉल ने की। उसने समाज, सभ्यता के साथ ही शोषक-शोषित और वर्गों की उत्पत्ति का महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किया था। मार्क्स ने गहरे अध्ययन, मनन के पश्चात हीगल के द्वन्द्वात्मक तर्क बाख के भौतिकवाद तथा हाल के वर्ग संघर्ष को लेकर एक सम्यक् विचार सरणि तैयार की, जिसे आगे चलकर मार्क्सवाद कहा गया। यह एक अभिनव सोच थी।

मार्क्स ने माना की सृष्टि मे दो तत्वो की प्रधानता है--

१. स्वीकारात्मक, २. नकारात्मक दोनो तत्वो के सघर्ष का नाम ही जीवन है। इन्ही के संघर्ष से चेतना का विकास होता है जिसका मूलाधार पदार्थ ही होता है जिसमे स्थित रहकर दोनो विरोधी तत्व सघर्षरत रहते है। इसी कारण उसने अपने विचारो का नाम दिया द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। मार्क्सवाद ने जीवन के कठोर यथार्थ को समझने-समझाने का उपक्रम किया।

फासिस्टवाद के विरोध मे प्रगतिशील आन्दोलन का प्रारंभ प्रगतिशील संघ के नेतृत्व मे प्रेमचंद, ख्वाजा अहमद अब्बास, हसराज रहबर आदि ने प्रारभ किया। जिमे आगे चल कर 'निराला' ने इसे बल प्रदान किया। सुमन, नागार्जुन, रागेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल, दिनकर, रामविलास शर्मा, नरेन्द्र शर्मा, नामवर सिंह ने अपनी-अपनी रचनाओ के माध्यम से प्रगतिवादी सोच को मुकम्मल विस्तार दिया। यशपाल, राहुल साकृत्यायन नागार्जुन तथा राजेन्द्र यादव ने अपनी कथा-कृतियो मे इस विचार-दर्शन को स्थापित करने की पुरजोर कोशिश की। शिवदान सिंह चौहान, चन्द्रबली सिह, अमृतराय, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय प्रगतिशील धारा के समर्थ समीक्षक कहे जाते है तथा साम्यवाद, वर्ग, संघर्ष वर्ग-चेतना आदि की सामाजिक पृष्ठभूमि को समझने-समझाने। उपर्युक्त कृतिकारो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समालोचना के विकास मे

इन प्रगतिवादियों का योगदान अविस्मरणीय कहा जा सकता है परन्तु समाजशास्त्रीय समीक्षा के कतिपय सन्दर्भ ही यहाँ है। मार्क्सवादी या प्रगतिशील आलोचना को भ्रमवश यदा-कदा साहित्यिक समाजशास्त्र मान लिया जाता है। पर मार्क्सवादी आलोचना समाजशास्त्रीय नही है। मार्क्सवादी आलोचना साहित्य की क्रांतिकारी समझ पैदा करती है, जबकि समाजशास्त्रीय आलोचना ऐतिहासिक समझ को विकसित करती है। भारतीय प्रगतिधारा की आलोचना काव्य-भाषा, रचना-प्रक्रिया सामाजिक अनुबन्ध, प्रभाव, परिणाम की चर्चा पैदा करती है पर छिट-पुट सन्दर्भो को छोड़कर समाजशास्त्रीय समीक्षा के मान्यताओं तथा मूल्यों को व्यवस्थित क्रम दे पाने मे उपर्युक्त समीक्षको का समूह बहुधा चूकता ही रहा है।

हिन्दी की मार्क्सवादी आलोचना मे समाजशास्त्रीय दृष्टि से समीक्षा मे पहल किया 'मुक्तिबोध' ने 'कामायनी एक पुनर्विचार' शीर्षक पुस्तक १९६१ मे प्रकाशित हुई **'मुक्तिबोध'** ने इस समीक्षा कृति मे समाजशास्त्रीय दृष्टि को परीक्षित किया। उन्होने लिखा 'साहित्यिक कलाकार अपनी विधायक कल्पना द्वारा जीवन की पनर्रचना करता है, जीवन की यह पुनर्रचना ही कलाकृति बनती है। कला मे जीवन की पुनर्रचना होती है वह सारत उस जीवन का प्रतिनिधित्व करती है जो जीवन इस जगत् मे वस्तुत. जिया और भोगा जाता है।'[१] व्यावहारिक पक्ष को भी स्पष्ट किया है। उन्होंने लिखा है कि 'किसी भी साहित्य को तीन की तरह से देखा जाना चाहिए। एक तो वह किन स्रोतो मे उद्गत होता है अर्थात् किन वास्तविकताओ के परिणामस्वरूप वह साहित्य उत्पन्न हुआ है। दूसरे उसका कलात्मक प्रभाव क्या है और तीसरे उसकी अ— कृति, रूप-रचना कैसी है।'[२] इस प्रकार वे तीन अवस्थाओ की चर्चा को प्रमुखता देते हैं— १. साहित्य का सामाजिक उद्गम, २. कलात्मक एकता, ३. रूप, रचना, विधान इन तीन आधारो पर साहित्यिक रचना का समाजशास्त्रीय विवेचन किया जा सकता है।

सामाजिक ऐतिहासिक दृष्टि और उनका अतर्सम्बन्ध–

व्यक्ति चेतना बनाम समाज, मार्क्सवाद के साम य परिचय से उभरता है। सामाजिक दृष्टि समाज और साहित्य के विविध सम्बन्धो की खोज और अन्वेषण मे संलग्न होती है। साहित्य गत्यात्मक विधा है। वह निरन्तर परिवर्तित एवं विकासोन्मुख होती रहती है। विकास की यह परम्परा समाज की विकास-प्रक्रिया मे प्रभावित एवं परिचालित होती रहती है। पर समाज के इस परिवर्तन एवं प्रभाव के लिए इतिहास-दृष्टि' को समझा जाना जरूरी है तभी समाज मे साहित्य की परम्परा और कृति की समकालीन विशिष्टताओ को परखा जा सकता है। समाज के इतिहास, समाज की चित्तवृत्ति, समाज की समसामायिक स्थिति को इतिहासकार ठीक तरीके मे रख सकता है। समाज का इतिहास साहित्य की

१ कामायनी एक पुनर्विचार- मुक्तिबोध पृ० १६।

२ वही।

भूमिका बनता है। साहित्य के सामाजिक सन्दर्भों को जानने-पहचानने के लिए इतिहास के सन्दर्भों की जरूरत होती है। इतिहास के सदर्भ मे साहित्य को समझना उसे परम्परा और परिवेश के बीच से समझना है। इस सबध मे प्रमुख इतिहासविद् *डॉ० रोमिला थापर* ने लिखा है कि सस्कृति सामाजिक प्रक्रिया मे रचित और अर्जित प्रतीको की एक व्यवस्था है, और इस व्यवस्था की निरन्तरता से परम्परा का निर्माण होता है। रोमिला थापर, डी डी कोसाम्बी तथा सुधीरचन्द्र जैसे इतिहासकारो ने' इतिहास, समाज तथा साहित्य के अन्तर्सम्बन्धो पनर विस्तार से चर्चा की है। उनकी सोच, उनकी दृष्टि तथा उनके निष्कर्षो ने समाजशास्त्रीय दृष्टि को इतिहास के आइने मे जाचा-परखा है। उनके प्रयासो से एक अवधारणा बनी है।

दामोदर धर्मानन्द कोसाम्बी की साहित्य की ऐतिहासिक दृष्टि उनकी तीन महत्वपूर्ण कृतियो मे उभरकर सामने आयी है— १ एन इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी आफ इडियन हिस्ट्री १९५६, २. दि कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन आफ एन्सियेन्ट इण्डिया तथा ३ मिथ एण्ड रियाल्टी।

उन्होने भारतीय सस्कृति के प्रचलित मिथको के ऐतिहासिक स्रोत[२] और सामाजिक अर्थ की व्याख्या के माध्यम से भारतीय इतिहास को समझने का नया प्रयास किया है। सर्जनात्मक साहित्य की व्याख्या के द्वारा वे अपनी इतिहासपरक सामाजिक दृष्टि को साफ और स्पष्ट करते है। दिशा मे भर्तृहरि की रचना 'वैराग्य शतक' के विश्लेषण से वे समाज दृष्टि के विशिष्ट सूत्रो की खोज करते है। महान् रचनाकारो की सामाजिक चेतना *की अभिव्यक्ति पद्धति का विवेचन करते हुए कोसाम्बी का कथन है कि* 'एक महान् लेखक अपनी रचना में स्वयं को सीधे-सीधे प्रकट नही करता। वह अपने अनुभवो के साथ-साथ दूसरे के अनुभवो को भी व्यक्त करता है। लेकिन इस अभिव्यक्ति की प्रक्रिया मे वह जिन बिम्बो एवं मुहावरो का प्रयोग करता है, उनमे उसके वर्ग और सामाजिक संरचना की छाप मौजूद रहती है।[३]

कोसाम्बी कविता की व्याख्या मे वर्ग-दृष्टि की खोज को विशिष्ट महत्व देते है। वे भाषिक सौन्दर्य के साथ ही वर्गीय चेतना के आधार पर भी बल देते है। उनके अनुसार— किसी लेखक की महानता उसकी रचना के भाषिक सौन्दर्य मे ही नही होती है, रचना के भाषिक सौन्दर्य के पीछे भी वर्गीय चेतना का आधार होता है। लेकिन कला और वर्ग चेतना का सम्बन्ध सीधा एवं सरल नही होता।[४]

१. *सोशल साइंटिस्ट नं १६५, पृ० १६, रोमिला थापर।*
२ *एग्जॉस्परेटिंग एसेज- डी डी कोसाम्बी, पृ० ८७।*
३ *वही, पृ० ८२।*
४ *वही, पृ० ९२।*

इस प्रकार कोसाम्बी ने तीन सूत्र दिये हैं—

१. मिथकों में इतिहास के सूत्रों को समझना।

२. बिम्बों तथा मुहावरों के प्रयोग में सामाजिक स्रोतों की पहचान करना तथा

३. भाषिक संरचना के सूत्रों में वर्गीय सामाजिक स्तरों की पहचान करना।

कोसाम्बी के प्रयासों को आगे बढ़ाया है आज की प्रसिद्ध इतिहासविद् रोमिला थापर ने। उन्होंने साहित्य की परम्परा को सामाजिक यथार्थ से जोड़ कर देखने का प्रयास किया है। *रोमिला थापर* भारतीय परम्परा को अविच्छिन्न और अभिजात्य नहीं मानती। वे इतिहास में संस्कृति के विभिन्न रूपों एवं परम्पराओं के अस्तित्व एवं उनके आपसी संघर्ष की भी चर्चा उठाती है। वे संरक्षण तथा आश्रय की स्थिति पर गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत करती है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि 'संस्कृति और साहित्य की परम्परा को समझने के लिये संरक्षण की प्रवृत्ति और भूमिका को समझना आवश्यक है।'' साहित्यिक संरक्षण की स्थितियों का अध्ययन अनेक पाश्चात्य समाजशास्त्रियों ने किया है।

संरक्षण से तात्पर्य है कवि या कृतिकार द्वारा अपने आश्रयदाता से, व्यक्ति या संस्था से आवश्यक सुख-सुविधा को पाना। प्राचीन काल में राजदरबारों, मन्दिरों, मठों, तथा संघों से कलाकारों को संरक्षण मिलता था। कवि अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में रचना करता है। कलाकार, संगीतकार, स्थापत्यकार भी अपने संरक्षक के मनोरंजन, उनकी कीर्ति के लिये रचनासंलग्न होते रहते हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत मध्यकालीन हिन्दी काव्य का अधिकांश भाग संरक्षण में रहने वाले आश्रित कवियों, कृतिकारों की देन है। हर्ष चरित, विक्रमांक देव चरित, हरिषेण का स्तम्भलेख, कीर्तिलता, पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, केशव, बिहारी, देव, भूषण की कृतियाँ राजाश्रय में ही लिखी गयी हैं। ये प्रशस्ति काव्य अपनी प्रभावान्विता से राज सत्ता को उठाने, गिराने में भी सहयोगी रहे हैं। वे राजसत्ता की शक्ति बढ़ाते रहे हैं। शिवाजी या छत्रसाल का जो व्यक्तित्व उभरता है उसमें भूषण का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रशस्ति गायकों ने जनता के मन में राजा की गरिमा, उसके सम्मान को बढ़ाया है परन्तु विरोधी एवं शत्रु को चारित्रिक दृष्टि से वे उपदस्थ भी करते रहे हैं। इन प्रशस्ति काव्यों को देखने से युगीन इतिहास और समाज का अन्दाज लगता है। इस सन्दर्भ में— *रोमिला थापर* लिखती हैं कि आज हमें परम्परा के निर्माण की प्रक्रिया को समझने की जरूरत है और विभिन्न परम्पराओं के आपसी टकराव को भी समझने की जरूरत है। तभी हम अतीत की परम्परा और प्राचीन सांस्कृतिक रूपों का विवेकपूर्ण मूल्यांकन कर सकते हैं।[2]

आज के भारतीय समाज की विभिन्न समस्याओं का गहरा सम्बन्ध उपनिवेशवादी

१. सोशल साइंटिस्ट-रोमिला थापर, पृ०१८।

२. सोशल साइंटिस्ट- रोमिला थापर, पृ० ३०।

दौर के आर्थिक-सामाजिक ढाँचे और उनसे प्रभावित चेतना से है। आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य सस्कृति का जो अन्धानुकरण हुआ है वह चाहे पयत्रिका, सिनेमा, टेलीविजन जैसे संचार माध्यमो से हुआ हो, चाहे प्रत्यक्ष दर्शन से या आपसी मेल-जोल, पर्यटन तथा विज्ञापन व प्रौद्योगिकी विषयक आयोजनो से उसने भारत की नयी पीढ़ी को उन्मुक्त जीवन शैली, परम्परित सदाचारो, मूल्यो, मान्यताओ यहाँ तक की सामाजिक अनुबन्धो, रिश्तो, विवाहो को तोड़ने, बिखरने, उदण्डता को मान देने, धन को सम्मान देने मे विशेष पहल की है, जिसका प्रभाव साहित्य की विधाओ पर भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

उन्नीसवी सदी भारत के नवजागरण की भी सदी रही है, इसलिए सामाजिक चेतना के विकास तथा परिवर्तन की भी साक्षी रही है। देश के भीतर चलने वाले किसान आन्दोलन, युवा आक्रोश, कामगारो, मिल मजदूरो के आन्दोलनो ने भी साहित्य को *बेहद प्रभावित किया है। भारतीय समाज मे बाल विवाह, सती प्रथा, दहेज और नारी* मुक्ति के आन्दोलन पितृ सत्तात्मक को चुनौती देने वाले रहे है, जिसे साहित्यकारो ने पूरी शिद्दत से उठाया है। किसान आन्दोलनो का व्यापक प्रभाव प्रेमचद तथा बाद के प्रगतिशील रचनाकारो की कृतियो मे प्रतिफलित हुआ है। इतिहासकारो ने उन्नीसवी सदी के साहित्य का समस्यामूलक अध्ययन किया है। राष्ट्रीय चेतना तथा साम्प्रदायिक चेतना के पक्ष-*विपक्ष को भी विचार का विषय इतिहासकारो ने बनाया है। डॉ० सुधीरचन्द्र* ने इस दिशा मे महत्वपूर्ण पहल की है।

डॉ० सुधीरचन्द्र ने साहित्य का उपयोग इतिहास के प्रमुख स्रोत के रूप मे किया है और साहित्य मे सामाजिक चेतना की खोज की है। भारतेन्दु तथा उनका युग साहित्य के गहरे अनुशीलन के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि भारतेन्दु और उनके बाद के रचनाकारो मे राष्ट्रीय चेतना तथा साम्प्रदायिक अस्मिता के बीच कोई बुनियादी विरोध नही है। सुधीर चन्द्र ने अपने एक लेख मे उन्नीसवी सदी के नारी जागरण और पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था की छानबीन की है। वे विधवा की विवाह की समस्या का विविध पहलुओ से विवेचन के पश्चात् आदर्श स्थिति *तथा सामाजिक भय के द्वन्द को ठीक-ठीक रेखाकित करते है। रचनाकार एक तरफ* नैतिकतावादी आग्रह पर जोर देता है परन्तु सामाजिक उथल-पुथल की आशका से ग्रस्त भी है। विधवा के प्रति सहानुभूति के बावजूद उस खेमे के लेखको मे सन्देह का एक प्रबल भाव भी है। सुधीर चन्द्र के अतिरिक्त आधुनिक इतिहासकारो-डा परमानन्द सिह, डा महेन्द्र सिंह, डा वाचस्पति पाठक, डा रामचरण शर्मा ने भी इतिहास-दृष्टि को सामाजिक मूल्यो, भावो से परीक्षित करने का उपक्रम अपने ग्रंथो, लेखो मे किया है। आधुनिक साहित्यिक आन्दोलनो की कुंठा, संत्रास, पीड़ा, दर्द तथा एकाकीपन की आज के समय वर्तमान इतिहास की घटनाहीन विसगति के बीच से देने-समझने की एक मुकम्मल सोच डा परमानन्द के पास है। यह अलग

बात है कि वे इतिहास की परम्परा मे समाज की बहुआयामी, विघटनवादी, विखगववादी वृत्ति को अर्थ तथा विज्ञान की मानवीय त्रासदी का परिणाम मानते है जो एक सीमा तक सच होते हुए भी पूरा सच नही है क्योंकि कल्पना, संवेदना भाषिक तनाव, पीढियो के अन्तर, नवता के प्रति अंधी अभीप्सा जैसे कारणो को वे नजरअदाज कर देते है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय सन्दर्भ–

समाज और उसका शास्त्र तथा साहित्य के समाजशास्त्र दोनो अब सम्बन्धित होते हुए भी एक नही है। साहित्य के समाजशास्त्र को जानने के लिये समाजशास्त्र के मूल सिद्धान्तो, प्रवृत्तियो की जानकारी आवश्यक एव उपादेय है। कला तथा साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि के निर्माण-समाजशास्त्र की सम्यक जानकारी सहायक होती है। भारत मे समाजशास्त्र के अन्तर्गत कला और साहित्य के समाजशास्त्र पर कम विचार किया गया है। इस तथ्य को प्रमुख मूर्धन्य समाजशास्त्री राधाकुमुद मुखर्जी, दु खींम तथा धूर्जटि प्रसाद मुखर्जी ने स्वीकार किया है। डा डी पी मुखर्जी विख्यात रचनाधर्मी, साहित्यकार तथा प्रमुख समाजशास्त्री के रूप मे प्रतिष्ठित है समाजशास्त्र के अध्ययन के इधर नये क्षितिज विकसित हुए है। परन्तु भारतीय विश्वविद्यालयो, सस्थानो मे आज भी ग्रामीण, शहरी, औद्योगिक समाजशास्त्र मे आगे बढने की प्रवृत्ति विकसित नही हो पायी है। गतानुगतिकता की ढोल पीटी जा रही है।

डी. पी. मुखर्जी का चिन्तन भारतीय कला एवं साहित्य के लिये बेहद मूल्यवान तथा प्रेरक सिद्ध हो सकता है। **डायवर्सिटीज** की भूमिका मे उन्होंने स्पष्ट किया है कि 'मुझे व्यापक संदर्भो मे सोचने की दीक्षा मिली है। उनके चिन्तन मे आर्थिक, राजनीतिक एवं सास्कृतिक सोचो का समन्वय है। वे कला के समाजशास्त्र को व्यापक परिप्रेक्ष्य मे देखने, समझने वाले चिन्तक है। वे भारतीय सामाजिक परम्परा के मूर्धन्य जानकार है तथा लोक-व्यवहार, इतिहास, साहित्य, धर्म के परम चिन्तक भी। वे इतिहास और उसकी परम्परा के अध्ययन पर बल देते है। वे परम्परा के अध्ययन क्रम मे प्रतीको के अध्ययन पर विशेष बल देते है। 'सामाजिक परिवर्तन और बौद्धिक दिलचस्पी' नामक उनका निबंध इस दिशा मे एक प्रभावी पहल है। उनका मानना है कि कला की अन्तर्वस्तु परिवर्तित हो रही है अतएव कला के नये प्रयोगो पर भी ध्यान दिया जाना जरूरी है। आज के कला विषयक या साहित्य विषयक प्रयोग सामाजिक परिवर्तनो को न केवल प्रेरित कर रहे है वरन् वे उन्हे आद्यान्त परिचालित भी कर रहे है। डॉ पी मुखर्जी ने 'कथा साहित्य मे सामाजिक समस्याये' शीर्षक निबन्ध मे उपन्यास के बहाने कथा साहित्य के समाजशास्त्र पर सम्यक् विचार किया है। उनकी सबसे प्रभावी एवं विचारोत्तेजक कृति है। 'भारतीय साहित्य का समाजशास्त्र' जिसमे कृतियो, लेखको, विधाओ और काल खण्डो के साहित्य का सम्यक समाजशास्त्रीय विवेचन का प्रयास उन्होंने किया है। वे

सास्कृतिक प्रक्रिया के मूल्य मे सामाजिक प्रक्रिया का समुचित सधान करने वाले कृति है जिसमे वे पश्चिम के प्रभाव, उपनिवेशीय दवाव तथा मध्यवर्ग की भूमिका को रेशे-रेशे मे उकेर कर देखने के प्रयास मे संलग्न हुए है। उनका मानना है कि भारतीय साहित्य मे समानता, स्वतंत्रता, देशभक्ति का भाव पश्चिम की देन है परन्तु आध्यात्म, दर्शन तथा भ्रातृत्व-बन्धुत्व का बोध नितान्त भारतीय है।

इसी क्रम मे समाजशास्त्री चिन्तन और सोच की नयी पद्धति को पूरनचन्द्र जोशी ने अग्रगामी बनाया है। उन्होंने लिखा है 'मूल्यों और नैतिकता के माध्यम से समाजशास्त्र और सस्कृति के बीच एक अटूट सम्बन्ध स्थापित होता है। सस्कृति पतन होने पर समाजशास्त्र मूल्यहीन या मूल्य निपेक्ष होने लगता है और इस तरह वह दिशाहीन ही नही अमानवीय भी हो जाता है।'[१]

पी. सी. जोशी सत्ता संघर्ष, आर्थिक क्रान्ति और सास्कृतिक जागरण तीनो को परस्पर सम्बद्ध मानने के आग्रही है। समाजशास्त्र को वे देश-काल मे निरपेक्ष नही मानते। वह मानव, समाज, काल की दशा-दिशा को समझने-समझाने वाला शास्त्र है। साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता मे जो घटाव है, जो व्यवधान है उसे जानने-समझने की दिशा मे जोशी का साहित्य मददगार है। पी सी जोशी ने प्रेमचन्द की रचनाओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण नितान्त मौलिक तरीके मे किया है। वे साहित्य की आलोचना को समाज की विकास-प्रक्रिया से जोड़ कर देखने के आग्रही है। प्रेमचन्द के सन्दर्भ मे वे औपनिवेशिक भारत तथा पूँजीवादी रुझान के अर्न्तविरोधो को ठीक-ठीक व्याख्यायित करने की भरसक कोशिश के लिये लम्बे अरसे तक याद किये जाने योग्य है। वे साहित्य के इतिहास तथा समाज के इतिहास के भीतरी द्वन्द्व को पहचान कर उसे रेखाकित करने की पुरजोर कोशिश करते है। उनका मानना है कि 'लेखक की सफलता अपने वर्गीय पुर्वाग्रहो और उसकी सीमाओ से मुक्ति पर बहुत कुछ आधारित था।'[२]

हिन्दी मे साहित्य के समीक्षको ने पाठक समुदाय पर ध्यान ही नही दिया है। अतएव पाठक की रुचि की भी कोई भूमिका साहित्य मे हो सकती है इस पर विचार नही किया गया है। पाठक की रुचि, उसकी प्रतियद्धता की जान पहचान से, काल विशेष की अभिरुचि का पता लगाया जा सकता है। पाठक की दृष्टि से भी रचना के आर्थिक, सांस्कृतिक पक्ष का सम्यक् अध्यय-विवेचन सम्भव हो सकता है। हिन्दी के महत्वपूर्ण उपन्यासो की समाजशास्त्रीय समीक्षा के प्रयास किए है श्री राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, दूधनाथ सिंह एवं सत्य प्रकाश मिश्र ने। इनमे राजेन्द्र यादव ने देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास *'चन्द्रकान्ता सन्तति'* की अर्न्तवस्तु और रूप का सविस्तार

१ *परिवर्तन और विकास के सास्कृतिक आयाम-पूरनचन्द्र जोशी, पृ० ७४।*

२ *परिवर्तन और विकास के सास्कृतिक आयाम-पूरनचन्द्र जोशी, पृ० १८६-८७।*

विश्लेषण किया है। चन्द्रकान्ता का प्रकाशन १८८७ मे हुआ था। यह काल भारतीय इतिहास, समाज तथा साहित्य के लिए विशेष महत्व का कालखण्ड था। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास तिलस्मी, ऐयारी कोटि के उपन्यास है। उर्दू मे दास्तानो की एक लम्बी परम्परा हमे दिखायी देती है। खत्री की रचनाएँ उसी परम्परा और पैटर्न की रचनाएँ है। इनके उपन्यासो मे उर्दू की साफगोई, सपाट बयानी और किस्सा गोई का जबर्दस्त प्रभाव है। चन्द्रकान्ता सन्तति एक पाठकीय सुरुचि की सरचना है, यहाँ इस उपन्यास का फैलाव *किस्सागोई और दास्तानो से भिन्न है।* राजेन्द्र यादव ने इस उपन्यास की लोकप्रियता की खोज से, पाठकीय संभावना मे अपनी समीक्षा का प्रारम करते है। उसकी सामाजिकता सीधे-सीधे जाहिर नही होती क्योंकि यह एक फैटेसी संरचना है। यह उथल-पुथल का काल रहा है। यह प्रथम स्वाधीनता सग्राम के पराभव से उपजी हताशा का काल रहा है। अतएव भौतिक पराजय को बौद्धिक सफलता मे परिवर्तित करने का भाव इस औपन्यासिक कृति को *व्यापकता देने मे एक कारण रहा होगा।* राजेन्द्र यादव ने चन्द्रकान्ता तथा उस शृखला के अन्य उपन्यासो की समीक्षा के लिये समाजशास्त्रीय आलोचना का सहारा लिया है। इसी क्रम मे बाबा नागार्जुन का नाम भी विशेष आदर के साथ लिया जाना चाहिए। नागार्जुन ने लेखकीय स्वतंत्रता, जीविका और संरचना को समाजशास्त्रीय दृष्टि से विवेचित करने का प्रयास किया है। १९५८ मे प्रकाशित उनका निबन्ध ***'राज्याश्रय और साहित्य जीविका'*** उन्हे इस दिशा मे प्रसिद्ध विचारक सिद्ध करता है। साहित्य साहित्यकार और रचना की सामाजिकता पर अलग से विचार करने का श्रेय डॉ. बच्चन सिंह, डॉ काशीनाथ सिंह, डॉ शिव प्रसाद सिंह, डॉ. रघुवंश एवं डॉ अवधेश प्रधान, डॉ प्रभाकर श्रोत्रीय, श्रीकान्त वर्मा को भी है। डॉ० श्रीकान्त वर्मा का 'जिरह', डॉ गोविन्द रजनीश का *'साहित्य का सामाजिक यथार्थ'* आदि महत्व के संकलन है, जिनके अध्ययन से साहित्य के समाजशास्त्र का परिचय मिलता है। डॉ. नामवर सिंह, डॉ मैनेजर पाण्डेय के ***'आलोचना'*** मे प्रकाशित निबन्धो, साक्षात्कारों मे भी समाजशास्त्रीय समीक्षा के कतिपय सन्दर्भों की सटीक पहचान होती है। डॉ० रामविलास शर्मा के समीक्षा ग्रन्थ ***'मार्क्स और पिछड़े हुए समाज'*** से समाजशास्त्रीय के कई स्तर समझ मे आ सकते है।

रचना, रचनाकार और साहित्य के आपसी सरोकारो को समझने के लिए समाजशास्त्रीय पद्धति अपरिहार्य मानी जा सकती है। वह सामाजिक रिश्तो, स्थिति और गति के रिश्तो का मनुष्य मूल्यो के रिश्तो का परिवर्तन के रिश्तो का, लेखक का समाज के साथ व्यक्ति और प्रतिबद्ध रचनाकार के रूप मे दोहरे रिश्तो का परीक्षण है।

❖❖❖

2

साहित्यिक स्वरूपों का समाजशास्त्रीय अर्थ

समाज की शास्त्रीय अवधारणा

प्रसिद्ध पाश्चात्य समाजशास्त्री *'आगस्त कॉम्ट'* ने जब यह अतिशयोक्तिपूर्ण गर्वोक्ति की थी, समाजशास्त्र एक मात्र ऐसा विज्ञान है जो सम्पूर्ण समाज का वास्तविक अध्ययन करता है तो इस पर भारी प्रतिक्रिया हुई थी और *'समग्रता'* पर जो बलाघात कॉम्ट ने दिया था उससे सामाजिक शास्त्र, इतिहास, अर्थ, दर्शन, राजनीति, नेतृत्व, पुरात्व, मनोविज्ञान मनोविश्लेषण आदि के अध्ययन पर प्रश्नचिह्न उभर आया था। समाजशास्त्र अन्य शास्त्रो से अधिक विस्तार से समाज और उसके विविध अनुषगो का अध्ययन करता है। पर वह ही एक मात्र अध्ययन करने वाला शास्त्र नही है। आगे चलकर *'स्पेन्सर'* ने समाजशास्त्र के अवयवी सम्बन्धो की चर्चा उठाकर पारस्परिक सबधो के महत्व को रेखाकित भी किया तथा अन्य शास्त्रो के सम्बन्ध को अपेक्षित महत्व भी प्रदान किया। जबकि *'लेस्टर वार्ड'* ने अन्य शास्त्रो को समान महत्व प्रदान किया जिसे मोच्चानी का भी समर्थन प्राप्त है। इसी परम्परा मे *'सारोकिन'* ने यह स्पष्ट करने की भरपूर कोशिश की कि *'समाजशास्त्र'* अन्य सामाजिक विज्ञानो का जनक नही है वरन् वह अन्य सामाजिक विज्ञानो की भाति ही एक स्वतत्र विज्ञान है जिसकी अपनी सीमाएँ भी हैं और कमियाँ भी। *बार्न्स और बेकर* ने ठीक ही कहा है कि 'समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानो की न तो गृहस्वामिनी है और न दासी, बल्कि उनकी बहिन।'[1]

समाजशास्त्र की शास्त्रीय अवधारणा के संबध मे विचार करने पर प्रतीत होता है कि १८७३ मे हरबर्ट स्पेसर ने सर्वप्रथम मानव समाज पर व्यवस्थित अध्ययन कर एक पुस्तक प्रकाशित की जिससे समाज के शास्त्रीय अध्ययन के प्रारभिक सूत्र उभरे। १८७६ मे अमेरिका के *'येल'* विश्वविद्यालय मे समाजशास्त्र का अध्यय-अध्यापन प्रारभ हुआ। सामाजिक प्रगति और व्यवस्था के सम्यक् अध्ययन की आवश्यकता को रेखाकित करके समाज के भीतर घटित होने वाली घटनाओ स्थितियो के नियमन की रूपरेखा के समझने के प्रयास से ही समाजशास्त्र की प्रारभिक रूपरेखा बनी तथा सम्यक् अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हो सका। फ्रास के सामाजिक विचारक *'काम्ट'* के पश्चात श्री इमाइल दुर्खामि (१८५९-१९९७) ने समाजशास्त्र को 'सामूहिक प्रतिनिधित्व का

१ बार्न्स एण्ड बेकर सोशल साइन्स फ्रॉम लोर टू साइस' वाल्यूम-१, पृ० ३१।

विशेष अध्ययन करने वाला विज्ञान कहा। समाजशास्त्र मानव-समाज की संस्कृति, सामाजिकता परिवेश, पर्यावरण, परम्परा और अन्त सम्बन्धों का अध्ययन करने वाला शास्त्र है परन्तु इसके भीतर व्यक्ति, परिवार, वश, आचरण, कार्य-व्यवहार तथा शील का भी विवेचन समाहित होता है। एतदर्थ यह एक ऐसी अध्ययन सारणी है जिसके अन्तर्गत भूत, वर्तमान एवं भविष्य की उन समस्त क्रियाओं, प्रक्रियाओं को समाहित किया जा सकता है, जो मानव से सबधित और सायुज्य होती है।

समाजशास्त्र सम्बन्धो, आचरण और उन सभी प्रकारो का भी विवेचन करता है जिससे मानव अपनी सामाजिकता को प्रमाणित करता है वरन् अपने अस्तित्व की रक्षा के अनथक प्रयास को भी सम्भाव्य बनाता है। वह सामाजिक विकास के सभी स्तरो, सोपानो, सारणियो की समीक्षात्मक समालोचना भी करता है तथा शुभ अस्र और श्रेयस्कर तत्वो का अनुसंधान भी करता चलता है। हम मान सकते है कि ***प्लेटो*** ने 'दी रिपब्लिकन' तथा ***अरस्तू*** ने 'इथिक्स' और 'पोलिटिक्स' मे समाज मे मौलिक तत्वो का विवेचन विश्लेषण किया था। ***सिसरो*** तथा ***सेण्ट आगस्टाइन*** ने सामाजिक सूत्रो की पहचान से ही दर्शन की पीठिका पर विचार किया था पर जिसे समाजशास्त्र का शास्त्रीय अध्ययन कहा जा सकता है। वह बहुत बाद की चीज है और उसके सूत्र निश्चय ही उन्नीसवी सदी मे ही खोजे जा सकते है।

१५वी सदी मे ही दार्शनिक चिन्तन के भीतर प्रकृति और समाज की विशेष स्थिति पर विचार-विमर्श प्रारंभ होता है। सभ्यता और संस्कृति के अध्ययन के साथ ही प्रकारान्तर मे समाज बनने-बिगड़ने की स्थिति का भी अध्ययन होने लगता है.... समाज को एक इकाई मानकर उसक व्यवस्थित.. का सर्वथा स्वतंत्र विधा निश्चय ही १९वी सदी की देन है। .. सम्मेलन ने सबसे पहले यह अवधारणा स्थापित की कि समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धो का विज्ञान है जिसे आगे चल कर ***'कार्लमार्क्स'*** की ऐतिहासिक व्याख्या और संस्कृति के समाजशास्त्र मे पर्याप्त बल मिला। सामाजिक क्रियाशीलता के परिचय को वैज्ञानिक और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सम्बल देकर निश्चय ही ***मार्क्स*** ने सोच का एक नया क्षितिज खोल दिया और समाज की वैज्ञानिक क्रिया-प्रतिक्रियाओ के अध्ययन मे सलग्न रहने वाले एवं विशिष्ट शास्त्र के रूप मे स्थापित करने मे महत्व पूर्ण भूमिका निभायी। १९०७ मे इग्लैड मे १९२० मे पोलैण्ड मे, १९२४ मे मिश्र मे तथा १९४७ मे स्वीडेन मे समाजशास्त्र पृथक विषय के रूप मे सामाजिकी का अग बना अमेरिका मे समाजशास्त्र का बहुआयामी अध्ययन प्रारंभ हुआ गिडिम्स, समनर, लेस्टर वार्ड, राम पार्क बर्गेन्स सोरोकिन ***'मेकाइबर'*** मर्टन, नैडेल योग आदि ने समाजशास्त्र के अध्ययन को लोकप्रिय भी बनाया और उसके क्षेत्र को पर्याप्त विस्तार भी दिया। अमेरिकी विचारको ने समाजशास्त्र के अध्ययन को गंभीरता

भी दी, और गहराई भी, जबकि इग्लैण्ड के समाजशास्त्रियो, विशेषत चार्ल्स बूथ, गिर्सबर्ग और मिल ने अर्न्तसम्बन्धो, सूक्ष्म सन्दर्भो और परिवर्तन का भी आकांक्षाओ के प्रतिफलन एवं परिगणन का भी व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया।

भारत मे समाजशास्त्र की अवधारणा एक शास्त्र के रूप मे बीसवी शदी मे प्रतिफलित एव विकसित हुई पर समाज और उसकी चिन्ता का सूत्रपात तो प्राचीन भारत मे ही सबसे पहले हुआ था। वैदिक सस्कृति के काल मे हमे जो *पुरुष सूक्त* का पहला ही मत्र मिलता है वह है— *'आनो भद्राः कर्तवः यन्तु विश्वतः'*[1] समवेत समाज की कल्याण कामना का यह मंत्र हमारी प्राचीन सामाजिक चिन्ता का सबसे प्राथमिक और विशिष्ट प्रमाण है। आदिम सामाजिकता से व्यवस्थित परिवार, कुल, गोत्र, ग्राम की अवधारणा जो पूर्व वैदिककाल मे विकसित हो चुकी थी वैदिक युगीन याज्ञिक परम्परा और सस्कृति मे उसने यथेष्ट ऊँचाई ही नही एक मजबूत सगठन का स्वरूप भी आख्तियार कर लिया था। इसके पुष्ट प्रमाण हमारी वैदिक ऋचाओ, सहिताओ मे देखे जा सकते हैं।

उपनिषद्कालीन भारत मे व्यक्तिवाद और भौतिकवाद का संघर्ष हमे स्पष्ट ही दिखायी देता है। व्यक्ति चेतना और भौतिक सुखो के पीछे अनिवार्य धावन समाज को स्थायित्व नही दे सके। अतएव आध्यात्मिक सोच और चिन्तन मे परलोक को आधार मानकर व्यक्ति के कर्तव्यो, क्रियाओ का निर्धारण किया गया। भारत के मनीषियो की सामाजिक चिन्ता का यह प्रथम चरण था। आगे चलकर स्मृतिकारो ने समाज के, कुल, वर्ण, आश्रम, कर्मयज्ञ विवाह आदि विधियो से सयुक्त करके व्यवस्था प्रदान करने का उपक्रम किया। लोक अनुरंजन, लोक कल्याण और जनहित की चिन्ता मे सलग्न रह कर भी स्मृतिकारो ने समाज को नियमो, प्रतिबन्धो और वर्जनाओ से जकड़कर स्थायित्व प्रदान करने का भरसक प्रयास किया। वर्णो की पृथकता, कर्मक्षेत्र का बंटवारा, अनुलोम विवाहो की अनिवार्यता आदि ऐसे अनेक प्रकरण सयोजित किए गये जिससे समाज की उच्छृखलता को, बिखराव को रोका व प्रतिबन्धित किया जा सके। नारदस्मृति, पाराशर स्मृति, याज्ञवलक्य स्मृति, भृगु स्मृति, मनुस्मृति आदि ने सामाजिक विषयो पर नियमो, प्रतिनियमो का जाल फैलाया।

महाभारत काल मे विदुर, भीष्म, श्रीकृष्ण आदि ने टूटते समाज को नैतिक आधार देने का प्रयास किया। सामाजिक नियमन एवं नियत्रण की इस अवधारणा मे आगे चलकर जड़ता स्थायी भाव के रूप मे टिक गयी और प्रतिबन्ध उच्च वर्ण के निहित स्वार्थो तथा शोषणों के कारगर हथियार बनते गये।

मौर्यकालीन भारत मे चन्द्रगुप्त मौर्य के राजनीतिक दार्शनिक गुरु विष्णुगुप्त चाणक्य ने एक बार पुन. परिवर्तन के कगार पर टकरा ही सामाजिक लहरो को नियत्रित करने

१ ऋग्वेद- पुरुषसूक्त, मत्र-१

की भरसक कोशिश की थी पर सामाजिक चेतना आगे चलकर अवरुद्ध हो गयी। वर्ण विभाजन ने धीरे-धीरे जातीय सन्दर्भो मे अपने को समाहित ही नही किया वरन् एक बंद और स्थिर समाज को भी जन्म दे दिया जिसमे विकास और गति तो अवरुद्ध हुयी ही, सड़ांध, दौर्बल्य, शोषण, रूढ़ि और जड़ता ने भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। जिस सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने का प्रयास *मनु* ने किया था उसे आज जनविरोधी, शूद्र विरोधी और ब्राह्मणवादी व्यवस्था का पोषक, प्रतिक्रियावाद का समर्थक मानने का जोरदार फैशन उठ खड़ा हुआ है पर उनके काल, परिवेश, पर्यावरण तथा सामाजिक प्रकृति प्रवृत्ति पर यदि ध्यान दिया जाय तो भारतीय समाज शास्त्र के वे बाबा आदम दिखाती देते है और यह साफ जाहिर होता है कि उन्होने समाज को व्यवस्थित व नियंत्रित करने के लिये समकालीन समाज को बाहरी और सूक्ष्म मर्मभेदी दृष्टि से देखा, समझा और विनियमित करने का उपक्रम किया था। मनु स्मृति अपने आप मे तत्कालीन समाज का ***इनसाइक्लोपीडिया*** है, जिसमे सामाजिक ज्ञान का अपरिमित भण्डार है तथा जो व्यक्ति, विवाह, परिवार, सस्कार, आश्रम, वर्ण, कर्म, यज्ञ, धर्म, राज-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था का व्यापक विवेचन करती है। व्यक्ति विराट समाज का अंग है, समाज अशी है व्यक्ति अंश, समाज समष्टि है व्यक्ति-व्यष्टि, समाज प्रकृति है व्यक्त है पुरुष। अकेले रहकर व्यक्ति निजात रह नही सकता समाज उसके लिये अनिवार्य भी है और अपरिहार्य भी। *मनुस्मृति* और उसके पूर्व के सभी सामाजिक अध्ययनो, सोचो और निर्णयो पर धार्मिक बुद्धि, कर्मकाण्ड तथा याज्ञिक संस्कृति की महत्वशाली स्थिति आज के समाजशास्त्री सामाजिक अध्ययन की परिधि से खारिज कर देते है परन्तु यह स्थिति उचित नही कही जा सकती। भारतीय समाज वैज्ञानिको और अध्येताओ का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे इस व्यापक, सूक्ष्म तथा स्तरीय अध्ययन के महत्व को न केवल उदघाटित और समीक्षित ही करे वरन् इसे समाजशास्त्रीय अध्ययन की परिधि मे स्थापित करके अपनी परम्परा के गौरव को अक्षुण्ण भी बनाये परन्तु पाश्चात्य चश्मे से देखने वाले आज के समाजशास्त्री और वैज्ञानिक इन उपलब्धियो को स्वीकारने मे खुद ही हिचक दिखा रहे है तथा गतानुगतिक बने रहने मे ही अपने को समेट रहना चाहते है। अस्तु विविध धार्मिक मान्यताओ, स्वीकृतियो, मत-मतान्तरो वाले इस भारत देश मे अनेक वर्जनाये, रूढ़ियॉं विकसित हो गयी पर मात्र धार्मिक हवाओ, आध्यात्मिक कारणो, पारलौकिक सोचो के ही आधार पर और समष्टि को जो चिन्ता भारतीय ऋषियो, मुनियो के मन मे थी, जो विश्वास था उसे खारिज नही किया जा सकता।

आधुनिक भारत मे ***प्रो. बृजेन्द्र नाथ शील*** ने १९१७ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय

मे समाजशास्त्र की एक पृथक विषय के रूप मे अध्यापन की आवश्यकता महसूस की और विभाग की स्थापना की। १९१९ मे प्रो पैट्रिक गिड्डस ने बम्बई मे समाज शास्त्र का अध्यापन प्रारंभ किया। १९२० मे मैसूर विश्वविद्यालय मे इसे स्नातक कक्षा मे एक विषय के रूप मे मान्यता मिली। १९२३ मे आन्ध्र विश्वविद्यालय मे यह विषय स्वीकृत हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बम्बई, गुजरात, पूना, मद्रास, बड़ौदा, मैसूर, राजस्थान, पटना, नागपुर तथा उस्मानिया, कल्याण, गोपाल, जयलपुर, सागर, रायपुर, उज्जैन, चण्डीगढ तथा उ० प्र० के समस्त विश्वविद्यालय, बिहार के समस्त विश्वविद्यालय मे इस विषय को मान्यता प्रदान दी गयी।

समाजशास्त्र की भारतीय अवधारणा, महाकाव्यो, पुराणो, स्मृतियो, नीतिशास्त्रो, नीति, वैराग्य और शृंगार शतको से होती हुई, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, शुक्राचार्य के नीतिशास्त्र, आइने-अकबरी, तुलसी कृत रामचरित मानस, दोहावली, रहीम के दोहो, बिहारी की सतसई मे स्फुट रूप से प्रवाहमान थी, जिसे आधुनिक युग मे एक व्यवस्थित शास्त्र या विज्ञान के रूप मे देखने की परम्परा विकसित हुई। प्राचीन-धर्म ग्रन्थो और नीतिशास्त्रों का सम्यक् अध्ययन और विश्लेषण करके प्रो विनय कुमार सरकार, प्रो बृजेन्द्र नाथ शील, डॉ० भगवान दास, प्रो० केवल गोस्वामी आदि ने प्राचीन भारतीय समाजशास्त्रीय चिन्तन की एक रूपरेखा प्रस्तुत की है। इन समस्त विद्वानो ने अपने ग्रंथो का प्रणयन अंग्रेजी मे किया। आगे चल कर डॉ० ए आर. वाडिया, डॉ राधाकमल मुखर्जी श्री निर्मलकुमार बोस तथा डा डी एच. मजूमदार ने इस शास्त्र को वैज्ञानिक परिणति तथा सोच से जोड़ने का अनथक उपक्रम किया। १९२४ मे प्रो गोविन्द सदाशिव धुरिये ने बम्बई विश्वविद्यालय मे अध्यापन करते हुए इस शास्त्र को सम्यक् महत्व दिलाया जिसे डा. एम एन श्रीनिवास ने तात्विक गाम्भीर्य प्रदान किया और डा ए आर देसाई ने व्यापक विस्तार दिया। ***प्रो० के० एम० कापडिया*** ने 'हिन्दू नातेदारी' तथा भारतीय विवाह एवं परिवार के सम्बन्ध में गहरे अध्ययन की आधारशिला तैयार की, डॉ. धुरिये ने जाति प्रथा तथा वर्ग व्यवस्था के संबध में समीक्षात्मक विचारो से अपनी विशेष उपस्थिति को दर्ज कराया।

लखनऊ विश्वविद्यालय के अन्तर्गतलोक विश्रुत जे के इन्स्टीट्यूट के सस्थापक ***प्रो. राधाकमल मुखर्जी*** ने क्षेत्रीय समाजशास्त्र, मूल्यो के समाजशास्त्र, कला के समाजशास्त्र, व सस्कृति और सभ्यता के समाजशास्त्र को जानने समझने मे अपना अभूतपूर्व योगदान दिया। परिणामत. इस शास्त्र को गम्भीरता से लिया जाने लगा। इसकी उपयोगिता, इसके प्रयोजन को स्वीकारा गया। उन्होने लगभग ५०-५२ पुस्तको का प्रणयन किया। प्रो० राधा कमल मुखर्जी की इसी परम्परा को आगे ***प्रो० डी० पी० मुखर्जी*** ने अग्रगामी

किया। *डॉ० डी० एन०* के अवदानो ने इस शास्त्र को गरिमामण्डित ही नही किया वरन् शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में इसकी अपरिहार्यता को भी स्थापित कर दिया।

उत्तर प्रदेश मे काशी विद्यापीठ, वाराणसी की स्थापना ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं शिक्षा के प्रति गहरी सम्पृक्ता के भाव के परिणामस्वरूप हुआ। काशी विद्यापीठ समाजशास्त्र का एक अप्रतिम केन्द्र बनकर उभरा। आचार्य भगवानदास आचार्य बीरबल सिह, डा प्रो. राजाराम शास्त्री, प्रो शरत कुमार सिंह आदि ने इस शास्त्र को व्यापक विस्तार ही नही दिया, अपेक्षित गहराई भी दी। वर्तमान मे डा श्यामा चरण दुबे, डा एस पी नागेन्द्र, डा कैलाश नाथ शर्मा आर० एन० सक्सेना समाजशास्त्र के विश्रुत विद्वान् है।

समाज: अर्थ विवृत्ति और स्थिति

'समाज' शब्द के अर्थ मे बेहद विस्तार हुआ है और आज वह प्रयोग के स्तर पर विविध अर्थवत्ता से संयुक्त तथा बहुरूपी है। सामान्यतया किसी भी *'समूह'* को समाज कहने की पुरानी आदत या प्रचलन हमे दिखायी देती है परन्तु जब हम इसे विशेष अर्थ मे प्रयुक्त करते है, इसे शास्त्र या विज्ञान की परिधि मे रखकर जानने का उपक्रम करते है, तो इसके महत्वपूर्ण, गूढ एव विस्तीर्ण वाले अर्थ या अर्थवृत्तो का पता चलता है। सर्वश्री *'मैकाइवर तथा पेज'* ने कहा कि— 'समाज सामाजिक सम्बन्धो का लहर है, जाल है।'

इस प्रकार यह प्रमाणित है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज मे ही उत्पन्न होता है, विकास पाता है और समाज को कुछ न कुछ अवदान देता भी है। मानव अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति समाज मे ही रहकर कर सकता है पर इन आवश्यकताओ के पूरे होने मे उसे अपने समानधर्मा अन्य मानव या मानवो का सहयोग लेना पड़ता है पर जो सहयोगी है उनकी भी अपनी आवश्यकताएँ होती है, अपेक्षाएँ होती है । इस प्रकार एक-दूसरे से मिलने, मिलकर चलने, बढने और निजी तथा सामूहिक दायित्वो के निर्वाह, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, यौन-सम्बन्धी आवश्यकताओ की प्रतिपूर्ति हेतु अनेकानेक सम्बन्ध विकसित होते जाते है। सम्बन्धो के इसी जालको ही समाज कहा जाता है। सामाजिक जाल अनेक लिखित-अलिखित समझौता का स्वरूप है वह लोक, परम्परा तथा नियमो से बधा होता है। 'समाज रीतियो और कार्य प्रणालियो को, अधिकार और सहयोग को, अनेक समूहो और विभागो को, मानव-व्यवहार के नियत्रणो और स्वतंत्रता की व्यवस्था है।' समाजशास्त्री भी समाज को निरंतर परिवर्तित होने वाली व्यवस्था मानते है।

समाज मे महत्वपूर्ण तत्व होते है। रीतिरिवाज, कार्य प्रणाली अधिकार, पारस्परिक

सहयोग, सामाजिक विभाग, नियंत्रण, स्वाधीनता। समाज चाहे जो हो, जैसा हो, पुराना हो या मानवीय, संगठित हो या संगठन की प्रक्रिया में संलग्न सभी में होते हैं— रीति-रिवाज अर्थात् खाने-पीने, उठने-बैठने, बातचीत करने, पूजा-उपासना, शादी-विवाह की विशेष पद्धतियाँ। यह रीति-रिवाज समाज की पहचान कराते हैं, उनके अन्तर को भी द्योतित करते हैं तथा देशकाल एवं पर्यावरण का अन्दाज भी देते हैं। व्यवहार के नियम एवं विविध संस्थाओं से समाज की कार्य प्रणाली का पता चलता है। सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना में यह ध्यातव्य है कि क्या वे सम्बन्ध समाज के लिए हितकर, उपयोगी तथा प्रीतिकर या सुखद हैं अथवा नहीं। नियमों के अनुपालन से ही व्यवस्था में स्थायित्व आता है तथा परम्परा का सूत्रपात होता है। भिन्न-भिन्न स्थानों, कालों एवं परिस्थितियों के आधार पर व्यवहार के नियम या कार्य-प्रणालियाँ भी भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। एक देश और काल के नियम दूसरे पर लागू नहीं भी हो सकते हैं।

अधिकार अर्थात् एथॉरिटी सिस्टम समाज और व्यक्ति, समाज और सामाजिक के सम्बन्धों को स्थायित्व प्रदान करता है। कुछ सम्बन्ध अधिकार के होते हैं समाज में तथा कुछ सम्बन्ध होते हैं अनुसरण के जिससे समाज में अनियंत्रित सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकते। अधिकार की धारणा, प्रभुत्व की लालसा, छोटे-से-छोटे समूह में भी पायी जाती है। प्रारंभिक युग में या आदिम समाजों में यह अधिकार एक व्यक्ति में केन्द्रित था तो आधुनिक युग में यह समूह, वर्ग या बड़े पैमाने पर अनेक लोगों, संस्थाओं, समितियों में केन्द्रित है परन्तु आधुनिक समाज में अधिकार की अवधारणा तथा स्थिति बेहद जटिल हो गयी है। समिति सभा, पार्टी, केन्द्रीय कमेटी के होते हुए भी महत्वाकांक्षी व्यक्ति, अपने अधिकारों की परिधि को बढ़ा लेता है और निरंतर नियंत्रण से मुक्त होकर स्वाधीन आचरण की ओर प्रवृत्त होता है।

कार्य-प्रणालियों से तात्पर्य है ऐसी व्यवस्था या संस्था जो समस्याओं का समाधान कर सके, जो जन कल्याण में संलग्न हो सके। समस्याओं के समाधान के लिये कुछ प्रणाली, कुछ व्यवस्थायें की जाती हैं। अधिकार और कार्य-प्रणाली में सामंजस्य स्थापित करके ही समाज अपने को प्रमाणित भी कर सकता है तथा स्थायित्व भी प्राप्त कर सकता है। अधिकार राज्य द्वारा प्रदत्त होते हैं। वे परम्परा से प्राप्त एवं अनुमोदित होते हैं परन्तु अधिकारों को संस्थाओं और कार्यप्रणालियों द्वारा संयमित व संयोजित किया जा सकता है। अधिकार से संगठन मजबूत होता है, संगठन से संस्था विकसित होती है। संस्था समाज को नियमित एवं अग्रसर करती है।

परस्पर अवलम्बिता ही सामाजिकता कही जाती है, सहयोग सामाजिक जीवन का प्रमुख आधार है। समाज में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के लिये दूसरों के सहयोग पर आश्रित होते हैं। दूसरे लोग भी अपनी आवश्यकताएँ स्वत: पूर्ति नहीं कर सकते

एतदर्थ परस्पर विनिमय और विनियोग से समाज विकसित होता है। सहयोग कामिता एवं सहयोग भावना लोगो को निकट ले आती है, विचार-विमर्श का अवसर देती है जिससे नये क्षेत्र खुलते है, नये संदर्भ उभरते है, नयी सम्भावनाएँ पैदा होती हैं।

समाज सर्वथा निरपेक्ष अखण्ड व्यवस्था नही है। उसमे अनेक विभाग, अनेक खण्ड, अनेक समवर्ती स्थितियाँ भी सर्वदा परिचालित होती है, जैसे— समुदाय, राज्य, परिवार, आर्थिक समूह, ग्रुप, सगठन इत्यादि। आधुनिक समाजो मे, विभागो मे भी उपविभाग होते है, आत्यन्तिकनाये होती है और सीमाये भी।

अपने हितो, स्वार्थो की अधिकतम पूर्ति की आकांक्षा समाज का प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक समुदाय एवं वर्ग, प्रवर्ग या उपविभाग चाहता है और उसके लिये निरतर प्रयास भी करता रहता है। वे अपने निजी हितो के लिये दूसरो के कार्य क्षेत्रो का अतिक्रमण भी करते हैं। अत. जरूरी है कि समाज के सदस्यो के कार्य-व्यवहारो पर सम्यक् नियंत्रण रखा जाय। नियंत्रण समाज को स्वामित्व देता है तथा उसके जीवित रहने, विकसित होते रहने के लिये अनिवार्य शर्त हैं। नियंत्रण के द्वारा समाज व्यक्ति तथा समूहो के अधिकारो और कर्तव्यो का निर्धारण करता है, उनकी एक सुनिश्चित सीमा रखता है। नियंत्रण समाज को बांधता एवं व्यवस्थित करता है। यह नियंत्रण जनरीति, प्रथा, परम्परा, नियम, धर्म के आधार पर होता है और नियमों, कानूनो, संहिताओ के द्वारा भी। जटिल समाज को नियंत्रित करने के लिये कानून, पुलिस और न्यायपालिका की अपरिहार्य आवश्यकता होती है।

परन्तु केवल नियंत्रण मात्र से स्थिर समाज और उसकी व्यवस्था को न तो परिकल्पित किया जा सकता है न परिचालित किया जा सकता है। दवाव एवं नियंत्रण को स्वीकार करना, उसके बोझ को निरतर ढोते रहना समाज की प्रगतिशील प्रकृति के विपरीत एवं विरुद्ध है। नियंत्रण के साथ-साथ समाज के सदस्यो को कुछ स्वतंत्रता भी हासिल होती है जिससे वे अपने अधिकारो का सम्यक् प्रयोग न कर सके परन्तु अपने कर्तव्यो का भी प्रतिपालन जागरूक होकर करने की सामर्थ्य जुटा सके। समाज मे प्राप्त अपने अधिकारो की सार्थकता वे अपने कर्तव्यो के द्वारा प्रमाणित कर सकते हैं। सामाजिक संगठन और उसकी निरंतर प्रगति के लिये थोड़ी स्वतंत्रता, थोड़ा नियंत्रण और थोड़ी जागरूक मानसिकता की आवश्यकता अपरिहार्य रूप से समाज को है और आगे भी इसकी आवश्यकता रहेगी क्योकि समाज को निरंतर अग्रगामी रह कर मानव को व्यवस्थित रखना है, विकास करने मे सहयोग देना है, यही इसकी सार्थकता है और सीमा भी।

पारसन्स ने भी प्रकारान्तर से सम्बन्धो के जाल को ही समाज माना है पर वे अन्त.प्रक्रियाओ पर जोर देते हुए प्रतीत होते हैं, जबकि *गिडिंग्स* समाज को एक सघ मानते है। वह एक संघटन है, वह औपचारिक सम्बन्धो का योग है जिसमे सहयोग देने वाले व्यक्ति एक-दूसरे से सम्बद्ध होते है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री *र्‍यूटर* ने *समाज* को एक अमूर्त शब्द मानते हुए समूह के सदस्यो के बीच जटिल पारस्परिक सबंधो के रूप मे उसे निरूपित करने की चेष्टा की है। इस प्रकार यदि हम उपर्युक्त परिभाषाओ, सोचो तथा अवधारणाओ का सम्यक् परीक्षण करे तो हम पायेगे कि *'समाज* मानवीय सम्बन्धो की जटिल, संगठित और नियत्रित व्यवस्था है जो मानवीय सृष्टि के विकास, प्रगति तथा प्रभाव का नियमन करता है।'

मानवीय या सामाजिक सम्बन्ध और उनके निर्वाह की स्वीकृति विधि ही समाज है, जिसे व्यापक स्वीकृति भी प्राप्त हो तथा जिसमे अग्रगामी विकास की संभावना भी हो। इस प्रकार उसे मानवीय सम्बन्धो का वह विशेष संगठन माना जाना चाहिए जो मानव द्वारा निर्मित और संगठित होता है तथा मानव द्वारा ही वह सचालित और नियत्रित भी होता है। समाज पारस्परिक जागरुकता, भौतिक सम्बन्धो, सहयोगो, सघर्षो, समानताओ और विभिन्नताओ का सम्पूजन होता है। वह व्यक्ति द्वारा निर्मित परस्पर व्यक्तियो पर ही अन्योन्याश्रित भी होता है। इसी सदर्भ मे *'समुदाय'* को समझ लेना उपयुक्त होगा कि क्योकि *'समाज'* और *'समुदाय'* को बहुधा समानार्थी मान करके प्रयुक्त करने की, व्यवहृत करने की प्रवृत्ति पढ़े-लिखे लोगो मे भी देखी जा सकती है। साथ-साथ रहकर एक-दूसरे की सेवा करना, एक निश्चित भूभाग पर समान परिस्थिति और प्रयास से जीवनयापन करना, जहाँ *समुदाय* का वाचक है वही *समाज* के लिये सगठित होना, नियंत्रित होना और विकासोन्मुख होना महत्वपूर्ण है। अधिकार और कर्तव्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्धी भी दोनो मे अन्तर करता है। *मैकाइवर* और *पेज* की धारणा है कि 'जहाँ कही एक छोटे या बड़े समूह के सदस्य एक साथ, एक स्थान पर रहते हुए, किसी उद्देश्य मे भाग न लेकर सामान्य जीवन की मौलिक दशाओ मे भाग लेते है, उस समूह को हम समुदाय कहते है।'[1]

समुदाय व्यक्तियो का समूह होता है। वह एक निश्चित भू भाग पर रहता है। *हम* का बोध, समवेत का भाव समुदाय की विशेष पहचान है। समुदाय का एक विशिष्ट नाम, उसकी विशिष्ट पहचान एवं विशिष्ट प्रतीक होता है। वह स्वत अदभुत होता है तथा आत्मनिर्भर भी होता है। पर वह जाति, राज्य, समिति से इतर होता है। एक समाज मे अनेक समुदाय हो सकते है।

समिति एक निश्चित लक्ष्य एवं सोदेश्यना हेतु गठित व्यवस्था है, यह समुदाय

---

१. मैकाइवर एण्ड सी० एच० पेज, सोसाइटी, पृ० ९, (मैकमिलन एण्ड को० एल० टी० डी०, लन्दन)

अथवा समाज में बनायी जाती है। इसका सगठित एवं सोद्देश्य होना अनिवार्य है। समिति की स्थापना जानबूझ कर की जाती है, उसकी सदस्यता ऐच्छिक होती है। वह एक ऐसा मूर्त संगठन है जो नियमो, कानूनो एवं परम्पराओ से परिचालित होती है। परिवार राज्य समिति नहीं है क्यों कि परिवार की या राज्य की सदस्यता ऐच्छिक नही अनिवार्य होती है। इसी प्रकार 'संस्था' भी समाज मे निश्चित लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये गठित या निर्मित की जाती है। संस्था एक परम्परा और विगमन से बनती है जिसके लिए सामूहिक स्वीकृति का होना अनिवार्य होता है। संस्था का अपना विशेष प्रतीक होता है। संस्था मानव-व्यवहारो पर नियत्रण रखती है, वह संस्कृति की सवाहद परिवर्तनकामी, आवश्यकताओ की पूरक तथा उन्नतिकारिणी होती है।

समाज बहुसंख्यको के हितो के लिए कुछ का नियमन और नियत्रण करता है। नियंत्रण से समाज की एकता और स्थायित्व को बल मिलता है और जनस्वीकृति भी मिलती है। सामाजिक नियत्रण सचेतन भी हो सकता है और अचेतन भी। उसे औपचारिक, अनौपचारिक दोनो कहा जा सकता है। यह नियंत्रण विश्वास, धर्म, लोक नीति, जनरुचि, प्रथा और परम्परा के साथ ही कानून, नियम, शिक्षा, राज्य और जनमत द्वारा भी होता है।

व्यक्ति और समाज

व्यक्ति समाज की लघुतम इकाई है। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक ***अरस्तू*** की मान्यता कि 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है' अपने आप मे, आर्ष वाक्य की भाँति दुहरायी जाती है और व्यापक अर्थ विस्तार को समेटे हुए है। ***मनुष्य*** जन्मना जीवधारी है, जैविक प्राणी है परन्तु समाज, परिवार की सीख, लोगो का साहचर्य, अनुकरण की प्रक्रिया से वह सामाजिक प्राणी बनता है इसी प्रक्रिया को ***समाजीकरण*** प्रक्रिया के रूप मे समाजशास्त्री व्यवहृत और उद्धृत करते है। व्यक्ति और समाज के सम्बन्धो के निरूपण, निर्धारण के लिये दो प्रारभिक सिद्धान्तो की चर्चा की जाती है, जिनमे पहला सामाजिक समझौते का सिद्धान्त और दूसरा है समाज का सावयवी सिद्धान्त परन्तु ये दोनो सिद्धान्त पुराने है, अधूरे एवं अपूर्ण है। यह सिद्धान्त ***होब्स, लॉक*** और ***रूसो*** के प्राकृतिक अवस्था वाली सोच का प्रतिफल है परन्तु यह सोच वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक निष्कर्ष पर खरी नही उतरती। प्राचीन हिन्दू, ग्रीक और रोमन दार्शनिको ने समाज के विकास को ***'जैविकीय'*** के आधार पर समझने, समझाने का उपक्रम किया है। प्रसिद्ध चिन्तक ***प्लेटो*** ने भी समाज की संरचना को शरीर संरचना के समान ही मानकर अपनी *व्याख्या* प्रारंभ की है, जबकि ***अरस्तु*** ने समाज के निम्नवर्ग को शरीर और उच्च वर्ग को आत्मा से उपमित किया है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री और चिन्तक ***स्पेंसर*** ने समाज को जीव संरचना ही माना है।[1] उसके अभिप्राय का मूल तथ्य यह है कि उसने माना

१. *स्पेंसर दि प्रिंसिपिल्स आफ सोसियोलॉजी, वा० १, पार्ट-२।*

कि जीव और समाज की सरचना मे कुछ तत्व समान ही है। दोनो कुछ इकाइयो से बनते हैं, दोनो के अगो मे परस्पर निर्भरता रहती है। *अरस्तू* प्लेटो और स्पेसर का यह विचार आज मान्य नही है। उसकी प्रासगिकता अप्रभावित हो चुकी है। व्यक्ति और समाज दोनो अन्योन्याश्रित है। एक-दूसरे पर निर्भर और विकास के लिये अनिवार्य है दोनो का होना, परन्तु समाज निश्चय ही व्यक्ति से बड़ा विशिष्ट और विराट है, उसके भीतर ही व्यक्ति विकसित हो सकता है। दोनो के सबध मे सूक्ष्म, जटिल एव गूढ कहे जा सकते है। दोनो एक न दूजे पर न केवल आश्रित है वरन प्रभाव डालते है।

समाज कृत्रिम नही, स्वाभाविक सरचना है। मानव या व्यक्ति न तो समाज के बाहर रह सकता है और न तो व्यक्ति के बिना समाज की सरचना ही सभव है। व्यक्ति के मानवीय गुण समाज के सहारे, समाज के भीतर ही विकसित होते है, एतदर्थ व्यक्ति और समाज का अस्तित्व पृथक्-पृथक् होना सम्भव नही है। यहाँ यह भी समझा जाना समीचीन होगा कि मनुष्य एक चेतना सम्पन्न, भाव प्रवण प्राणी है एतदर्थ समाज उसी के द्वारा उसी के लिये निर्मित, सगठित तथा क्रियाशील होता है वह व्यक्ति की निर्मित भी है और व्यक्तित्व का निर्माता भी।

व्यक्ति को जन्म से ही अपने माता, पिता, परिवार, परिवेश से कतिपय आनुवशिक और परिवेशीय गुण उपलब्ध होते है परन्तु जन्म से ही उसमे मानवोचित, सामाजिक गुण नही होते। इन गुणो को वह समाज से, साहचर्य से उपलब्ध करता है। खान-पान, रहन-सहन, भाषा, विचार, ज्ञान तथा संस्कृति उसे सस्कार द्वारा, शिक्षा द्वारा, सीखने की प्रक्रिया मे है और उसकी यह उपलब्धि उसे समाज ही देता है।

अपने-पराये, उचित-अनुचित, नियम, प्रथा, परम्परा, रीति-रिवाज को वह समाज मे सीखता भी है और उनके सम्यक् उपयोग से ही वह अपनी सामाजिकता को प्रमाणित भी करता है। वह धीरे-धीरे अपनी सामाजिकता को विकसित करता है। इस प्रकार व्यक्ति का सामाजिक व्यक्तित्व बनता है। प्रत्येक समाज की भी अपनी कुछ विशेषताये होती हैं, कुछ रीति-रिवाज होते हैं, कुछ विशेष कार्य-प्रणालियाँ होती है, व्यक्ति इन्हे सीख कर अपनी सामाजिकता को परीक्षित एव प्रमाणित भी करता है। समाज व्यक्ति के व्यवहार और आचरण की पाठशाला भी होता है तथा उसके सामाजिक व्यक्तित्व का निदेशक एवं परीक्षक भी। व्यक्ति को विकास देने मे कतिपय सस्थाओ एव समितियो का योगदान महत्वपूर्ण होता है जैसे परिवार सस्थाएँ, परम्पाराएँ, प्रथाएँ, धर्म, भाषा, आदि परन्तु इन सबमे भी भाषा प्राथमिक एव अनिवार्य होती है। भाषा उसकी सोच का माध्यम होती है वह भाषा के द्वारा सीखता है और सीख को भाषा मे ही अभिव्यक्त भी करता है। एतदर्थ भाषा व्यक्तित्व के निर्माण के केन्द्र मे होती है। वह जानने-पहचानने की भी माध्यम है तथा जाने, पहचाने को समझने, समझाने, व्यक्त करने, दूसरा तक सम्प्रेषित

भी करती है। भाषा व्यक्ति को, मनुष्य को अन्य जैविक प्राणियो से इतर मित्रता देती है। वह भावों को, विचारों को प्राप्त कर सगठित और क्रमबद्ध करती है। भाषा आन्तरिक भी है और बाह्य भी।

इसी सदर्भ मे धर्म जो आस्था, विश्वास और ईश्वर के प्रति गहरी आतुरता से सम्बद्ध है और जो मानव के व्यक्तित्व को माँजता है नियत्रित करता है, का भी विशेष महत्व और योगदान होता है, समाज तथा उसके बनने मे, चलने और अक्षुण्ण रहने मे कार्य अलौकिक शक्ति के विश्वास से पवित्र धारणाओ और भावनाओ से सम्बद्ध होता है और व्यक्ति के जीवन को साथ ही साथ समाज को बहुविध प्रभाविन करता है। धर्म, धारण करने की स्थिति है। वह सृजन, पालन एव सहार की भावना मे प्रनिफलित होता है। वह मानव के उदात्त गुण, दया, क्षमा, प्यार, माया, ममता, करुणा, स्नेह, सहयोग, उपकार, माधुर्य का समन्जन होता है। वह ईश्वर के भय से भी पैदा होता है तथा उसके प्रति गहरी आसक्ति से भी परिचालित होता है। जो उदात्त व उत्तम गुण होते हैं वे सभी धर्म की धारणा मे समाहित हैं और वही से व्यक्ति को उपलब्ध भी होते हैं।

समाज द्वारा मान्य, प्रचलित, स्थिर रीतियाँ, लोकानुभव तथा जनरीतियाँ, संक्षेप मे प्रथा कही जाती है। प्रथा, सामाजिक स्वीकृति से, परम्परा द्वारा एक पीढ़ी से आने वाली दूसरी पीढी को हस्तांतरित होती है। प्रथा सामान्य, लौकिक, धार्मिक व्यवहारो के बने-बनाये तरीके प्रस्तुत करती है। समाज की स्वीकृति इसकी प्राथमिकता है तथा गत्यात्मक होना इसकी प्रकृति। प्रथा जब रूढ होती है, जड़ होती है तो वह अपनी अर्थवत्ता ही नही धीरे-धीरे अपनी उपयोगिता भी खो देती है। या तो वह रूढ होकर केवल गतानुगतिक हो जाती है अथवा अपेक्षित परिवर्तन करती हुई अपने मूल मे जुड़ी रहती है। प्रथाये पिछली पीढ़ी के व्यवहार का तरीका होती हैं इसमे समाज का अनुभव छिपा होता है। इसे लोक कल्याण, परिवार कल्याण से जुड़ कर ही सार्थकता मिल पाती है। प्रथा समाज की सीख भी है, व्यवहार भी। वह जीवन को, समाज को अनुरंजन देती है समरसता से भरती है तथा व्यक्तित्व के विकास मे सहायक होती है। प्रथाओ की भाँति ही परम्परा भी व्यवहार करने का समाज-स्वीकृत वह तरीका होती है जो एक पीढी द्वारा दूसरी पीढ़ी को प्रदान की जाती है। परम्परा बाधा भी हो सकती है तथा विकास की प्रेरणा भी पर परम्परा अपने मूल रूप मे पूर्व पुरुषो द्वारा शुभ कृत्यों, उचित निर्णयो, विवेक सम्मत परिणामों का समंजन होती है। परम्परा को सार्वजनिक स्वीकृति प्राप्त होना ही चाहिए। बिना सार्वजनिक सामाजिक स्वीकृति के कोई भी परम्परा शुभ नही हो सकती। अमुख, रूढ़, जादू, टोना, टोटका आदि की परम्पराएँ मे काल के प्रवाह मे पीछे छूट जाती हैं पर जो उत्तम है, उदात्त एवं अनुकरणीय होता है वह समाज का धर्म बना रह जाता है।

शिक्षण संस्थाओ, सामाजिक सस्थाओ तथा आर्थिक सस्थाओ के द्वारा भी व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग बनता है। आर्थिक सस्थाएँ मनुष्य के जीवन, उपार्जन, व्यय एवं व्यवहार के लिये अत्यावश्यक है। पूँजी और उस पर आधिपत्य उत्पादन और वितरण, मालिक, मजदूर, श्रम आदि के निराकरण नियोजन हेतु आर्थिक सस्थाएँ मानव समाज गठित करता है तथा अपने हित मे उनका सम्यक् उपभोग करता है। इसी के समानान्तर सामाजिक एवं शैक्षिक तथा सास्कृतिक सस्थाएँ का भी निर्माण समाज मे व्यक्ति करता है। सामाजिक एव सांस्कृतिक सस्थाये समाज को परिमार्जित करती है। शैक्षिक सस्थाओ से वह भाषा, ज्ञान, विज्ञान तथा तकनीक की जानकारी हासिल करता है तथा उस ज्ञान, समझ का समाज के हित मे रचनात्मक प्रयोग करता है। आर्थिक सस्थाओ और समझदारी के अभाव मे अशिक्षा, बेरोजगारी बढ़ती है तथा वह सामाजिक अवरोधो यथा वेश्यावृत्ति, ठगी प्रथा, मद्यपान आदि को जन्म देती है। सामाजिक सस्थाएँ इन समस्याओ से निबटने की राह बताती हैं। शिक्षण सस्थाओ मे भाषा, व्यवहार, मित्रता, साहचर्य, सहयोग, सदभाव आदि गुणो को सीखकर व्यक्ति अपने को समाज के उपयुक्त प्रमाणित करता है।

इन संस्थाओ के अतिरिक्त जिस कुल, वर्ग या परिवार मे व्यक्ति पैदा होता है उसका उसके निर्माण मे सर्वाधिक योग और महत्व होता है। परिवार सामाजिक जीवन की नीव है, वह है पहली सीढ़ी, प्रथम चरण, परिवार मे जन्म लेकर, पारिवारिक परिवेश मे व्यक्ति परवरिश पाता है। परिवार ही बच्चे मे शुभ आदते, ऊँचे विचार, आदर्श व्यवहार, उचित विश्वासो को पैदा करता है। वही बच्चे के विश्वास-पनपते हैं। वही उसे उत्तरदायित्व का भान होता है। वह रिश्तो, सम्बन्धो से माधुर्य-करुणा, क्षमा, सहयोग, उदारता, श्रम का महत्व, त्याग की भावना का प्रथम उन्मेष उसे अपने माता-पिता, परिवार एव परिवेश से मिलता है। समाज, व्यक्ति परिवार, समिति, सस्थाओ से व्यक्ति के हित पोषण के लिए निर्मित एक मानवीय व्यवस्था है। वह मानवीय प्रयास है तथा मानव के ही उत्कर्ष के लिये सोद्देश्य संगठित होकर मानव के हित मे ही सलग्न रहता है।

साहित्य और समाज

मानव इस सृष्टि की एक अप्रितम, अद्‌भुत सरचना है। इसके विकास की गाथा, उसकी उत्पत्ति अमीबा से प्रारंभ होकर, बीसवी सदी के अन्तिम दशक तक प्रसरित है। पृथ्वी पर मानव की यात्रा रहस्य, रोमाच से भरी हुई है। मानव का विकास सतत संघर्ष और महान् उपलब्धियो की गाथा है, वह स्वय अपने विकास का उत्तरदायी है। पृथ्वी के समस्त जीवो मे उसी के पास कतिपय अद्भुत क्षमताये थी जिसके द्वारा उसने प्रकृति का अंग, अंश होकर भी प्रकृति पर विजय की महायात्रा प्रारंभ की और उसने

जल, थल, वायु, विद्युत, करि, आकाश तथा समुद्र पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया। उसके इस विराट अभियान की सफलता का सबसे बड़ा कारण था उसकी तार्किक बुद्धि और उसकी विचार क्षमता। मनुष्य को प्रतीक निर्माण करने का श्रेय है। इस दिशा मे मनुष्य ने जिन अनेक प्रतीको का सृजन किया उसमे सबसे महत्वपूर्ण है शब्द अर्थात् भाषा। उच्चरित और लिखित रूप मे शब्द मानव की सवेदना, उसकी कल्पना उसके विचार, उसके ज्ञान को संवाहित करने का वह सशक्त माध्यम है जिसने उसे जड़ प्रकृति और सामान्य जीवो से अलग, विशिष्ट और विराट बनाया। 'शब्द' मानवीय चेतना के शीर्षक मानक होते है जो भूत को वर्तमान से, वर्तमान को भविष्य से जोड़ते है। शब्द उसकी सोच के माध्यम है तथा उसकी अभिव्यक्ति को विस्तार देते है। इन्ही के द्वारा वह नये सन्दर्भो, नये अर्थो, नये प्रतिमानो को गढता है, खोजता है उन्हे अर्थवान बनाता है और सम्प्रेषित भी करता है। भाषा, सार्थक शब्दो का ऐसा सयोजन है जो मानव द्वारा निर्मित मानव कठ से नि सृत होती है, उच्चरित और अभिव्यक्ति होती है तथा जो भावो, विचारो एवं अनुभवो को जानने-समझने के साथ ही दूसरो तक उसे सम्प्रेषित करती है।

प्रसिद्ध आधुनिक समाजशास्त्री *प्रो. श्याम प्रसाद दुबे* ने अपनी पुस्तक 'परम्परा इतिहास बोध और संस्कृति' मे लिखा है कि— 'जिस तरह मनुष्य का शरीर अपने-आप मे विशिष्ट होकर भी आनुवशिकता के द्वारा जैवकीय श्रृंखला से जुड़ा होता है, उसी तरह अनेक रूपान्तरो के बाद भी शब्द अपनी ध्वनियो और अर्थो मे एक लम्बी परम्परा का इतिहास छिपाये रहते है। वे मनुष्य की प्राणि-शास्त्रीय विशेषता से जुड़े रहते है किन्तु सामाजिक और सास्कृतिक अभिव्यक्ति के माध्यम बन कर शब्द मनुष्य के जैवकीय तत्वो को भी प्रभावित करते है। मानव की बौद्धिक चेतना, रसचेतना और सौन्दर्य-चेतना इन सबका प्राणि-शास्त्रीय आधार है।'

साहित्य समाज की कार्बन कापी, प्रतिकृति है। उसे बहुधा समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य को समाज की लौ, मशाल या प्रकाश के रूप मे भी उपमित किया जाता है। साहित्य मे मानवीय सवेदनाओ तथा अनुभूतियो की व्यंजना होती है। अनुभूति व्यक्ति की संवेदना, संवेगात्मकता की शाब्दिक प्रतिक्रिया होती है। अनुभूति को व्यापक फलक पर साहित्य मे ही अभिव्यंजना मिलती है। साहित्य समाज के अन्तरबाह्य का रूपायन है। वह समाज की वृत्तियो को अनेक विधियो और विधाओ मे प्रकाशित करता है तथा युग-चैतन्य को निरूपित करता है।

काल एव परिवेश, समय की प्रतिच्छवि और उसकी अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता ही समाज को सार्थकता देती है तथा साहित्य को लोक सम्बद्धता प्रदान करती है। व्यक्ति, परिवार, परम्परा, प्रथा, पद्धति, संस्कार, सस्था, घटना, चरित्र और इनके भीतरी द्वन्द्व,

आपसी सघर्ष हो शब्दबद्ध होकर साहित्य मे रूपायित एव प्रतिफलति होते है। यह प्रतिफलन जब सोद्देश्यता मे आबद्ध होता है तथा कथा, भाव, सूत्रता मे ग्रंथित होता है। तो उसे साहित्य कहा जाता है। साहित्य तथा साहित्यकार के लिये समाज ही वह आधारभूमि है, जहाँ जन्म लेकर, पलकर, बढ़कर, उसके अनुभवो का ताप सजो कर वह स्वय जीवन के विविध सोपानों, अनुषंगो कमोक्ता भी होता है और दर्शक भी तथा उसे वह स्मृति, कल्पना सवेदना, प्रतीक, विम्ब, अलकार के माध्यम से सज्जित कर अभिव्यक्ति दे देता है। *सामाजिक जीवन के भोगे हुए यथार्थ को अपने* कटुतिक्त अनुभवो का चित्र वह भाषा से, भाषा मे सृजित करता है और उसे पुन समाज को ही सौंप देता है।

प्रत्येक युग का साहित्यकार अपने काल के सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक तथा दार्शनिक मूल्यो के अनुसंधान मे प्रवृत होता है। 'रचनाकार युग के व्यापक मनोभावो को अपनी सर्जनात्मक क्षमता से मूल्यवत्ता प्रदान करता है तथा उसकी सीमा और दिशा भी तय करता है। व्यापक रूप से इसे सास्कृतिक मूल्य दृष्टि अथवा युग की सर्जनात्मक प्रतिमा कहा जाता है। समाज के मूल्यो, मान्यताओ को शब्दबद्ध करके उसे चारूता देना, उसे समरसता प्रदान करना, लोक-मगल की भावना से आपूरित कर देने का कार्य सर्जक की रचना प्रक्रिया के द्वारा ही सम्भव हो पाता है।'[1]

साहित्य मे मनुष्य के जीवन का प्रवाह परिलक्षित होता है। साहित्य स्वय इस प्रवाह और मनुष्य की क्रमश. विस्तारित होती हुई चेतना का परिणाम है। साहित्य मनुष्य की स्वयं चेतना एवं जीवन चेतना मे जन्म लेता है। मनुष्य पहले परिवार जैसे सीमित और लघु समूह मे विकास पाता है। धीरे-धीरे वह सभा, समिति, परिवेश तथा परम्परा से परिचित, सायुज्य होकर वृहत्तर समाज का अग बनता है। उसका अनुभव क्षेत्र, कार्यक्षेत्र विस्तारित होता है तथा वह अन्तरबाह्य की क्रियाओ प्रतिक्रियाओ का आकलन एव मूल्याकन करने को तत्पर होता है। विश्व का प्रारभिक साहित्य अनुभूतियो का निर्बाध प्रस्फुटन था। वह मौखिक, अलिखित और परिवर्तनशील था। जनभाषा और लोक-साहित्य परम्परा के अंग थे। प्रारंभिक समाजो मे दल-चेतना, कबीलाई चेतना सामूहिक रूप से समूह गानो, पूजा गीतो, अर्चनाओ के रूप मे अभिव्यक्ति पाती रही। आगे चलकर स्थायी ग्रामों के विकास ने मानव की चेतना को स्थान काल तथा परिवेश से अधिकाधिक रूप मे सम्बद्ध किया और स्थान चेतना महत्वपूर्ण रूप से मुखरित होने लगी— *प्रो० रघुवंश* ने ठीक ही लिखा है कि विश्व के प्राचीनतम गीत समूहगान है, उनका कोई रचनाकार नही है, वे लोक समाज द्वारा निर्मित होते है तथा वाचिक परम्परा मे जुड़ते, बढते और परिवर्तित होते है। वे आम आदमी के श्रम, शिकार, थकान, पीड़ा, प्रयास तथा माधुर्य के अन्तरंग क्षणो के उच्छवास के रूप मे अस्फुट स्वरो मे उभरते थे तथा समवेत

1 *प्रो० रघुवंश-आधुनिकता और सर्जनशीलता, पृ० १७१।*

झुण्डो, समूहो द्वारा दुहराये जाते हुए रुपाकार ग्रहण करते थे।''

नि.सन्देह प्रारंभिक साहित्य अपने मूलरूप मे किसी एक व्यक्ति की अनुभूति की अभिव्यक्ति रहा होगा पर समूह की स्वीकृति और दुहराव मे उसने अपने को जन सम्पत्ति या लोक की अभिव्यक्ति के रूप मे स्थापित किया होगा। मौखिक तथा वाचिक साहित्य की यह धारा शताब्दियो बाद लिखित रुप मे सामने आयी इस बीच इसमे अनेक ध्वन्यात्मक और लयात्मक परिवर्तनो के साथही रूपात्मक परिवर्तन भी सम्भवत हुए होगे, इसीलिये प्राचीनतम साहित्य की प्रामाणिकता उनके पाठ निर्धारण की समस्या बेहद जटिल समस्या के रूप मे साहित्य के अध्येताओ के समक्ष प्रश्न चिन्ह के रूप मे अद्यावधि विद्यमान है।

प्राचीन काल के रचनाकार समाज म अलग श्रेणी के व्यक्ति नही थे वे सामान्य जन थे। साहित्य-रसिको का भी कोई अलग वर्ग नही था। साहित्य लोक की, समाज की सम्पत्ति था, सभी उसमे सहभागी थे, सभी गायक और सभी उसके श्रोता थे। लोक कथाये सभी को प्रिय थी, सभी को उसमे रहस्य, रोमाच एव रस का आभास होता था। साहित्य प्रसार की दृष्टि से भी जनरुचि का विषय था। स्मरण शक्ति, शैलीगत चमत्कार, कठ माधुर्य के आधार पर प्राचीन एव आदिम समाजो मे रचनाकार और गायक तथा उसके अनुसरणकर्ताओ को सम्मान हासिल होता था। साहित्य पर धर्म का, चमत्कार का प्रभाव था अतएव धार्मिक साहित्य महत्वपूर्ण हो गया था, जिसका उद्देश्य या शिक्षा, संस्कार तथा समाज को उदात्त बनाना जबकि सामाजिक साहित्य, लौकिक था, मनोरंजन प्रधान था।

राजनीतिक सगठनो ने समाज को चिन्तन, दर्शन के स्तर पर अग्रगामी बनाया, उसकी सोच को धार दिया। कालान्तर मे समाज मे वर्ग चेतना उत्पन्न हुई। मानव समाज की प्राथमिकता भी बदली। अभिव्यक्ति की स्थायित्व वाली समस्या लेखन के आविष्कार के साथ जुड़ी हुई थी। लिपि के विकास ने मौखिक साहित्य को स्थायी बनाने का प्रयास किया तथा नये सृजन के द्वार भी उन्मुक्त कर दिये। धीरे-धीरे साहित्य सामान्य कोटि या वर्ग मे निकल कर विशेष कोटि के प्रबुद्धजनों से सम्बद्ध हो गया तथा उसकी दो प्रमुख धाराएँ भी स्वीकृत हो गयी, शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य।

साहित्य में मानवीय चेतना की प्रक्रिया और धरातल दोनों परिलक्षित होते हैं। संस्कृति द्वारा परिभाषित मानवजीवन के उद्देश्य और उनकी उपलब्धि के व्यक्तिगत एवं सामूहिक साधन साहित्य मे अभिव्यक्ति पाते है। मानव की चिरंतन समस्याएँ साहित्य का स्थायी आधार बनती है, वह मानव के गन्तव्य को रेखाकित कर रहा है, ध्येयों, मूल्यों को स्पष्ट करता है। उसमे समाज की परम्परा, जीवन-दृष्टि और दर्शन तथा समसामयिक यथार्थ और चिन्तायें अभिव्यक्ति पाती थी तथा समाज की विकृति, विसंगति

१. प्रो० रघुवंश-लोक साहित्य की अवधारणा, आलोचना, १९७८, पृ० २३।

की ओर भी सोद्देश्य संकेतात्मकता रहती थी। लेखक को व्यापक सामाजिक सन्दर्भों से जुड़ा रहना जरूरी था अन्यथा उसका साहित्य जीवन स्पन्दन से अछूता रह जाता था परिणामत साहित्य कला-कला के लिये नही, साहित्य जीवन के लिये मान्य और उपयुक्त सकता है, इसी मे उसकी सार्थकता है। साहित्य सामाजिक परम्पराओ का मूल्याकन करता है, वह जड़ की परम्परा और रूढ़ि पर आघात करता है। साहित्य सतत नये अर्थो एवं प्रयोजनो की खोज करता है। उसमे समाज की आशा-निराशा ही नही भविष्य की महत आदर्शवादिता भी प्रतिबिम्बित होती है।

साहित्य और समाज समय तथा सस्कृति से सम्बद्ध होते है, उसमे चिरंतन सत्यो को खोजने और पाने की प्रत्याशा प्रतिफलित होती है। सस्कृति के सोपानो से जुड़ कर साहित्य अपने युग की हीन नही शाश्वत की वाणी को मुखर करता है। देशकाल की सीमा से परे शाश्वत सत्यो का सधान साहित्यकार सस्कृति के विराट फलक पर ही करता है, कर सकता है— साहित्य सस्कृति के सम्बन्ध प्रयोजन हीन सम्बन्ध नही है।

इसी सन्दर्भ मे ***प्रो. श्यामाचरण दुबे*** का कथन है कि 'जन-प्रिय होना अच्छे साहित्य की एकमात्र कसौटी नही है, पर जो साहित्य अपने आप को सहज ग्राह्य नही बना सकता। वह रचनाकार की अहतुष्टि का साधन या चमत्कारिक प्रयोग मात्र होकर रह जाता है। परिवेश की आवश्यकता सृजन की पृष्ठिभूमि मे रहती है।'[१]

ई० एस० बोगार्ड्स ने जब सोचने की विधि को ***'संस्कृति'*** कहा था तो उनके समक्ष समाज और सोच का माध्यम भाषा दोनो थी। सस्कृति जीवन का ढग है, वह सीखा हुआ व्यापार है, वह आदर्श और अनिवार्य है तथा उसमे अनुकूलन का गुण होता है। आदर्श नियम, विचार, यदि सस्कृति है तो वह सभ्यता की उपयोगिता, साधन के भीतर ही प्रसरित होने वाली विशेषता है, इसे भी सहज ही स्वीकार किया जाना चाहिये।

सभ्यता उपयोगधर्मी होती है, उसे परीक्षित, मापित भी किया जा सकता है। सभ्यता साधन है तो सस्कृति साध्य। सभ्यता गत्यात्मक होती है, सस्कृति बहुधा स्थिर और परिवर्तन की हकदार भी होती है। साहित्य के द्वारा मानव अपनी सस्कृति का निर्माण, प्रचार-प्रसार कर सकता है। प्रकृति के तत्वो की सरचना से जब कलाकृतियो का निर्माण होता है, वस्त्राभूषण तैयार होते है, खान-पान के बर्तन, सजावट, शृगार के उपादान निर्मित होते है और उनका उपयोगी प्रयोग और प्रसार होता है तो वह रचना, वह कृति संस्कृति की धरोहर बनती है। खान-पान, रहन-सहन, अस्त्र-शस्त्र, विद्या-बुद्धि, कला-कौशल से सांस्कृतिक पर्यावरण बनता है। संस्कृति की उन्नति आर्थिक आधारो पर मुनहसर करती है, इससे औद्योगिक विकास की सम्भावनाये उभरती है जो सामाजिक ढाँचे और राजनीतिक पर्यावरण तथा संगठन को भी प्रभावित करती है। व्यक्ति समाज को सभ्यता

१ श्यामाचरण दुबे-परम्परा इतिहास बोध और संस्कृति, राधाकृष्ण प्रकाशन, तृतीय सं०, पृ० १९७।

के द्वारा संस्कृति के द्वारा, परिष्कृत करता है। जो प्रेम है, उत्तम है, उपयोगी है, श्रेयष्कर है, उदात्त और उच्चाशयी है वह सब कुछ संस्कृति के भीतर समाहित है राजनीतिक पर्यावरण तथा सगठन को भी प्रभावित करती है। व्यक्ति समाज को सभ्यता के द्वारा संस्कृति के द्वारा परिष्कृत करता है। जो प्रेम है, उत्तम है, उपयोगी है, श्रेयष्कर है उदात्त और उच्चाशयी है वह सब कुछ संस्कृति के भीतर समाहित है परन्तु जो महज है, सामान्य है, लोकार्यक, सार्थक तथा सचरणशील है उसे सभ्यता के व्यापक फलक में देखा, समझा जा सकता है। 'हमारे रहने तथा सोचने के तरीकों में, रोज की अन्त क्रियाओं में, कला में, धर्म में, मनोरंजन तथा आमोद प्रमोद में संस्कृति हमारी वृत्ति की अभिव्यक्ति है।'[1] संस्कृति संचरणशील, हस्तान्तरणशील, समाज के वैशिष्ट्य द्वारा अर्जित अनुकूलन की विशेष विधि है। इसीलिए एक तरह से यह कहा जा सकता है कि जो कुछ हम हैं वह हमारी संस्कृति है और जो कुछ हमारे पास है वह हमारी सभ्यता है।

जहाँ तक साहित्य, समाज और संस्कृति का सवाल है साहित्य का कथ्य और शैली लेखक और पाठक के समन्वित मानसिक धरातल और सांस्कृतिक चिन्ताओं की उपज होता है। प्रारभ में सृजन की क्षमता को दैवी वरदान माना गया था। जबकि कतिपय विचारकों ने इसे दैहिक एव जैविकीय संरचना की आकांक्षा से जोड़ कर देखने की कोशिश की है। परन्तु परिवेशवादी सृजन को भौतिक, जैविक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण द्वारा निर्धारित मानते हैं। सृजन की प्रक्रिया अभाव, असन्तोष तथा अतृप्ति की भावना से परिचालित होती है। स्थितियों की नयी व्याख्या तथा विकल्प की तलाश से भी सृजन के धर्म को जोड़ा गया है। रचना या सृजन एक तनाव से मुक्ति का प्रयास है जो परिकल्पना तथा संवेदना के सहारे सम्भव हो पाता है। रचना का उद्देश्य पारलौकिक सुख, तपका परिणाम, धन की आशा, आनन्द की प्रत्याशा, यश की इच्छा आदि को भी माना गया है परन्तु ये सारी समस्याएँ समाज में ही रहकर प्रतिफलित प्रतिपूरित हो सकती है। इस प्रकार साहित्य एक सामाजिक उत्पादन है। अपनी सामाजिक भूमिका के ही कारण वह मानवीय परम्परा का अंग बनता है। वह परम्पराओं को जाँचता है और उनकी उपयोगिता को परखता है। साहित्य सामाजिक परम्पराओं की व्याख्या करता है। सामाजिक आलोचना साहित्य का मुख्य प्रयोजन है एतदर्थ साहित्यकार तटस्थ हो ही नही सकता। वह समाज का सर्वेक्षण करता है तथा समाज की निगरानी भी करने का दायित्व उसी का है।

भारतीय समाज की स्थिति

भारत के प्राचीन समाज को जानने-समझने के लिये हम जिन मूल स्रोतों के प्रति आग्रही होते हैं वे स्रोत हैं प्राचीन धर्म गाथाएँ, पौराणिक गाथाएँ तथा लोकवार्ताएँ।

१. *मैकाइवर और पेज-सोसायटी, मैकमिलन, पृ० ६७।*

धर्मगाथाएँ लोक चिन्तन के उन सवालों को उठाती हैं जिसने मनुष्य ने सृष्टि, ब्रह्माण्ड, मनुष्य, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि के बारे में प्रारंभिक परिकल्पनाएँ कीं। भय एव श्रद्धा से इन प्राकृतिक उपादानो की पूजा, अर्चना भी की गयी तथा उन्हे जीवन्त प्रतीकों के रूप मे परिकल्पित कर अनेक लौकिक, अलौकिक घटनाओ, कारणों के रूप में भी देखा गया। आस्था के सहज प्रतिमान रूढ होकर अन्धविश्वासों मे बदले। जीव की उत्पत्ति, जीव की सत्ता, सृष्टि के विकास के सबध मे मनु-शतरूपा, आदम-हौवा की कथाएँ या गाथाएँ धर्म के आवरण मे प्रस्तुत हुयीं। दैवी शक्तियो से ही सृष्टि परिचालित है। सम्पूर्ण प्रकृति के पीछे कोई विराट शक्ति है, कोई अप्रतिम चेतना है जो सबको नियंत्रित करती है, परिवर्तित करती है गति तथा उर्जा से समन्वित करती है। समस्या उत्पन्न करने तथा उसके समाधान खोजने की दिशा तय करने मे भी प्राकृतिक दैवी शक्तियाँ सलग्न रही हैं। अलौकिकता ने रहस्य को, रोमांच को और अद्भुत आश्चर्य को सृजित किया जिसे लोक ने, जन ने, जादू, टोना, टोटका, टोटम के रूप मे भी स्वीकृत किया तथा उसे जीवन पद्धति मे अनवार्यत स्वीकार किया।

भारत की प्राचीन पौराणिक गाथाएं, पुराकथाएँ हमें भारतीय समाज की परिवार, विवाह, शिक्षा, सस्कृति, सदाचार जैसी अवधारणाओ को समझने, समझाने में सहायक होती हैं। पुराकथाओं अथवा पौराणिक गाथाओ द्वारा हम आदिम समाज मे व्यवस्थित सामाजिक इकाई के रूप मे सगठित होने वाले भारतीय समाज को देव, असुर, गन्धर्व, आग्नेय, द्रविड़, आर्य आदि वर्गों, वर्णों, जातियो, समुदायो को जानने, समझने का उपक्रम करते हैं। पौराणिक गाथाएँ सृष्टि की उत्पत्ति, संरचना, विकास, कुल देवता, ग्राम देवता, इष्ट देवता, अवतार तथा महापुरुषो का आख्यान है। इन गाथाओ में ऊहा भी है, अतिशयोक्ति भी पर इन वाह्यवरणों के भीतर झाँकने पर हमे एक निरतर विकसित होने वाले समाज की वाह्य और आन्तरिक गतिविधियो का आभास मिलता है।

लोकवार्ताएँ, लोकगीत तथा लोकगाथा से भारतीय ग्रामीण मन की पहचान की जा सकती है। समाज की ऊपरी तबका, धीरे-धीरे आभिजात्यता, व्यवस्थितता और सक्रमता को स्वीकार कर लेता है पर नीचे का वर्ग या हिस्सा जिसे लोक या जन सज्ञा दी जा सकती है परम्परा के मोहपाश से निकलना नही चाहता। वह बदलाव को सहज ही स्वीकार नही करता। वह गतानुगतिक को समेटे रहता है। लोकमन, लोकरूचि और लोक संस्कार को जानने-समझने मे हमे प्राचीन लोकगीत, उनकी टेक, उनकी धुन, उनकी सगीतमयता, उनके शब्द विशेष सहायक होते है, लोककथा या लोकवार्ता बहुधा देवी-देवता, राक्षस, राजा-रानी, पशु-पक्षी तथा चमत्कारिक पुरुषों की कहानी होती है। जिसमें, आकस्मिकता, आश्चर्य का बोध तथा अलौकिकता होती है। लोकोक्ति और मुहावरों मे व्यक्ति मन का अनुभव रस रहता है। लोकगीत समूह मन की अभिव्यक्ति होते है।

अथवा एक व्यक्ति की संरचना होकर भी समाज की पीढ़ी उसमें अनुभवों को जोड़ती चलती है। वह आशा, अभिलाषा, अनुराग, रोग, शोक चिन्ता सभी को शब्दबद्ध करती है। वह एक पीढी से दूसरी को मौखिक परम्परा द्वारा ही हस्तान्तरित होती रहती है।

प्राचीन भारतीय चिन्तन मे आधुनिक समाजशास्त्री स्पष्टता का अभाव, स्थिरता का अभाव तथा समस्याओ की समझ का अभाव बलपूर्वक खोजने का आग्रह रखते हैं। मौखिक परम्परा, वाचिक परम्परा मे निरन्तर नया जुड़ता रहा, अतएव तारतम्य, क्रम और व्यवस्था की वह अवधारणा, जिसे आधुनिक सोच की परिणति कहा जा सकता है निश्चय ही यहाँ उस रूप में नही है। व्यक्ति चिन्तन की प्रधानता, उपदेशो की प्रधानता और अनुभवजन्य एकरूपता के कारण आधुनिक समाजशास्त्री भारत के वृहत्तर समाज को एक सूत्रात्मक समाज मानने मे बिदकते हैं।

भारतीय समाज को समझने के लिये हमे भारत के सुदूर अतीत मे झाँकना होगा। और विकासयात्रा के प्राचीनतम पड़ावो को देखने-समझने का उपक्रम करना होगा। यद्यपि शोध की सीमा अति विस्तार मे जाने से बाधित करती है पर संकुचन की परिधि मे रहकर भी हमे कतिपय बिन्दुओ को रेखांकित करना ही होगा। भारत के ज्ञात इतिहास मे आर्यो से पूर्व भारत की समझ हमे सिन्धु सभ्यता और अन्य नदी घटी सभ्यताओ के अवशेषो, उत्खननो, पुरावशेषो से मिलती है परन्तु इन बाह्य संसाधनो की मदद से हम एक धुधली सी रूपरेखा ही बना पाने मे समर्थ है। आर्य-पूर्व की सामाजिकता द्रविड़ो की, किन्नरो, गन्धर्वा तथा यक्षो की सामाजिकता थी। समूह मे रहने, खाने-जीने, आखेट करने तथा स्तर-स्तर विभाजन करके उनमे सामजस्य बैठाने के संकेत हमे इतिहास, पुरातत्व तथा नृतत्वशास्त्र की गवाही पर मिलते हैं। इन वर्गो, समूहो मे समाजिक चेतना विकसित हो गयी थी और वे समूह की सश्लिष्ट चेतना को अभिव्यक्त करने लगे थे।

भारतीय सामाजिक चिन्तन का निखरा हुआ स्वरूप हमे वैदिक काल मे दिखायी देता है। यहाँ ऋषियो की दृष्टि अभेद, विराट और समवेत के प्रति विशेष आग्रही रही है। खेती-बारी, व्यापार-वाणिज्य मे उन्नति तो द्रविड़ जातियो, यक्षो, गन्धवो ने ही कर ली थी औरो के समाज ने सामाजिक चेतना के नये संदर्भ सृजित किये। वैदिककालीन आर्य जीवन के प्रति आशावादी थे। कर्म का भोग, भोग का कर्म[1] उनका ध्येय था। हम सौ वर्ष तक देखे, सौ वर्ष तक जीवित रहे।' ऋग्वैदिक समाज मे *कर्म* को बेहद महत्व प्राप्त था। यह कर्म व्यक्ति का निज के लिए, परिवार के लिये और समाज के लिये समर्पित था। *यज्ञ* ही उनका कर्म था और यज्ञ सामाजिक सहयोग से

१ *कामायनी श्रद्धासर्ग, प्रसाद।*

ही सम्पन्न होकर होकर कल्याण के लिए आयोजित विधान था। वैदिक मान्यता *बहुजन हिताय* को लेकर ही बनी और विकसित हुई। वैदिक काल के बाद के युग की इतिहासविद् *ब्राह्मणआरण्यक काल* के रूप में अभिहित करते हैं। पर इस कालखण्ड के पूर्व ही कर्म तथा आनन्द का आग्रह स्थापित हो गया था। वर्ण व्यवस्था और वर्णाश्रम धर्म से भारतीय समाज के सुसंगठित स्वरूप का पता चलता है। धर्म के माध्यम से सामाजिक सुरक्षा तथा यज्ञ की परम्परा से गृहस्थ धर्म को जोड़ कर शुभ की प्रत्याशा से समाज परिचालित था। परम्पराएँ यहाँ जड़ीभूत हो रही थी और वे एक पद्धति के रूप मे स्वीकार की गयी। ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथो मे वर्णित भारतीय समाज मे उपनिषद्' काल तक आते-आते *नैतिकता* का आग्रह प्रबल हो गया था। उपनिषदो मे सत्य तथा धर्म पर आचरण करने स्वाध्याय करने, माता-पिता तथा गुरु की श्रेष्ठता को स्वीकार करने, उनकी पूजा करने, अतिथियो की सेवा तथा सदाचरण करने पर बल दिया।[1] उपनिषदो ने सन्यास एवं वैराग्य भाव को भी प्रचारित, प्रसारित किया। यहाँ उसका समाज वैदिक आशा, वैदिक-उत्साह और जीवन की संलग्नता से ऊबकर, सांसारिक सुखो मे रसहीनता का अनुभव करने लगा था। 'अतएव पहले जहाँ लोग सासारिक सुखो के भोग के लिये डटकर परिश्रम करने मे आनन्द मानते थे, वहाँ अब गृहस्थाश्रम को छोड़कर असमय ही वैराग्य और सन्यास लेने लगे।'[2] वैदिक समाज कर्म मे विश्वास करता था और आनन्द मे रस लेता था परन्तु पुराणकालीन भारतीय समाज नरक की चिन्ता से बोझिल होकर अगले जन्म अथवा स्वर्ग की ऐषणा से परिचालित हो गया।

उपनिषद्कालीन भारतीय समाज में चिन्तन, मनन का महत्व अधिक दिखायी देता है। 'उपनिषदो ने आदमी को कुरेद कुरेद कर उसे ऐसे सवालो के हवाले कर दिया, जिनका आखिरी सवाल उसे आज तक नही मिला है।'[3] बावजूद उसके उपनिषद्कालीन भारतीय समाज मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र चारो वर्णो का अस्तित्व भी था और महत्व भी। याज्ञिक कर्मकाण्ड के साथ, सैन्य-व्यवस्था तथा प्रशासन तत्र भी था धर्म के क्षेत्र मे ब्राह्मण महत्वपूर्ण था तो शासन-व्यवस्था के क्षेत्र मे क्षत्रिय-वर्चस्व था। वैदिक कालीन कुटुम्ब-व्यवस्था उपनिषद् युग मे आत-आते सुसम्बद्ध सामाजिक संस्था के रूप मे विस्तार और व्यापकता प्राप्त कर चुकी थी।

'अहं ब्रह्मास्मि' तथा *'अयमात्मा ब्रह्म'* की आर्ष वाणी ने व्यक्ति चेतना को ऊर्ध्वमुखी बनाया। इसी भावना ने आत्मश्लाघा को जन्म दिया तथा अपनी भूमि, अपने

१. बृहदारण्यक उपनिषद ४/३/१०।

२ संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिंह दिनकर, पृ० ९७।

३ वही, पृ० ९८।

देश, अपनी पृथ्वी तक की सोच को विकसित किया और *'वसुधैव कुटुम्बकम्'* के प्रशस्त पथ का निर्माण किया। उपनिषद्कालीन व्यक्ति और समाज चेतना पर लोकमुखी चेतना भी जिसका साधन धर्म था यही आकर सत्य, धन, क्षमा, दया, धृति जैसे गुणों को गौरव मिला। नैतिकता-अनैतिकता, सत्य-असत्य के बीच विभाजक रेखा भी इसी समाज की चेतना में उभरी। यही आकर ऋषियों ने व्यक्ति, समाज तथा कुटुम्ब के पोषण तथा सुस्थिति के लिये जो मानवी-क्रिया आवश्यक है उसी को धर्म की संज्ञा दी।'

धर्म कल्पना के साथ ही ऋण कल्पना ने भारतीय समाज को नैतिक आधार से पूरित किया। चार प्रकार के ऋणों की स्थापना ने मानव समाज के चतुर्थि उत्तरदायित्व की प्रेरणा दी। देव-ऋण में सृष्टिकर्ता के उपकारों को चुकाने के लिये पूजा, प्रार्थना, यज्ञ, सत्कर्म, दान आदि करने का अभिधन किया गया ताकि ऋषि-ऋण में परम्परित ज्ञान के उपार्जन, सचयन और से अगली पीढ़ी को प्रदत्त करने का उपक्रम किया गया। मानव वंश परम्परा की अखण्ड एवं अटूट बनाये रखने के लिये पितृ-ऋण का विधान किया गया। अन्तिम ऋण था मानव या समाज ऋण जो पारस्परिक सहयोग, सद्भाव, सामूहिक हित, सुरक्षा तथा विकास की भावना से जुड़ा था। पुराणों में जिन पुरुषार्थो की परिकल्पनाएँ की गयी उन्होंने मानव समाज को नैतिक मूल्य तथा ऐहिक सुखों में परिपूरित किया। यहाँ स्वार्थ तथा परमार्थ को जोड़कर समाज को सुधर दृढ़ता देने का प्रकल्प सिरजा गया तथा समाज और व्यक्ति हितों में टकराव को कम करने का प्रयास किया।

पुराण काल में भारतीय समाज में धर्म, अध्यात्म, कर्म, पुरुषार्थ की सामाजिक चेतना ने विकास पाया, पर सामाजिक चेतना का सम्पूर्ण प्रस्फुटन आगे चल कर हुआ। चावार्क, जैन मंखलि गोसाल आदि अनास्थवादी, नास्तिक विचारधाराओं ने भारतीय समाज को अनेक नये सवालों से रू-ब-रू कर दिया।

पुराणों के पश्चात भारतीय समाज के महाकाव्य काल में हम और अधिक खुला हुआ पाते हैं। वर्ण-व्यवस्था यहाँ जाति, कुल गोत्रों में विभजित होने लगी थी। समाज को बांधने वाले नैतिक सूत्र शिथिल हो गये थे अतएव मर्यादा की स्थापना तथा समरस सामंजस्य की अवधारणा की आवश्यकता बलवती हो लगी थी। *'रामायण'* और *'महाभारत'* भरत के दो आकार महाकाव्य है, जिन्होंने सांस्कृतिक विकास और सामाजिक चेतना के बहुआयामी व विविध रूपों को अपने में समेटा और समाहित किया। न्याय अन्याय, राज-प्रजा, धर्म-अर्धम, पुरुष-नारी, ब्राह्मण-शूद्र के अन्तर सम्बन्धों को समाज के सन्दर्भ में यहाँ व्यक्ति चरित्रों के माध्यम से उठाया गया। पुरोहितों, ब्राह्मणों के वर्चस्व, उनके एकाधिकार और प्रभाव की महत्ता के स्वीकार, अस्वीकार की एकाधिक घटनाओं

१ *वैदिक संस्कृति का विकास-लक्ष्मण शास्त्री-जोशी, पृ० ९०।*

को जोड़-घटाकर पूरे समाज का चित्रण इन महाकाव्यो मे देखा जा सकता है। राजा की मर्यादा तथा बिखरे हुए कबीलो के एकत्रीकरण का विन्यास जहाँ *'रामायण'* मे उभरा वही गोप सस्कृति से जनायकत्व का प्रभुत्व *'महाभारत'* मे स्पष्ट हुआ। *'रामायण'* मे राम, रावण, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, जाम्बवान, गीध, कोल, किरात, बानर, भालू, असुर, गन्धर्व, राक्षस का बहुदेशीय, बहुआयामी फलक, सामन्ती परिवेश, शोषण तथा आतक के पर्याय बाहुबलियो के विरुद्ध लोकमानस व्रजन-जाति का समवेत नेतृत्व *'राम'* ने किया। नारी स्वातत्र्य, प्रेम, सघर्ष, हिसा, युद्ध और कूटनीति से हक और हकूक की लड़ायी *'कृष्ण'* के नेतृत्व मे उभरी। कुल मिला कर जो सामाजिक परिवेश व चेतना हमे दिखायी देती है उसमे गुरु की महिमा, राजा का वर्चस्व, पुरोहित का प्रभाव, यज्ञ की श्रेष्ठताकर्म प्रधानता, सहयोग, सगठन तथा की सघषोक्ति की सर्वोच्चता, अन्याय के प्रतिकार की भावना, धर्म की सस्थापना का लक्ष्य दोनो मे समान ही प्रतीत होता है। *'रामायण'* लोक-कल्याण और मर्यादा के आईने मे समाज मे शुभ देख रहा है परन्तु महाभारत नीतिकारो का समुच्चय है। यहाँ वेदव्यास है, विदुर है, भीष्म है तथा सबसे गतिशील, सर्वोपरि चरित्र है योगेश्वर श्रीकृष्ण के वचन श्रीमद्भगवद् गीता मे समन्वय का व्यावहारिक सन्देश देते हैं।

धर्म, कर्म, योग तथा ध्यान मे समन्वय का सन्देश लेकर *'गीता'* का सृजन हुआ है। कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति चारो मार्गो का विवेचन और विश्लेषण *'गीता'* मे किया गया है। व्यक्ति जीवन के श्रेय, प्रेय, इच्छा, कर्म, आदर्श और व्यवहार के बीच सामजस्य एवं समन्वय से ही समाज विकसित हो सकता है और जीवन्त बना रहा सकता है। सामाजिक-जीवन मे, जीवन के व्यापारो के विषय मे *'गीता'* का स्पष्ट निर्देश है कि व्यक्ति मन और इन्द्रिय निग्रह से सर्वोच्चता प्राप्त कर सकता है। काम, क्रोध और लोभ को *'गीता'* पतन की राह मानती है। दूसरे स्तर पर *'गीता'* स्थिति-प्रज्ञता को महत्वपूर्ण मानती है। समदृष्टि रखकर ही हम समाज को व्यवस्था व गति दे सकते हैं और तीसरे स्तर पर 'निष्काम कर्मयोग' को सर्वोच्च उपलब्धि के रूप मे *'गीता'* स्वीकारती है। गीता *'शक्ति'* को *'कर्म'* से सम्बद्ध मानती है। सामाजिक समरसता, सफलता, सुख और शाति के लिए गीता के उपर्युक्त तीन चरण ही आगे भी स्वीकार किये गये। आगे चलकर *'चार्वाक'* दर्शन ने मानवीय समाज को धरती से, धन से, सुख से प्यार करना सिखाया। यथार्थ तथा व्यावहारिक जीवन की सचाइयो से जोड़ा समाज को चार्वाक दर्शन ने। शुद्ध तर्क से समाज की उपयोगिता तथा व्यक्ति की सुखैषणा को चार्वाको ने रेखाकित कर मानसिक उड़ानो पर पाबन्दी पेशकर दी और सिद्ध कर दिया है 'है सच्चा मनुजत्व ग्रथिया सुलझाना जीवन की।'[1] क्षमा, दया, तप, त्याग,

---

१. कुरुक्षेत्र-रामधारी सिह दिनकर-द्वितीय सर्ग ३६।

मनोबल सभी को व्यक्तियो से जोड़कर समाज को यालिरत भर ऊँचा उठा देने की व्यावहारिक समझ दिया इस चिन्तन पद्धति ने तथा सुन्दर व्यक्तित्व और सुव्यवस्थित समाज की संरचना की ओर मोड़ दिया भारतीय चैतन्य को।

जैन विचारधारा ने वैदिक चिन्तन के समान ही व्यक्ति के मोक्ष को महत्व दिया परन्तु उसने वैदिक भोगविलास, सुख, सौन्दर्य को उपेक्षित कर दिया। त्याग और सन्यास के महत्व को सर्वोपरि मानने वाले जैन चिन्तन ने इन्द्रिय को वश मे रखकर लोक कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। वैदिक कर्मकाण्डो, यज्ञो, आहुतियो को निरर्थक घोषित कर सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य को सर्वोच्च मूल्यो-मान्यताओ के रूप मे स्थापित किया पर-अहिसा को असीम विस्तार देने का क्रम भी इन्होने ही रख दिया।

जैन विचारधारा ने मनुष्य और मानव समाज ही नही सम्पूर्ण जड़-जीवन सभी के प्रति असीम उदारता, सहिष्णुता तथा *'अहिंसात्'* का उच्चार अनुगूँजित कर दिया एवं व्यक्ति और समाज का भाग्य सीधे मानव के हाथो मे सौंप दिया। अनिश्वरवादिता के इस ज्वार ने बौद्ध दर्शन के महाकरुणा की आधार पीठिका रख दी। दुखवाद तथा निराशावाद की आधारशिला पर पल्लवित होने वाला छठी शताब्दी ईसा पूर्व का भारतीय समाज अहं के विसर्जन, अहिंसा व्रत का पालन, प्रज्ञावादिता, संयम, इन्द्रिय-निग्रह, सम्यक्वाद, सम्यक्-कर्म तथा सम्यक्-आचार की विवेकशीलता को अपनाने का पक्षधर बना। *ईश्वर के प्रति मौन धारणा कर बुद्ध ने मानव को प्रत्यक्ष, व्यावहारिक जगत्* की निर्मम, कठोर सचाइयो का ज्ञान कराकर *'निर्वाण'* प्राप्त करने की लालसा से समन्वित कर दिया।

षड्दर्शन मे पुरुषार्थ को महत्व मिला तथा नास्तिक और आस्तिक विचारधाराओ के संघात से भारत का शिष्ट मानस उद्वेलित हो उठा पर लोक मानस आस्तिकता की भावधारा मे ही डूबा रहा। न्याय वैशेषिक दर्शन के महामुनि *'गौतम'* ने सोलह पदार्थों पर विचार किया तथा ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के महत्तर तर्क और प्रयास का सहारा लिया। *सांख्य* दर्शन ने भारतीय सामाजिक चेतना को वैज्ञानिक चिन्तन दिया। यज्ञ-याग के स्थान पर अहिंसा, और तत्वज्ञान को महत्व दिया। जाति व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया तथा विकासवाद और उससे भी आगे परिणामवाद वस्तुओ की पूर्वा पर सम्बद्ध माना। समाज निरंतर सृजन, चितन, हार के क्रम मे विकसित होता है। प्रकृति और पुरुष के तत्वो की स्थिति को मानने वाले मति भिन्नता और प्रकार भिन्नता को स्वीकार किया। योगदर्शन ने साधना के महत्व को स्वीकार कर चित्तवृत्ति निरोध को सर्वोपरि महत्व प्रदान कर दिया। गुणात्मक प्रकृति के आधार पर सत्व, रज तथा तम मे विभाजन को भी स्वीकारा। पूर्व मीमांसा ने वेद मंत्रो को देवता माना, बुद्धिवाद

को प्रतिष्ठित किया और अन्धश्रद्धा के आधार पर वैदिक पुरोहिनवाद व बहुदेवत्वाद को प्रश्रय देने का उपक्रम किया, जबकि वेदान्त दर्शन अर्थात् मीमासा ने स्पष्ट ही सांसारिक कामनाओ और आसक्तियो मे वैराग्य लेने की बात कही, परन्तु कर्तव्य और कर्म के प्रति उसने वैराग्य नही, सकारात्मकना का सन्देश दिया। उसकी यह स्थापना 'कि जगत मिथ्या है, उसकी वस्तुत कोई सत्ता नही, एक परमात्मा ही सत् रूप है शेष सब भ्रान्तियाँ है'[१] विशिष्ट है।

वेदान्त दर्शन ने अपने समस्त पूर्ववर्ती दर्शनो का समन्वय करके एक सर्वसुलभ तथा सहज ग्राह्य दर्शन को स्थापित और प्रसारित किया और धर्म-चिन्तन के वैविध्य को समेट कर एक सहज सरणि का निर्माण किया। वेदान्त दर्शन ने व्यक्ति की निजता की पहचान दी तथा विविधता मे एकना के सूत्र का सकेत दिया। वेदान्त ने जिस समन्वय के आधार पर पूरे समाज की चेतना को जानने, समझने और कल्याण पथ पर अग्रसरित करने का उपक्रम किया उसी सूत्र की व्याख्या करते हुए अनेक दार्शनिक सम्प्रदाय उठ खड़े हुए, जिनमे शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत, मध्वाचार्य का द्वैत, निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत तथा बल्लभाचार्य का विशिष्टाद्वैत प्रमुख है। इन सिद्धान्तो ने भारत के आगे बौद्धिक, समामाजिक, धार्मिक चिन्तन को बेहद प्रभावित किया।

भारतीय जनमानस को सगठित और व्यवस्थित क्रम देने का प्रयास आगे चलकर पुराणो ने किया। पुराणो ने सीधी-सधी कथावार्ताओं के माध्यम से भारतीय समाज को संगठित करने का उपक्रम किया। तीर्थ, व्रत, नेम, पूजा की विविध विधियाँ पुराणो ने देशकाल के अनुसार विकसित की जो ब्राह्मणो के हाथ मे पड़कर रूढ़ होती गयी। ब्राह्मणो ने पुराण कथाओ को खाने, कमाने के लिये धीरे-धीरे जटिल कर्मकाण्डो से जोड़ दिया तथा पुरोहितवाद को मजबूती प्रदान कर दी।

आगम जिसे तत्र की सज्ञा से भी अभिहित किया जाता है की भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका भारतीय सामाजिक चेतना के विकास व विस्तार मे रही है। 'तत्र का अर्थ वह शास्त्र है, जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाता है और जो साधको का त्राण करता है।'[२] आगम या तत्र के तीन महत्वपूर्ण अग है— ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैनागम। ब्राह्मण आगमों मे उपास्यदेवता की प्रमुखता के आधार पर वैष्णवागम या भगवत तत्र जिसे पांचरात्र की कहा गया है, शैवागम तथा शाक्तागम की स्थापनी हुई। इस प्रकार विष्णु शिव तथा शक्ति की पूजा, आराधना का प्रचलन प्रारभ हुआ और नये प्रकार के सम्प्रदाय शैव, शाक्त विकसित हो गये। समाज मे संसार से मुक्ति के लिये आराध्य की भक्ति को तथा आनन्द के लिये साधना का मार्ग सुझाया गया। अद्वैत वेदान्त की पीठिका

१ भारतीय सस्कृति का इतिहास-आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ० ५५५।

२ तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन ति तत्रम।

पर भक्ति की स्थापना करके आगामो ने सम्पूर्ण समाज को अवलम्ब दिया। शक्ति सम्प्रदाय ने आगे चलकर वामाचार तथा तांत्रिक पूजा का विधान सृजित किया। त्रिपुर-सुन्दरी की परिरक्षक साधना ने सुरा-सुन्दरी की व्यवहारिकता से पूरे समाज मे एक भय, एक सत्रास फैलाया। जादू, टोना, टोटका और चमत्कारो से पूरे समाज को जकड़न देने का काम वामाचारियो ने किया। इसी स्तर पर भारतीय समाजिक चेतना को परिष्कृत करने वाले महान् नीतिकारो, स्मृतिकारो का भी उल्लेख किया जाना समीचीन होगा। धर्म, दर्शन, तत्र, आराधना के समानान्तर ही सम्पूर्ण भारतीय समाज को बांधे रखने, व्यवस्था देने का उपक्रम समाज के युगपुरुषो और अग्रचेताओ ने किया जिसमे मनु नारद पाराशर, भीष्म, विदुर, चाणक्य आदि के नाम और काम विशेष उल्लेख्य है।

मनु भारतीय संस्कृति का प्रथम पुरुष ही नही वरन् आर्य संस्कृति मे मानवीय सृष्टि का प्रथम पुरुष कहा गया है। मनु और शतरूपा की कहानी शतपथ ब्राह्मण मे वर्णित है। स्व० जयशकर प्रसाद ने इसी मनु एव श्रद्धा की कथा के आधार पर अपने रूपक महाकाव्य *'कामायनी'* का सृजन किया है। आदि मनु को वैवस्वत मनु भी कहा गया है पर निश्चय ही स्मृतिकार मनु सृष्टि का प्रथम पुरुष या वैवश्वत मनु, ब्रह्मा का *प्रथम पुत्र नही है। ब्रह्मा ने जिस विराट प्रथम* पुरुष मनु को *उत्पन्न किया था* ऐसा माना जाता है कि उसी मनु ने दस प्रजापति महर्षियो को उत्पन्न किया है।

१. मरीचि, २. अत्रि, ३. अंगिरा, ४. पुलत्स्य, ५. प्रचेता, ६. ऋतु, ७. पुलह, ८. वशिष्ठ, ९. भृगु, १०. नारद।

यह भी वर्णित है कि मनु और शतरूपा के दो पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। प्रथम पुत्र प्रियव्रत के वंश मे महात्मा ऋषभदेव उत्पन्न हुए जिन्हें प्रथम जिन, अर्हत भी कहा गया। इन्ही ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर इस महान् आर्यावर्त के जम्बूद्वीप के विशाल देश का नाम 'भारत' पड़ा। पाश्चात्य विद्वान् पी. वी. काणें का मानना है कि *'मनुस्मृति'* की रचना आदि या प्रथम मनु ने नही की होगी। उनके अनुसार *मनुस्मृति अनेक युगो, पीढियो तथा व्यक्तियो के विचारो और अनुभवो का संकलित रूप है। जिन* दस प्रजापति महर्षियो को मनु का पुत्र माना जाता है उन्हे भी मनु की परम्परा का मानस पुत्र ही स्वीकार किया जा सकता है। सम्पूर्ण भारतीय एकता, चैतन्य और सामाजिका को संगठित करने का कार्य अत्रि, अंगिरा, वशिष्ठ, भृगु और नारद आदि ने भी यिका है क्योकि प्रत्येक भारतीय धार्मिक अनुष्ठान, मे किया। स्वस्तिवाचन मे इन महर्षियो, महापुरुषो का नाम स्मरण बराबर किया जाता है। एतदर्थ ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म, कर्म और अनुष्ठान के संयोजक और संचालको का यह स्मरण उनके विशिष्ट योगदान के प्रति श्रद्धा का समर्पण ही है।

मनु का समय और मनुस्मृति का रचनाकाल दोनो के बारे मे मत वैभिन्य अद्यावधि

बरकरार है। महान् विद्वान् *मैक्समूलर* ने इसे चौथी शताब्दी के बाद की रचना माना है जबकि जार्ज बूल ने इसे ईसा से दो सौ वर्ष पहले की रचना कहा है। डा० हटर इसे और पीछे ले जाकर ई० पू० छ सौ वर्ष की रचना मानने के पक्षधर हैं। मनु ने समाज मे ब्राह्मण के वर्चस्व को सर्वोपरि स्थान दिया है नीत्शे ने इसे बाइबिल से अधिक अनुपम एवं उत्कृष्ट बौद्धिक ग्रथ माना है। मनुस्मृति मे भारतीय समाज के स्तरो *का वर्णन है। यद्यपि चारो वर्णों की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे जिस श्लोक की चर्चा बार-बार की जाती है— 'ब्राह्मण अस्य मुखम् आसीत' को प्रक्षिप्त माना गया है* पर व्यक्ति के कर्तव्य, परिवार की स्थिति, विवाह, वर्णाश्रम, आदि के बारे मे मनुस्मृति की अवधारणा भारतीय सामाजिक सरचना का प्रथम आलेख है। नारद और पाराशर की स्मृतियो मे भी हिन्दू-समाज की सरचना, उसके सस्कार, पूजा-पद्धति, रहन-सहन और मूल्यो-मान्यताओ को सूचीबद्ध किया गया है। विदुर नीति, भीष्मनीति और आगे चलकर कौटिल्य के अर्थशास्त्र से हमे भारतीय समाज की रीति-नीति, आचार-व्यवहार, राजा-प्रजा के कर्तव्य, अधिकार का पता चलता है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से प्राचीन भारतीय समाज के सगठन का स्वरूप स्पष्ट होता है। आत्मसयम, विवाह, परिवार, समाज, समिति, सघ, समवाय, आदि के द्वारा समाज का जो बाह्य स्वरूप उभरता है उसमे से इतना तो विदित होता है कि हमारी सामाजिक आर्थिक, धार्मिक और सास्कृतिक जड़े सुदूर अतीत तक प्रसरित है, जिन्होने पूरे भारतीय समाज नही तो आर्य अथवा आगे चलकर हिन्दू-समाज की परम्परित सरचना और सगठन को मजबूती तथा स्थायित्व दिया है। वेदो से लेकर वाम मार्ग तक, चार्वाक से लेकर हीनयान, महायान तथा नाथो, सिद्धो व अवधूतो तक का प्रभाव भारतीय *समाज पर पड़ा। वैदिक युग के प्रकृति देव, ऊषा, वायु, चन्द्र, नक्षत्र, नदी-पर्वत आदि* आगे चलकर देवप्रतीको, मूर्तियो, आधिभौतिक शक्तियो मे बदले तथा पूजित हुए। पुराणो की *'पुरुष'* और *'प्रकृति'* की परिकल्पना आगे सगुण-निर्गुण मे तो स्मृतियो और नीतियो ने आचार-व्यवहार तथा प्रायश्चित की विविध व्यवस्थाएँ दी।

भारत के मध्यकालीन समाज के पूर्व मे भारत ने अपना स्वर्णिम अतीत देखा था और जीवन की जटिल विरूपताओ का भी साक्षात्कार कर लिया था। व्यक्ति मे बदलाव *आया था, अनेक नये परिवर्तन भी आये परन्तु जातियाँ नही बदली समाज* के खूंटे बदले गये, पुरोहितवाद अधिक समर्थ हो गया। आदमी का सीधा-साधा-जीवन तंत्र-मंत्र की गहन गुफाओ की अंधेरी सुरंगो मे चक्कर काटने लगा। गुप्तकाल के आचार्यों शुंग, सातवाहनो, आंध्रो, कण्वो ने पुन परम भागवत धर्म की जो ध्वजा फहरायी उसने भीषण अमानवीयता का प्रदर्शन किया। शैवो, शाक्तो के आपसी वैमनस्य रक्तरंजित करने लगे समाज का जीवन। सिद्ध, शैव, शाक्त, बौद्ध, जैनो ने एक तरफ जातिपाँति तोड़ने

का नारा दिया, दूसरी ओर परम भागवत, वैष्णव धर्मो ने सामाजिक दण्ड विधान को क्रूरता की सीमा तक कड़ा कर दिया। परिणामत जातियो मे उपजातियाँ, छुआछूत, बढी— 'जातियो की श्रेणियाँ और भी बढ गयी। अस्पृश्यता और छुआछूत के विचार और भी कड़े हो गये एवं शूद्रो और स्त्रियो का अनादर पहले से भी अधिक हो गया।' इसकी प्रतिक्रिया मे समाज का उपेक्षित, प्रताड़ित तथा निचले व वर्ग *'जन्मना'* कलकित होने से बचने के लिये, उसी दल की ओर बढ़े जा रहे थे जो दल बौद्ध सन्तो के प्रभाव मे था और जिसे सिद्धो के ये उपदेश बहुत अच्छे लगते थे कि मनुष्य की श्रेष्ठता जन्म से नही कर्म मे मिलती है और वे सारे शास्त्र अनादरणीय है, जो मनुष्य को मनुष्य से हीन बताते है।[१] सिद्धनाथ सम्प्रदाय और बादल के निरगुनियाँ सत इन्ही बौद्ध प्रचारको के उत्तराधिकारी थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे— 'गोरखनाथ से पूर्व ऐसे बहुत से शैव, बौद्ध एव शाक्त सम्प्रदाय थे, जो वेद बाह्य होने के कारण न हिन्दू थे, न मुसलमान। जब मुसलमानी धर्म प्रथम बार इस देश मे परिचित हुआ तो नाना कारणो से दो प्रतिद्वन्द्वी धर्म साधनामूलक दलो मे यह देश विभक्त हो गया।[३]

भारत का सम्बन्ध एक तरफ व्यापार-वाणिज्य के स्तर पर इराक, इरान, मंगोलिया, अरब, मध्येशिया से बन गया था वही दूसरी तरफ चीन, जापान, कम्बोडिया तक धार्मिक सांस्कृतिक सम्पर्क बन चुके थे। एतदर्थ भारत बाह्य आचारो, विचारो, विदेशी संस्कृतियो से भी प्रभावित, परिचालित एवं परिवर्तित हो रहा था। इन सभी बाह्य सम्पर्को का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ रहा था। समाज मे अनेक परिवर्तन धीरे-धीरे रूपाकार ग्रहण कर रहे थे। आगे चलकर शंकराचार्य ने जिस वेदान्त दर्शन की स्थापना की थी उसी के आधार पर रामानुजाचार्य ने वैष्णव मत, निम्बार्काचार्य ने राधाकृष्ण की सेवा तथा भक्ति का, वल्लाभाचार्य ने शकर के अद्वैत के साथ शुद्ध शब्द को छोड जोड़कर *'श्री कृष्ण शरणंमम्'* का घोष किया और चैतन्य ने वृहद वैष्णव समाज को महत्व देने का प्रयास किया। कुल मिलाकार भारतीय समाज *बंदे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैक नाथम्'* की भावधारा मे स्नात हो उठा।[४] हिन्दू समाज की जाति-पाँति से उत्पन्न सामाजिक फूट से, ऊंच-नीच की जड़ होती परम्परा से शोषित और तिरष्कृत वर्ग इतना हताश और विपन्न हो गया कि उसने भाईचारे वाले इस्लाम को सहज ही स्वीकार कर लिया परन्तु उनमे जो आत्मबली थे वे निरतर समाज को भक्ति और प्रेम की धारा से खींचते रहे। ....इस्लाम के असली मकसद को समझते रहे।

१. *संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिंह दिनकर, पृ० २७६।*
२. *वही।*
३. *हिन्दी साहित्य का आदिकाल-हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २७।*
४. *रामचरित मानस-सौत-तुलसीदास, पृ० १।*

इस्लाम का मूल अर्थ है *शान्ति में प्रवेश करना।* मुसलमान, वह व्यक्ति जो ***परमात्मा और मनुष्य के साथ पूर्ण शान्ति का सम्बन्ध रखे।***[1] इस्लाम जब राजनेताओ, सम्राटो के हाथ मे आया और उसके प्रचार-प्रसार का बीड़ा उन्होंने उठा लिया तो उसमे वे विकृतियाँ आयी जिनके परिणामस्वरूप भारत मे अत्याचार, मार-काट, खूरेजी, बलात् धर्म परिवर्तन, अन्याय और अभद्रता का क्रूर ताण्डव हुआ और एक ऐसा धर्म जो भाईचारे, इमान, मुहब्बत, मुरव्वत, एखलाक का हामी था उनके प्रति भारतीय समाज *मे घृणा और घोर विद्वेष का ज्वार उठ खड़ा हुआ।* *भारत मे इस्लाम का प्रवेश पीरो,* फकीरो, व्यापारियो द्वारा हुआ था परन्तु उसका प्रचार और प्रसार किया आक्रमणकारी मुहम्मद बिन कासिम ने, महमूद गजनवी ने, मुहम्मद गोरी ने, बलवन्त एव अलाउद्दीन खिलजी ने। इन मुसलमानो की विजय शुद्ध राजनीतिक विजय थी। पर जब मुसलमानो ने भारत को ही अपना घर बना लिया तो समन्वयवादी भारतीय समाज ने उन्हे अपना पड़ोसी मान लिया। सूफी सतो और फकीरो ने भी समाज की कटुता को दूर कर प्रेम तथा भाईचारे के एखलाक को बढ़ाने मे मदद की। इस दृष्टि से शेख बुरहान, शेख *सलीम चिश्ती, मलिक मुहम्मद जायसी, मुल्ला दाऊद, अमीर खुसरो, दाराशिकोह* के योगदान को भारतीय मनीषा आज भी महत्व और आदर देती है। भारतीय समाज का निचला और तिरस्कृत वर्ग इस्लाम मे दाखिल हो गया और दूसरी तरफ भक्ति आन्दोलन ने भारतीय समाज का पुर्नसस्कार कर उसे भक्ति एव प्रेम की एकसूत्रता मे बाधने का उपक्रम किया।

निश्चय ही भक्ति आन्दोलन का उन्मेष दक्षिण मे हुआ पर दक्षिण मे इस आन्दोलन का उद्देश्य था अपने देशवासियो के भीतर सामाजिक एव धार्मिक सस्कार को दृढता देना और रूढ़ियो, वर्जनाओ के माध्यम से सुसगठित प्रेमास्पद समाज को स्थायित्व प्रदान करना पर उत्तर मे विदेशी धर्म मे नया प्रवेश प्राप्त कर भारत का ही तिरस्कृत वर्ग आततायी और अत्याचारी बन गया। एक अति से दूसरी पति की ओर जाता हुआ समाज खूँखार होता गया अतएव उत्तर-पूर्व मे दक्षिण का भक्ति आन्दोलन लोक-भाषा मे सहिष्णुता और समन्वय का सदेशवाहक बनकर प्रसरित हुआ। सामाजिक और धार्मिक धरातल पर अमीर खुसरो, कबीर, जायसी, रहीम, सूर, तुलसी, मीरा और रसखान ने जितना प्रभावित किया और सीधे सहज मार्ग पर चलने के लिये गुरु गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ मुसुकिया, कुक्कुरिपा, डोम्बिया आदि ने जो सन्देश दिये वे अप्रितम थे। सुधारवाद की ज्ञानाश्रयी आधी लेकर कबीर ने सतो को उद्बोधित किया— ***सन्तो भाई आयी ज्ञान की आंधी रे***[1] ईश्वर और एक मानव धर्म की स्थापना प्रेम के आधार पर

---

१. *रिलीजन ऑफ इस्लाम-मुहम्मद अली, पृ० २।*

१. *कबीर ग्रथावली-पद-२७, पारसनाथ तिवारी, पृ० १७८।*

करने की जबर्दस्त मुहिम कबीर ने छेड़ी *'प्रेम गली अति सांकरी तामे दो न समाय'* वे गुमराहों को सही राह सुझा रहे थे। कबीर ने सामन्त-सरदारों, पण्डित-मुल्लाओं के घेरे से बाहर आम जनता की उसी की *भाखा* मे व्यावहारिक नीति की शिक्षा दी। गोचारण की ग्राम्य संस्कृति और अपनी माटी से प्रेम करने की *सबै भूमि गोपाल की'* व्यंजना से सूर ने प्रेमपीयूष धारा से मुरझाये मानो को सींचने का उपक्रम किया। जजिया जैसे धार्मिक करो से ग्रसित समाज तथा तलवार की धार मे त्रस्त उत्तर भारत के समाज को **सूर** ने कृष्ण की शरण ग्रहण कर अपने धर्म, अपने समाज की रक्षा का कवच दिया। मीरा ने निश्छल प्रेम की पीयूष वर्षा की तथा अपने धर्म और समाज मे अटूट श्रद्धा का सकल्प जन-मन म भरपूर भर दिया। लोकनायक महात्मा तुलसीदास ने समाज के समक्ष ऊँचे आदर्शों की श्रृंखला ही खड़ी कर दी। तुलसी ने घूमघूम कर शोषक-शोषित, पीड़क-पीड़ित की भावना को देखा, समझा अतएव एक तरफ वे निराशापूर्ण शुद्ध भगवद् भक्ति के आदर्श स्थापित करते रहे तथा दूसरी तरफ उन्होंने पारिवारिक तथा सामाजिक कर्तव्यो का सौन्दर्य सृजित किया। लोक के समक्ष उन्होंने लोकधर्म और भक्ति साधना मे समन्वय करना सिखाया। सुखी तथा सन्तुष्ट सामाजिक जीवन के लिये तुलसी ने अर्थ और काम के स्थान पर धर्म और स्थिति को महत्वपूर्ण माना। पिता की प्रतिज्ञा, माँ की वत्सलता, भरत की मानव-भगति, लक्ष्मण की आज्ञाकारिता, सीता का त्याग, उर्मिला का पतिव्रत आदि अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनके द्वारा उन्होंने सुखी कुटुम्ब, समन्वित समाज का प्रतिबिम्ब दिखाया। फूट के कारणो मंथरा, विभीषण आदि के द्वारा पारिवारिक विघटनो के उदाहरण मे उन्होंने एक को स्पष्ट किया और विघटन मे बचे रहने की अप्रतिम चेतावनी दी। आम जनता को अपने अधिकारो के प्रति चेताया पर कबीर जहाँ निमर्म सत्य को बेलाग, बेलौस उजागर कर रहे थे तुलसी उसी को प्रियता तथा सौन्दर्य की चासनी मे सराबोर करके *सत्यं ब्रूयात् प्रियंब्रूयात* की शैली मे रख रहे थे।

पंजाब व राजस्थान का क्षेत्र बाह्य आक्रमणकारियो द्वारा बराबर रौंदा गया। स्वत.-स्फूर्त स्वाभिमान की अजस्र धारा यहाँ अनादि काल से प्रवाहित होती रही थी। पंजाब-राजस्थान ने पराजय की पीड़ा भी सबसे अधिक सही तथा अहंकारी सम्राटों का प्रतिरोध भी सबसे अधिक यही के रणबांकुरो ने किया। अपनी जाति, अपने धर्म, अपनी भाषा, अपनी आस्था, पूजा पद्धति समाज और संस्कार की जकड़न में बंधे रहना इनकी राजनीतिक, सामाजिक अपरिहार्यता बनती गयी। अतएव अन्याय, अत्याचार तथा आतंक का प्रतिरोध इनका स्वभाव भी बना। इन्ही जटिल परिस्थितियो मे सिख धर्म का उदय पंजाब मे हुआ। सिखधर्म ने सन्त को शस्त्र सज्जा मे संयुक्त कर, ब्राह्मणत्व को क्षत्रियत्व का

१. *कबीर ग्रन्थावली साखी— १११, पृ० ४५।*

बना पहना दिया। एक ईश्वर और एक धर्म की स्थापना करके सभी को एक ही रग मे रगने और समान कर्म मे प्रवृत्त होने की अप्रतिम दीक्षा दी गुरुनानक देव ने। एकान्त चित्त से ईश्वर की भक्ति करना, जाति-पाति के भेद को अस्वीकार करना, एक ही एक वेश धारण करना, एक पक्ति मे भोजन करना, परस्पर मेल रखना आदि आधारो पर सिख गुरुओ ने पूरे समाज को एक सूत्रता दी और धर्म को वीरत्व से जोड़ दिया, जो तलवार का जवाब तलवार देना जानता था। सिख धर्म-गुरुओ ने अपने को सद्धर्म पर न्यौछावर कर दिया। मुगलो के अमानवीय अत्याचार झेले पर उन्होने भारतीय समाज को, धर्म को डूबने से बचा लिया परन्तु इसका मूल्य उन्हे गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर और गुरुगोविन्द सिह जैसी प्रात स्मरणीय विभूतियो की आहुति से चुकाना पड़ा। भारतीय समाज, धर्म और सस्कार सिख धर्म का ऋणी है, जिसने अहिसा की कायरता के स्थान पर शूरता का प्रचार-प्रसार करके जनमास को सघर्ष की चेतना से भर दिया था।

मुगलकालीन भारत जहाँ ऊपर सुखी और शाति से भरपूर दिखायी देता है वही भीतर-भीतर वेहद आलोड़न भी हो रहे थे। सभी धार्मिक आन्दोलन अकवर के शासन काल तक अपना प्रभाव क्षेत्र विकसित कर चुके थे। समाज मे जो परिवर्तन हो रहे थे तथा आम आदमी मे जो स्थितियाँ वन रही थी उसको अकवर दरवार ने भाँपा था अतएव ऊपर-ऊपर मुगलशासन भी धार्मिक सहिष्णुता को, हिन्दू-मुस्लिम एकता को महत्व दे रहा था पर छोटे-छोटे सामन्त जागीरदार, मसवदार, जमीदार अव भी आतक तथा शोषण के पर्याय बने हुए थे। जहाँगीर, शाहजहाँ तथा औरगजेब के शासन काल मे सामत और जागीरदार ज्यादा स्वच्छन्द होते गये और शोषण को, लूट-खसोट को ही उन्होने सुख-समृद्धि समझ लिया। हिन्दू सामत अशक्त थे, चगुलो को चुनौती वाहर से भी मिल रही थी। शेख, सैयद लोदी तथा अफगानो ने बार बार विद्रोह करके मुगलो की नाक मे दम कर दिया था। दक्षिण वरावर अशान्त बना रहा, बीजापुर, गोलकुण्डा, रायगढ, सतारा मे निरतर षड्यत्र हो रहे थे। उत्तर भारत का हिन्दू सामन्त पददलित था अतएव वह राग रग के भोग-विलास मे, झुठे भार मे मदिरा और मदिराक्षी मे डूब उतरा रहा था। मुगल सामन्तो मे भी भोग-विलास की प्रवृत्ति बढी गयी। शराब, इश्क और गजलो की खुमार मे झूमता मुसमान ऊपर, ऊपर नमाजी का ढोंग कर रहा था और भीतर-भीतर शराव तथा कामुकता के ज्वार मे, भोग के रोग से जर्जर हो गया था। पाश्चात्य देशो के व्यापारी विशेषत डच, फ्रासीसी और अग्रेज भारत के समुद्री मुहानो पर जुटने लगे थे। वर्चस्व को लेकर सघर्ष इनमे प्रारभ भी हो गया पर अशक्त हो गये मुगल सम्राटो, सामन्तो की नीद टूट ही नही रही थी कि प्लासी के मैदान मे लार्ड क्लाइव की तोपे गरजने लगी। भारत एक नये युग मे प्रवेश करने लगा और उसका दुर्भाग्य वगाल मे हुगली की उत्ताल तरगो पर चढ़कर हकार करने लगा।

वर्ष १७५० तक का भारतीय समाज परम्परित रूढ़ियों में पुन आवद्ध होने लगा। परदा प्रथा, बाल-विवाह, बहुविवाह, सती प्रथा, अशिक्षा, जादू, टोना-टोटका, तंत्र-मंत्र आदि अनेक सामाजिक कुरीतियाँ पूरे भारतीय समाज को विखेर रही थी। छूआछूत, जति-पाँत, खान-पान की स्थिति ने समाज को जातियो, उपजातियो वर्गो मे तोड़कर रख दिया। क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद और वर्णाश्रम में उपजी गलित जातियता का घाव समाज में मड़न पैदा कर रहा था। मुसलमानों और हिन्दुओ मे खाई गहरी होने लगी थी। पहले से उनमे जो एका पनप रहा था उसे अंग्रेजों ने हर तरफ से, हर तरह मे तोड़ने का उपक्रम अपनी कूटनीति और राजनीति के लिये जरूरी समझा। विभेद के सूत्र उजागर होने लगे। प्रान्तवाद, भाषावाद का जहर अंग्रेजो ने बोना प्रारंभ किया। ईसाई धर्म के प्रचारको ने हिन्दू धर्म को हेय, पुराणपंथी, असभ्य और असंस्कृत सिद्ध करने का षड्यंत्र रचना प्रारंभ कर दिया तथा पूजा पद्धति, आचार-विचार की भर्त्सना करने तथा आस्थाओ को तोड़ने की साजिश की।

भारत मे अंग्रेजी संस्कृति, भाषा धर्म तथा चिन्तन के प्रभावस्वरूप एक नये मध्यवर्ग का उदय प्रारंभ हुआ। नौकरी के लिए, व्यापार के लिए, प्रशासन के लिए साथ ही अन्य टुच्ची सुविधाओं के लिये भी लोगो ने अंग्रेजी भाषा सीखना पढ़ना प्रारम्भ किया। अंग्रेजी भाषा पर भी भारतीय साहित्य, संस्कृति और चिन्तन का प्रभाव पड़ा। छापेखाने की खोज और प्रचलन ने लिखित साहित्य के प्रचार-प्रसार मे युगान्तरकारी परिवर्तन उपस्थित किया। नयी मशीनो, नये उद्योगो ने शहरीकरण, औद्योगीकरण को नया स्वरूप दिया। संचार के साधनों, डाक, तार और रेल ने पूरे भारत को जानने-समझने और जागने का अभूतपूर्व अवसर प्रदान कर दिया। भारत के आधुनिक समाज को समझने के लिए विश्वजनीन मानवीय समाज के सन्दर्भ मे उसे देखने की जरूरत है, अतएव वृहत्तर भारतीय समाज की समझ के लिये सम्पूर्ण योरोपीय सामाजिक चेतना का संक्षिप्त अवलोकन अपरिहार्य है।

वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में सामाजिक चेतना

जब हम वृहत्तर परिप्रेक्ष्य मे सामाजिक चेतना को समझने का उपक्रम कर रहे होते है तो सबसे पहले भारतीय समाज के विकास की बात उठती है। भारतीय सामाजिक चेतना के विकास की संक्षिप्त चर्चा ऊपर की जा चुकी है परन्तु वृहत्तर प्रप्रिेक्ष्य में जाने पर हमे अन्य प्राचीन संस्कृतियो मे विकसित होती हुई सामाजिक चेतना को भी देखना समझना होगा। विश्व की ज्ञात सम्कृतियो मे सिन्धु नदी घाटी संस्कृति के समानान्तर *ही यूनान की संस्कृति को विशेष महत्व प्राप्त है।* *क्योंकि चिन्तन* के स्तर पर यही संस्कृति सम्पूर्ण योरोप का प्रतिनिधित्व करती हुई एसी दिखायी देती है। एशिया माइनर का चिन्तक *'थेलिस'* यूनान का प्रथम चिन्तक माना जाता है। यूनानी चिन्तको ने

विवेक को महत्वपूर्ण माना और विवेक की कसौटी पर ही उन्होने आचार-व्यवहार, धर्म-नीति तथा समाज को कसने का उपक्रम किया। सोफिए चिन्तको मे इटली के निवासी *'जार्जीयस'* ने सत्य को ही नकार दिया जबकि *'प्रोटोगोरस'* ने नैतिक नियमो मे सापेक्षतावाद को तथा *'अल्डीमेउस'* ने स्वतत्रता को जीवन और सामाजिक मूल्य के रूप मे स्वीकृति प्रदान की। सबसे महान् प्रतिभा का चिन्तक हुआ *'सुकरात'*। सुकरात ने मानव को चिन्तनशील सामाजिक प्राणी माना तथा विवेक को चिन्तन की कसौटी स्वीकार किया। उसका मानना था कि व्यक्ति ही समाज का निर्मात्य है परन्तु समाज से अलग व्यक्ति का कोई अस्तित्व नही हो सकता। मानव को सामाजिक प्राणी मानने वाला सुकरात समाज को एक स्थायी प्रकृति के रूप मे मान्यता देता प्रतीत होता है।

'प्लेटो सुकरात का शिष्य था। उसने व्यक्ति को इच्छा मनोवेग तथा ज्ञान के आधार पर परखने का विचार दिया। प्लेटो ने सभी मानवो को समान माना तथा उसने स्वस्थ एवं सुव्यवस्थित चित वाले व्यक्ति को ही सामाजिक व्यक्ति माना उसने आस्था, विवेक और विश्वास की मान्यता को गरिमामय स्वीकृति दिलायी।

'अरस्तू' ही वह पहला दार्शनिक है जिसने यह स्थापना की *मानव एक सामाजिक प्राणी है, वह विवेकशील और मर्त्य प्राणी है।* दाँते ने अरस्तू के लिये कहा था कि वह ज्ञानियो का गुरु है— *'द मास्टर आफ दोज हू नो'*[1]। मनुष्य चूँकि सामाजिक प्राणि है इसीलिए वह स्वभावत. एकान्तवासी, विशुद्ध व्यक्तिवादी नही रह सकता। अपने साथियो, परिचितो के साथ चलते हुए वह उन्ही के सम्पर्क, सन्दर्भ मे शिवत्व के सर्वोच्च शिखर का स्पर्श कर पाता है।[2] अरस्तू महान् सम्राट सिकन्दर का आचार्य था, उसे तत्कालीन आधी दुनिया की जानकारी थी और उसने वृहत्तर मानव समाज के बड़े अंश के विकास और स्थिति को जाना, समझा था। अरस्तू के बाद के सम्पूर्ण वैश्विक चिन्तन पर उसकी स्पष्ट छाप दिखायी देती है। आगे के स्टोइक चिन्तन ने ईश्वरीय प्रकृति और समाज के प्रगाढ़ सम्बन्धो तथा ईश्वरीय विधान को *महत्वपूर्ण स्वीकृति दी।*

ईसामसीह का जन्म एक युगान्तकारी घटना के रूप मे विश्व मे प्रसिद्ध है। जीसस क्राइस्ट का मूल मंत्र था प्रेम। समाज को संगठित रखने का सूत्र था सौहार्द्र, सहानुभूति एवं बन्धुत्व। पड़ोसी को अपना समझो तथा सर्वोच्च सम्मान दो की भावना ने समाज को बाँधने, सहेजने मे अहम भूमिका निभायी। आगे चलकर चर्च की सस्कृति और प्रभाव बेहद विस्तार पाता गया तथा समस्त सामाजिक विधि-विधान, कार्य-व्यवहार चर्च के पादरियो, धर्म गुरुओ द्वारा अनुशासित होने लगे। *सन्त आगस्टीन, सन्त थामस एक्वीनास* ने चर्च के प्रभुत्व को सीमातीत विस्तार दिया। जनमत और समाज पर राजसत्ता

१ हैंडबुक इन द हिस्ट्री आफ फिलासफी-अल्बर्ट ई० अवे, पृ० १३।

२ हैंडबुक इन द हिस्ट्री आफ फिलासफी-अल्बर्ट ई० अवे, पृ० ३५।

का प्रभुत्व हो गया और राजसत्ता धर्म गुरुओं के हाथ में, पोप, पादरियों के लम्बे सफेद चोगे के भीतर कैद हो गयी। चर्च द्वारा, प्रचारित, प्रसारित आदेश ही समाज को सचालित और नियंत्रित करने लगे। निषेध, वर्जना और प्रतिशोध के नये-नये सूत्रों से पूरा समाज जकड़बदी का शिकार हो गया पूरे समाज को धार्मिक रूढ़ियों की जकड़न से मुक्ति की जरूरत शिद्दत के साथ महसूस की जाने लगी थी ऐसे ही समय में ***दाँते*** का महाकाव्य ***डिवाइन कामोडिया*** प्रकाश में आया। ***'दाँन्ते'*** ने नैतिक और सामाजिक मानदण्डों को सर्वोपरि स्वीकृति प्रदान की। दाँन्ते का समाज दर्शन यथार्थवादी था परन्तु उसमें से आशा की सुनहरी किरणें बराबर झर रही थी। ***दाँन्ते*** ही ने रिनेसां की पूर्व पीठिका तैयार की तथा एक नये युग की आगवानी के लिये बंद दरवाजों को अनावृत कर दिया। फ्रांसिस बेकन ने मानवतावाद और व्यवहारवाद का सूत्र खोजा तथा समाज को मानवीय सुखेच्छा का सर्वोत्तम साधन मानकर विकसित करने का सपना सयोजित किया। उसने विज्ञान पर दर्शन के नियत्रण को अपरिहार्य माना।

आधुनिकता के ज्वार को थामस हॉब्स के चिन्तन में देखा जा सकता है, जिसने ***विचार*** को मस्तिष्क की गतिशीलता के रूप में देखा। उसने मानव को सामाजिक और सकल्पशील प्राणी माना। उसने माना कि व्यक्ति का जन्म ही सामाजिक सरोकारों में होता है। शाति, सुख एव आनन्द के लिये मनुष्य ने समाज का निर्माण किया है। आगे चल कर टेकोर्ट ने सत्य और विवेक को समाज के लिये अपरिहार्य घोषित किया। उसने ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया परन्तु व्यक्ति को वह स्वचालित प्रकृति प्रदत्त यंत्र मानने का आग्रह भी दुहराता रहा। ***स्पनोजा*** ने मनुष्य को भयग्रस्त प्राणी माना जिसके भयका परिहार समाज में ही हो सकता है। आत्मरक्षा तथा आत्मविकास के लिये साहचर्य, सहयोग की आवश्यकता होती है, इसी सहयोग के भाव से समाज निर्मित और विकसित होता है। उसने व्यक्ति स्वातंत्र्य को परम आवश्यक स्वीकार करते हुए भी समष्टि में समावेश को अनिवार्य माना। व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं विचार स्वातंत्र्य से ही एक सुखी व सम्पन्न समाज स्वरूप ग्रहण कर सकता है। इसी क्रम में हम जर्मनी के प्रसिद्ध चिन्तक ***लिवनिज*** का भी उल्लेख करना चाहेंगे जिसने ***व्यक्ति चेतना, महत्वाकांक्षा*** *तथा स्व-चेतना की स्थिति को स्पष्ट किया और समाज को इस चेतना* के पीछे चलने वाला संगठन स्वीकार किया जिसे ***जॉन लोके*** ने थोड़ा और विस्तार दिया तथा माना कि मनुष्य निश्चय ही विराट प्रकृति और समाज के द्वारा उत्पन्न होता है फिर भी वह अपने आसपास के पर्यावरण, परिवेश के प्रति जागरूक रहकर ***नैतिक साम्राज्य*** की स्थापना के प्रति बेहद सचेष्ट रहता है। इसी अवधारणा को ***जार्ज बर्कले, आदर्श राज्य*** के रूप में सविस्तार व्याख्यायित किया। ***डेविड ह्यूम*** ने धर्म को अस्वस्थ मनुष्य का सपना कहकर खारिज कर दिया। आगे चलकर ***वाल्टेयर*** व्यक्ति के द्वारा ऐसे समाज

की निर्मिति को महत्वपूर्ण माना जिससे समस्त मानवता का उपकार हो। उसने कहा, मानव एक है, मानवता एक है, समाज एक है और ईश्वर भी एक है। भेद-विभेद स्वार्थ के कारण उत्पन्न होते है। माण्टेस्क्यू, लामेमी, हैनरी होम, फ्रासिस हर्चीसन तथा वालद होल्वाक आदि चिन्तको ने भी समाज की श्रेष्ठता को स्वीकार किया। इसी समय प्रसिद्ध दार्शनिक *रूसो* के विचारो ने अद्भुत ख्याति पायी।

जीन सेक्स ने प्रकृति की ओर लौटो का नारा दिया। उसने सार्वजनिक इच्छाशक्ति *स्वच्छन्द प्रकृतिवाद* और *सामाजिक अनुबन्ध* के नये सन्दर्भ उठाये। उसने नैतिक परम्पराओ और धार्मिक आस्था को महत्व देते हुए समाज के सगठन मे इनके योगदान को श्रेयस्कर स्वीकृति प्रदान कर दी। उसने सहज प्रकृति साधन के शासन को ही उच्चासन दिया। उसके विचार मे स्वतत्रता और व्यक्ति की हितकामना महत्वपूर्ण तत्व है। वह स्वार्थहीन और निस्पृह भाव से सर्वजन हित की भावना के लिये स्वातत्रय की वकालत करता है। *स्पेंशर* का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन जीने का समान अधिकार है अतएव उसे सघर्ष का सहज अधिकार भी स्वत ही उपलब्ध है। सघर्ष के लिए *समाज की अपरिहार्यता को भी उसने स्वीकृति दी। समाज का अग बनकर व्यक्ति अपनी* सकल्पशक्ति का प्रयोग करने के लिये स्वतत्र है।

पाश्चात्य सामाजिक चिन्तन के सदर्भ मे पूरे समाज की चेतना को झकझोर कर रख दिया औद्योगिक क्रान्तियो ने। पाश्चात्य देशो मे विज्ञान की उपलब्धियो ने उद्योगो को जन्म दिया। मशीनो के द्वारा पूरे मानव समाज के सुख, साधन खोजे गये। श्रम के स्थान पर तकनीक महत्वपूर्ण हो गयी। कृषि आधारित समाज अब उद्योग आधारित बनने लगा। उद्योगो ने पूँजी को जन्म दिया। पूँजीपतियो ने मुनाफे के लिये अन्याय, अत्याचार और शोषण का अन्तहीन चक्र चलाया जिससे पैदा हुआ शोषक, वर्ग, सामन्त, जागीरदार, जमीदार, महाजन के स्थान पर नये वर्ग बने, मालिक और मजदूर के शोषक और शोषित के, पूँजीपति और कामगार के। धर्म, नैतिकता, आचार के स्थान पर अर्थ और पूँजी समाज का नियन्ता बना। परिणामत वर्ग-सघर्ष की स्थिति बनी। प्रसिद्ध विचारक मार्क्स का *मैनीफेस्टो आफ दी कम्युनिष्ट पार्टी* का उदघोष 'दुनियाँ के मजदूरो एक हो जाओ' की आवाज से सम्पूर्ण योरोप आन्दोलित, उद्वेलित और उत्तेजित हो उठा। साम्यवाद की वैचारिक आधारशिला रखी मार्क्स ने अपने ग्रथ *कैपिटल* मे जिसमे उन्होने स्थापना दी कि 'ऐतिहासिक आवश्यकतानुसार समस्त मजदूर वर्ग को सत्ता प्राप्त करने, सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन लाने और सर्वहारा वर्ग के निरकुश शासन द्वारा समाज पर प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करना चाहिये।' आर्थिक सिद्धान्त की पीठिका पर मार्क्स ने शोषक वर्ग को नाम दिया, बुर्जआ तथा शोषित वर्ग को *सर्वहारा* मार्क्स ने *पूँजी को ही सभी सघर्षों का जन्मदाता माना।*

सर्वहारा वर्ग को सम्पूर्ण क्रान्ति दर्शन दिया मार्क्स ने और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की चर्चा से साम्यवाद के सिद्धान्त तक की वैचारिक यात्रा संपन्न की। मार्क्सवाद ने ***वर्गहीन*** समाज की प्रतिष्ठा के लिये शोषक और शोषित के बीच सघर्ष ही नही सशस्त्र खूनी क्रान्ति की अनिवार्यता को परमावश्यक करा कर दिया। इस वर्गहीन समाज की स्थापना को दो राहे खुली एक समाजवादी राह तथा दूसरी साम्यवादी राह। संसार और समाज मे ***ईश्वर*** को खारिज कर दिया। मार्क्सवाद ने और मानव को स्वयं अपने भाग्य का निर्धारक एवं नियता घोषित किया, परन्तु आगे चलकर अर्थ और विज्ञान दोनों को मानवीय स्पर्द्धा का साधन बना दिया। मार्क्सवाद ने। तानाशाहो के विरुद्ध विद्रोही मार्क्सवादी सोच ने तानाशाहो को जन्म दिया। मानव, मानव एक समान है, उसे ईश्वर, धर्म और झूठी नैतिकता के नाम पर बरगलाने की व्यवस्था का पुरजोर विरोध किया मार्क्सवाद ने, परन्तु जिस मानवीय समाज और वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था के उन्होंने रंगीन लाल सपने सिरजे वे व्यक्ति वैशिष्ट्य, क्षेत्र वैशिष्ट्य के चलते एक शताब्दी के भीतर ही टूट कर बिखर गये।

प्रसिद्ध चिन्तक ***नीत्शे*** ने ***समानता*** के नारे और सिद्धान्त का पुरजोर विरोध किया व सत्ता विषयक इच्छाशक्ति के नाम पर प्रज्ञा को, प्रातिभ ज्ञान को विशिष्ट घोषित किया। वह अतिमानव के आदर्श राज्य की परिकल्पना के प्रति घोर आग्रही था। वह नवीन, स्वस्थ एवं आदर्श परम्पराओं की स्थापना करने की प्रबल इच्छा से परिचालित था। परन्तु बीसवी सदी का सबसे प्रभावशाली दर्शन रहा-***आदर्शवाद।***

अदभुत प्रतिमा का धनी ***हेनरी बर्ग साँ*** विकासवादी सिद्धान्त का पोषक था, हर्बट स्पेंसर तथा चार्ल्स डार्विन के मूल विकासवादी सिद्धान्त सूत्र से सहमत होते हुए भी उनके आवेग विकासवाद के स्थान पर सर्जनात्मक विकासवाद का दर्शन स्थापित किया। उसने भौतिक तथा संवेदना के महत्व को समझा और उसे सर्जनात्मक प्रेरणा के रूप मे स्वीकृति दिलायी। वह बिम्बो के पुनर्सर्जन तथा प्रतिक्रियाओ के चयन पर बल देता है तथा मानता है कि व्यक्ति ही सर्जना करने मे समर्थ है और व्यक्ति सर्जना करता है समाज के लिये, सुख के लिये, स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिये। इस खोज को अत्याधुनिक विस्तार प्राप्त हुआ आगे चलकर ***ट्रेड सेल*** के चिन्तन मे, जिसने विवेक को सर्वोपरि मान और मूल्य माना तथा व्यक्ति स्वातंत्र्य को अपरिहार्य स्वीकार किया। उसने विकास का *अर्थ* माना सर्जन को, ***जान ड्यूई*** ने मानव की बुद्धि को ही विकास का सूत्र माना। उसके अनुसार मस्तिष्क चेतन अग के रूप मे विकसित हुआ और उसने अपने आपको पर्यावरण के अनुकूल बनाने की निरंतर कोशिश को जारी रखा। उसके अनुसार सृष्टि की सृजन प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है और व्यक्ति अपनी शक्ति तथा सामर्थ्य के अनुसार उसमे अपना अनुदान देता रहता है। समाज एक-दूसरे के सहयोग

से प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है। व्यक्ति की स्वतंत्रता का पक्षधर है जान ड्यूई परन्तु वह स्वतंत्रता को निर्बन्ध नहीं मानता, उसके मत से व्यक्ति की स्वतंत्रता समाज सापेक्ष तथा लोक हितकारी अनुबन्धों से बंधी होनी चाहिए। उसने व्यक्ति, समाज तथा ईश्वर को परस्पर सहयोगी और पूरक के रूप में व्याख्यायित किया।

जार्ज सांतायन ने समीक्षात्मक यथार्थवाद के आधार पर व्यक्ति और समाज को जाँचने, परखने का विचार प्रस्तुत किया। उसने सम्पूर्ण सृष्टि की प्रत्येक वस्तु, तथ्य एवं क्रियाओं को सन्देह की दृष्टि से देखकर माना कि *पदार्थ* ही *अथवा वस्तु* ही इस गतिमान जगत् का मूल और अन्तिम तत्व है। उसने व्यक्ति को इकाई को नहीं वरन् एक परिवार को विकास का मूल सूत्र समझा एवं व्यक्ति का समाज में तथा समाज को राष्ट्र में समाहित व विलीन होते देखने की उत्कट आकांक्षा का पक्ष रखा। युद्ध तथा संघर्ष की अपेक्षा शांति तथा सहयोग के महत्व को उसने ने केवल रेखांकित किया, वरन् उसने काल्पनिक आदर्शवाद की थोथी अव्यवहारिकता को भी खारिज कर दिया।

विलियम *'वुण्ट'* को आधुनिक मनोविज्ञान तथा लोकचित्त का प्रथम अन्वेषी व संस्थापक कहा जाता है। *'वुण्ड'* ने चेतना को ज्ञान का आधार मानते हुए सिद्ध किया कि अनुभव का सम्बन्ध मानव के मस्तिष्क से है। मानव का मनोविज्ञान ही सूचित करता है कि जीवन मूलत इच्छा-शक्ति है। व्यक्ति की इच्छा-शक्ति विश्व की सार्वभौम इच्छा शक्ति से सम्बद्ध और उसका अंश होती है। वह प्राणियों के समग्र यत्न को महत्व देता है और उसे ही यथार्थ भी मानता है। *वुण्ड* की परम्परा को अग्रसर किया ***विलियम जेम्स*** ने जिसने मनोविज्ञान के मूल एवं प्रारम्भिक सिद्धान्तों का प्रणयन किया, मानवीय अनुभव के दर्शन की स्थापना की तथा उपयोगितावाद की सर्वोपरि मानक कहा। अनुभव को यथार्थ मानकर *अहं* की विशिष्ट भूमिका का प्रत्याखान भी पहले पहल उसने ही किया। उसने *मनोवेग सिद्धान्त* की खोज की और कहा कि मनोवेग भौतिक परिवर्तनों में प्रत्यक्ष ज्ञान का परिणाम है। *उसने चेतना धारा या चेतना प्रवाह* के *सिद्धान्त की खोज की तथा माना कि मानव मस्तिष्क में चेतना का अजस्र प्रवाह है।* उसने वास्तविक एवं *समान स्थितियों का विभाजन व विश्लेषण किया।* उसके अनुसार चेतना अजस्र न प्रवाही उच्छलन नहीं है, उसे विभाजित तथा खण्डित करके देखा जाना सम्यक् नहीं हो सकता।

मानसिक रोग चिकित्सा विज्ञान का जन्मदाता तथा अद्भुत प्रतिभा के धनी सिग्मण्ड फ्रायड ने आधुनिक वैश्विक सामाजिक चेतना को सर्वाधिक प्रभावित किया। उसने मानव व्यवहार और व्यक्तित्व के आधार पर चार मूलभूत धारणाएं प्रस्तुत कीं

१. अवचेतन, २. अर्न्तद्वन्द्व और दमन, ३. शिशुकालीन प्रभाविता, ४. यौन या काम का महत्व।

अवचेतन मन का विश्लेषण करते हुए फ्रायड ने उसे तीन भागों में विभाजित किया—

१. चेतन, २. उपचेतन या अर्धचेतन, ३ अवचेतन। उसके अनुसार चेतन मन का क्षेत्र तात्कालिक विचार और भावनाओं तक ही सीमित है। चेतन में जो अनुपस्थित बातें रहती हैं वे स्थायी रूप में उपचेतन में रहती हैं जिन्हें चेतन मन में लौटाया जा सकता है।

व्यक्तित्व की इकाई की व्याख्या करते हुए फ्रायड ने माना कि प्रत्येक व्यक्ति में ऊर्जा स्रोत मूलभूत प्रेरणा शक्ति होती है जिसे 'कामोत्तेजना या लिबिडो' कहा जा सकता है। मूल प्रवृत्ति या संवेग को उसने 'इड'(Id), अहं (ईगो) और परम हं या सुपर ईगो कहा जिसमें *'इड'* को उसने आदि और पशु प्रवृत्ति कहा तथा अहं को व्यक्ति का विवेकयुक्त *'स्व'* स्वीकार किया, जबकि परम अहम् या सुपरईगो नैतिक विचारों का समुच्चय या संग्रह माना। उसने मन के आधार पर मानव प्रवृत्तियों का विश्लेषण और विभाजन किया। उसने मानव समाज में व्यक्ति की स्थिति, उसकी सफलता, उसके व्यवहार की सामर्थ्य को स्वीकार किया।

फ्रायड के दो प्रमुख अनुयायियों ने आगे चलकर फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त के आधार पर ही अलग-अलग निष्कर्षों के स्वरूप भिन्न विचारों के संस्थापक हुए जिसमें पहला था अल्फ्रेड एडलर और दूसरा था सी. जी. जुंग। एडलर का सिद्धान्त ***वैयक्तिक मनोविज्ञान*** तथा जुंग का ***विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान*** कहा गया। एडलर ने व्यक्ति के निजी ***स्व*** की प्रतिष्ठा और दूसरों के ***स्व*** पर अपनी सत्ता जमाने की कामना पर अपने सिद्धान्त की स्थापना की, जबकि जुंग ने काम चेतना के अनेक प्रकारों, रूपों में विकसित होने वाली विविध शक्तियों को आधार रूप में स्वीकार किया। उसने व्यक्तित्व की श्रेणी का विभाजन किया और विश्लेषणात्मक पद्धति का विकास किया। व्यक्ति और व्यक्ति मन के इन महत्वपूर्ण अध्येताओं ने समाज की समझ को विकसित किया। कार्य-व्यापारों के विभाजन के आधार पर व्यक्ति की कोटियाँ निर्धारित हो सकती हैं। इस विचार को भी सामाजिक चेतना से जोड़ा जुंग ने। व्यक्तियों के श्रेणी विभाजन तथा विश्लेषणात्मक पद्धति का महत्वपूर्ण योगदान दिया उसने और सामाजिक चेतना के नये तथा अनछुए सन्दर्भों को उजागर करने का उपक्रम भी उसने किया।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही इटली में आदर्शवाद के पुनरुत्थान की प्रवृत्ति परिलक्षित हुई। विचारक एवं समीक्षक ***बेनेदातो क्रोचे*** ने सामान्य धारणाओं के व्यवहृत रूप को सत्य, शिव, सुन्दर के सामंजस्य तक पहुंचाया। क्रोचे ने अनुभूति को ही एकमात्र वस्तु सत्ता स्वीकार किया। उसके अनुसार कर्ता और कर्म अथवा विषय और वस्तु के बीच भेद केवल अनुभव के स्तर पर ही पाया जाता है। उसने ज्ञान

को स्वत स्फूर्त, अन्त प्रेरणा अथवा तर्कजन्य माना। चेतना की दो वृत्तियो की चर्चा भी उसने उठायी और उसे सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक कोटियो मे विभक्त किया। उसने सामाजिक चेतना को अनुभूति और अभिव्यक्ति के धरातल पर समझने, व्याख्यायित व विवेचित करने की महत्वपूर्ण पहल की और अपने सिद्धान्त को *'अभिव्यजनावाद'* कहा।

सम्पूर्ण विश्व आगे चलकर विश्व युद्धो की भीषण विभीषिका से सन्तप्त हो उठा और अकस्मात ही मानव समाज नही मानवीय अस्तित्व के सकट की चिन्ता उभर गयी। औद्योगीकरण, वैज्ञानिक चमत्कार की इस भयावह परिणित ने चिन्तन को गम्भीर चुनौती दी। ***कीर्केगाद*** और ***नीत्से*** जैसे विचारको के लिये मानव अस्तित्व की चिन्ता अस्तित्ववादी दर्शन के रूप मे उभरी। ***'कीर्केगार्द'*** ने जीवन-विकास के तीन स्तरो की चर्चा को प्रमुखता से उठाया-सौन्दर्य प्रधान, नीति प्रधान और धर्म प्रधान। उसके अनुसार सौन्दर्य का ही व्यक्ति सुन्दरता एवं आनन्द की खोज करता है, परन्तु अन्तत वह ऊब जाता है। एतदर्थ व्यक्ति को जीवन एवं समाज को सचालित करने के लिए नैतिक नियमो की खोज करनी पड़ती है तथा पुराने पड़ गए नैतिक मानदण्डो को सामाजिक स्वरूप मे ढालना पड़ता है। वह सच्ची आस्था के प्रति समर्पित व्यक्ति और समाज की बात पर बल देता दिखायी देता है। इसी क्रम मे ***बबूर गिल्सन*** और ***बार्थ*** के योगदान को भी समझा जाना चाहिए जिन्होने जीवन और समाज के सन्दर्भ, तारतम्यो को विस्तार से *विवेचित किया। ज्याँ पाल सार्त्र चिन्तक एव रचनाकार दोनो है।* उनमे दार्शनिक सिद्धान्तकार तथा व्यावहारिक कृतिकार दोनो के गुणो का समाहार है। चेतना को एक व्यापार तथा भय और आतक को उसके भीतर मूल रूप से अवस्थित मानने वाले ***सार्त्र*** ने अस्तित्व की चिन्तन व्यक्तिवादिता के आधार पर की। उसने एक तरफ व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्व दिया तथा दूसरी तरफ आत्मवाद की प्रमुखता को रेखाकित किया। जीने और भोगने के क्रम मे जो स्वरूप उभरता है वही व्यक्ति है तथा भोग के विविध आयाम पक्ष उसे सामाजिक बनाते है, परन्तु समाज मे रहकर भी वह उससे आगे निकलने नया बनाने का उपक्रम करता है।

आधुनिक सामाजिक चेतना को ***सार्त्र पाल सार्त्र*** और ***आईस्टीन*** ने सर्वाधिक प्रभावित किया। जहाँ सार्त्र ने मानव को अपना निर्माता, नियन्ता, नियामक एव ईश्वर मान लिया वही उसकी स्वतत्रता को सार्वभौम स्वतंत्रता के व्यापक फलक से जोड़ भी दिया। उन्होने माना कि मानव अकेला है, अकेले ही उसे चलना है, अपनी राह खोजनी है, उसी के अस्तित्व से समाज और सृष्टि का अस्तित्व है। आईस्टीन का सापेक्षवाद ***प्रोटोगोरस काण्ट*** आदि चिन्तको की ही *सरणि पर विकसित उद्भावना है जिसे आईस्टीन ने विशिष्ट* सापेक्षतावाद और सामान्य सापेक्षतावाद के रूप मे व्याख्यायित किया है। उन्होने सत्य

को व्यक्तिनिष्ठ समय और स्थान सापेक्ष सिद्ध किया जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप पाश्चात्य चिन्तन में अतियथार्थवादी सोच उत्पन्न हुई जिसने परम्परागत सोच, रूढ़ि और जड़ व्यवस्था को नकार दिया। स्वतंत्रता और प्रेम के आधार पर नवयथार्थवाद प्रसारित हुआ।

इस सम्पूर्ण विवेचन और विश्लेषण में कई महत्वपूर्ण संकेत उभरते हैं, एक तो यह कि सम्पूर्ण पाश्चात्य सामाजिक-चेतना में *विवेक* की अपरिहार्य स्थिति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। बौद्धिकता और तर्क-वितर्क से सम्पूर्ण पाश्चात्य सामाजिक-चिन्तन सरोबार है। *स्व* को जानने, समझने की सुकराती सोच ने समाज के भीतर ही निजता की खोज की। वे कभी भी सामाजिक परिवृत्त से बाहर नहीं निकले परन्तु ईसामसीह ने अपने ही नहीं अपने पड़ोसी को भी जानने, पहचानने की दलील देकर द्वितीय चरण पर मनीषा के नये द्वार खोले। सामाजिक-चेतना लम्बे समय तक धर्माश्रित बनी रही। धर्म, चर्च, पोप और पादरी ही समाज के नियामक और नियन्ता की भूमिका का निर्वहन करते रहे। नवजागरण काल में व्यक्ति ने समाज में अपने रिश्तों-नातों की पुनर्समीक्षा की फ्रांस की राज्य क्रान्ति और मार्टिन लूथर के धार्मिक विद्रोह ने *स्वर्ग के राज्य* की अवधारणा को धरती-धन से जोड़ दिया। अब्राहमलिंकन ने 'जनता के जनता द्वारा, जनता के लिये चुनी गयी सरकार, प्रजातंत्र, स्वतंत्रता और समानधिकार का सूत्र देकर सामाजिक चेतना का विस्तार कर दिया तथा व्यक्ति को ही समाज का नियन्ता घोषित कर दिया। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने *पूंजी* का विन्यास किया परिणामतः शोषक और शोषित के द्वन्द्व को कार्ल मार्क्स ने सिद्धान्त के स्तर पर व्याख्यायित करके मेहनतकश मजदूर, कामगार की लड़ाई को सम्पूर्ण मानव समाज से जोड़ दिया। वर्गवादी चिन्तन तथा मनोविज्ञान की शक्ति ने सम्पूर्ण समाज की सोच को महत्वपूर्ण मोड़ देने का कार्य सम्पन्न किया।

न्यूटन के विज्ञानवाद तथा *डार्विन* के विकासवाद ने समाज को जानने, समझने के नये उपकरण दिये। यह तथ्य आगे सर्वमान्य हो गया कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये मानव को संघर्ष से टकराना ही होगा तथा जीवन संग्राम में योग्यजन ही जीवित रह सकेगा। विज्ञान, विकास और भौतिकी ने सृष्टि के समस्त रहस्यों पर से परदा उठा दिया। *मात्र प्राणतत्त्व के अलावा सारे सन्दर्भों को उजागर करने का उपक्रम किया गया।* समाज की चिन्ता की अपेक्षा *स्व* की चिन्ता, मैं, मेरे, ममत्व का विस्फोट आधुनिक विज्ञानवाद, अर्थवाद की भीषण परन्तु सन्तापकारी परिणति है। सामाजिक सोच और उसकी चिन्ता के बजाय व्यक्ति-सुख, व्यक्ति-कामनाओं की पूर्ति का ध्येय सर्वोपरि हो गया। समता और स्वतन्त्रता को जीवन मूल्य मानने वाले आधुनिक चिन्तकों ने यह सोचा ही नहीं कि स्वतंत्रता के स्थान पर स्वेच्छाचारिता और समता के स्थान पर सम्पन्नता स्थापित हो जायेगी और नैतिकता के कगारों को तोड़कर छिन्न-भिन्न कर देगी। उद्दाम

भोग, लालसा तथा निर्बन्ध बौद्धिकता में थरथरा उठा है आधुनिक मानव समाज। प्रजातंत्र, राजतंत्र, साम्यवाद और समाजवाद के सभी सूत्र आर्थिक प्रभुत्व और एकाधिकार के हाथों में गिरवी होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में सामाजिक चैतन्य का ठिठक जाना कोई अजूबा नहीं है।

जब हम वृहत्तर सामाजिक चेतना के सवाल पर भारतीय समाज पर दृष्टिपात करते हैं तो इसके लिये हमें अंग्रेजी संस्कृति के बहुआयामी प्रभावों की ओर देखना पड़ता है। अंग्रेज और अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य ने भारत की मनीषा को दुहरे स्तरों पर प्रभावित किया। एक तरफ विदेशी विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी ने उत्पादन को गत्यात्मकता दी दूसरी तरफ विदेशी साहित्य ने नये चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक चिन्तन को नयी दृष्टि से देखने की, समझने की राह सुझायी। भारत की सामाजिक व वैयक्तिक सोच अलौकिकता के शिखर से लौकिकता के धरातल पर उतरने लगी। *धर्म समाज में व्याप्त हो गयी रूढ़ियों के दुर्निवार गुंजल्क को काटने के लिये सुधारवादी* चेतना उभरी। छापेखाने के प्रयोग का सहारा लेकर ईसाई मत के प्रचार-प्रसार की जो *योजना अंग्रेज धर्म-प्रचारकों, पादरियों ने चलाई उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप धर्म के क्षेत्र* में भारतीय युवा पीढ़ी चौकन्नी हो गयी। सुधारवादी चेतना ने समाज की परिवर्तित और जागरूक करने की जरूरत को शिद्दत के साथ महसूस किया। भारतीय सामाजिक चेतना *में यह जागृति सर्वथा अप्रत्याशित नहीं थी बस उसकी सोयी* सुप्त चेतना में एक हलचल परिस्थितिवश उत्पन्न हुई।

भारत का नया पढ़ा-लिखा नवयुवक योरोप के समाज से भारत के समाज की तुलना करने लगा और उसे उसका वर्तमान बेहद विपन्न परन्तु भूतकाल उज्जवल दिखायी दिया। योरोप की पूँजी में मात्र विज्ञान ही एक ऐसा तत्त्व था जहाँ भारत पिछड़ा था परन्तु *अन्य क्षेत्रों में यह स्वयं* को सम्पन्न समझ रहा था। भारत नवोत्थान की इस नववेला में प्रवृत्ति मार्ग की ओर अग्रसर हुआ। वैदिक चेतना की प्रवृत्तिमार्गी सोच को आत्मसात कर रहा था और मानव-समाज की समानता का उद्घोष नये स्वरों उभरने लगा था।

राजा राममोहन राय को आधुनिक भारत का प्रथम *अग्रचेता* और पुनर्जागरण *का* अग्रदूत कहा जाता है। राजा राममोहन राय समाज-सुधारक और आधुनिक राजनीतिक चेतना *के उन्नायक महापुरुष थे। उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना प्राचीन मानवीय मूल्यों* के आधार पर किया तथा इस संस्था को अनेक लोकहितकारी कार्यों से जोड़ दिया। *विज्ञान* को वेदान्त से जोड़ कर उन्होंने एक ऐसे धर्म और समाज का संयोजन करना चाहा जिसमें न छूआ-छूत था, न बाह्याडम्बर, न मूर्ति पूजा थी और न अवतार की परिकल्पना। वे तीर्थों की लूट-खसोट के प्रति गहरे आक्रोश से सम्पूरित थे। प्राचीन *जाति-प्रथा* और *नवीन मानवता* के बीच जो खाई है, अंधविश्वास और विज्ञान के बीच

जो दूरी है और स्वेच्छाचारी राज्य और जनतंत्र के बीच जो अन्तराल है तथा बहुदेववाद और शुद्ध ईश्वरवाद के बीच जो भेद है उन सारी खाईयो पर पुल बाध कर भारत को प्राचीन से नवीन की ओर भेजने वाले महापुरुष राजा राममोहन राय है।' राजा राममोहन राय ने पाश्चात्य शिक्षा के प्रति युवको मे आग्रह पैदा किया। ठगी प्रथा, सती प्रथा, बाल-विवाह जैसी कुरीतियो पर जमकर प्रहार किया। उनके सगठन ने सैकड़ो नारियो को चिता मे अग्निस्नान से मुक्त कराया। समाज के रूढिवादी, पोगा पण्डितो से उन्होंने अनवरत सघर्ष किया। इसी के समानान्तर *प्रार्थना समाज* की स्थापना करके आचार्य केशवचन्द सेन ने अपने समाज को सच्चे धर्म और सच्ची मानवता के पक्ष मे कराने का उपक्रम किया। ईश्वरचन्द विद्यासागर, बकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय, लाला द्विजेन्द्र नाथ लाल राय ने साहित्य के स्तर पर सुधारवादी लड़ाई लड़ी।

बगाल के समान ही महाराष्ट्र मे भी नये भारत का निर्माण, नये समाज के सर्जन, संगठन के लिये सुधार, परिष्कारवादी आन्दोलन उठ खड़े हुए। रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, पण्डित बालगगाधर तिलक आगरकर प रमाबाई, महात्मा फूले, महर्षि कर्वे का नाम महाराष्ट्र के समाज सुधारको मे विशेष उल्लेखनीय है। इनमे भी लोकमान्य तिलक का व्यक्तित्व और कृतित्व विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प बाल गगाधर तिलक को विदेशियो ने *आधुनिक भारतीय क्रान्ति* का जन्मदाता कहा है। उन्होने ***स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है*** का मत्र पराधीन भारत को दिया जो आज भी अपनी प्रासगिकता बनाये हुए है। उद्‌भट विद्वान्, श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, लोकमान्य नेता, सफल राजनीतिज्ञ, राष्ट्रीयता के क्रान्ति दूत तथा क्रान्तिदर्शी समाज सुधारक के रूप मे *तिलक* का अवदान अविस्मरणीय कहा जा सकता है। ईसाईयत के भीषण आघात से हिन्दू-समाज को सरक्षित करने, मुसलमानो और हिन्दुओ के बीच एका बनाये रखने, धर्म को, पर्व त्यौहारो को राष्ट्रीयता मे जोड़कर भारतीय समाज को उबारने के अदभुत प्रयास उन्होने किये। महाराष्ट्र मे उन्होने गणेशोत्सव तथा शिवाजी महोत्सव जैसे सांस्कृतिक राष्ट्रीय आयोजनो का शुभारंभ कराया। *गीतारहस्य* लिखकर उन्होंने कर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय इस दिशा मे उन्होने प्रारंभिक पहल की। 'महात्मा फूले ने शिक्षा तथा रूढियो को समाप्त करने मे महत्पूर्ण योगदान किया सबमे पहले नारी शिक्षा का आयोजन कर स्वयं अपनी पत्नी को शिक्षिका बनाया। दलितोद्धार की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया। छुआछूत का घोर तार्किक विरोध किया। इन महान् आत्माओं के प्रयास से परतंत्र और रूढ़िग्रस्त भारतीय समाज मे सुधार का नवउन्मेष जागा। व्यक्ति चेतना समूह के रूप मे परिष्कृत हो रही थी जिसने धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारतीय समाज मे एक तरफ नवजागरण, नवोत्थान

१ *संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिह दिनकर, पृ० ४४४।*

की भूमिका रखी, दूसरी तरफ विदेशी परतत्रता से मुक्ति के लिये अनयक प्रयास किये। समाज अब सम्पूर्ण राष्ट्र की अस्मिता के लिये बद्धपरिकर होकर परिवर्तन तथा परिवर्धन की नयी उमंगो की लहरे उठा रहा था जिसकी व्यापक परिणति आगे चलकर देखी जा सकती है।

आर्यसमाज की स्थापना ने भारतीय युवापीढी को झकझोर कर रख दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सुधारवादी आन्दोलन को व्यापक धरातल पर स्थापित करने का अभिनव प्रयास सम्पन्न किया। उन्होंने प्राचीन धर्मग्रन्थ वेदो, उपनिषदो का गहन अध्ययन कर उनके सारभूत तत्वो की नयी व्याख्या हिन्दी मे सत्यार्थप्रकाश के नाम से लिखी। इस ग्रंथ की भूमिका मे उन्होने लिखा कि 'मेरा इस ग्रथ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य का प्रकाश करना है। अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या हैं उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।'[1] पूर्व के ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज दोनो ने एक ईश्वर की बात को प्रचारित प्रसारित किया परन्तु आर्य समाज ने प्राचीन धर्मग्रथ **वेद** को अप्रतिम प्रमाण ग्रथ के रूप मे स्वीकार किया। स्वामी दयानन्द ने प्राय सभी ज्ञात धर्मों की अच्छाइयो बुराइयो, की समीक्षा की और उसके पश्चात एक ईश्वर, एक धर्मग्रथ जिसे बाइबिल तथा कुरान के ऊपर श्रेष्ठ माना जा सके, प्रमाण ग्रंथ के रूप मे स्थापित करने का प्रयास किया। आर्य समाज जाति-भेद नही मानता, स्त्री-शिक्षा, पुनर्विवाह तथा विभिन्न जातियो के सम्मिश्र विवाह उसके लिये मान्य है।[2] धर्मच्युत हुए हिन्दुओ तथा विधर्मियो को पुन हिन्दू बनाने की पहल करके आर्यसमाज ने एक अभूतपूर्व संयोजन किया। वैदिक मत्रो के पाठ, यज्ञ विधि और नयी विवाह-विधि उन्होने स्थापित कर प्राचीन सस्कारो को पुर्नजीवित करने का उपक्रम करके सुप्त चैतन्य को जाग्रत किया। धर्म परिवर्तन के द्वारा उन्होने ईसाई तथा इस्लाम की व्यवस्था को घोर चुनौती दी। नयी शिक्षा के लिये उन्होने स्थान-स्थान पर
एंग्लो-वैदिक कालेजो, स्कूलो की स्थापना की। नारी शिक्षा को बलपूर्वक स्थापित करने का प्रयास किया। उनकी वाणी केवल सुधार की वाणी नही थी अपितु यह जागृत हिन्दुत्व का समरनाद था और सत्य ही रथारूढ होकर रणारूढ हिन्दुत्व के जैसे निर्भीक नेता स्वामी दयानन्द हुए वैसा और कोई नही हुआ।

इसी सन्दर्भ मे भारतीय नवजागरण के *रामकृष्ण परमहस* ने हिन्दू धर्म के जीवन्त प्रतीक *महाकाली* की आराधना, ध्यान और धारणा से एक समर्थ और शक्तिशाली समाज के निर्माण का लक्ष्य रखा। सेवा तथा आराधना के सम्मिलित स्वर उनकी मधुरवाणी से नि सृत हुए। मनुष्य को आत्मानुभूति और आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिये

१ सत्यार्थ प्रकाश-स्वामी दयानन्द सरस्वती, पृ० ३।

२ वैदिक सस्कृति का इतिहास-लक्ष्मण शास्त्री जोशी, पृ० २७०।

पहले साधना, आराधना के द्वारा योग्य होना चाहिए। सामाजिक चेतना के क्षेत्र में उन्होंने जाति-भेद, छुआछूत और ऊंच-नीच के भेद को अस्वीकार कर दिया। नारी को साक्षात् आनन्दमयी जगदम्बा का स्वरूप माना। उन्होंने ***सर्वधर्म समन्वय*** की राह सुझाई। रोम्यां रोलां ने उन्हें आधुनिक भारत का सबसे तेजस्वी साधक कहा।

स्वामी विवेकानन्द पाश्चात्य साहित्य, धर्म और विज्ञान के गहन अध्येता था। वे प्रतिभावान योगी परम उद्‌भट विद्वान्, ओजस्वी वक्ता, धर्म के प्रचारक और एक महान् राष्ट्र निर्माता थे। रामकृष्ण परमहस के सान्निध्य मे उन्होंने साधना तथा शक्ति का सचय किया। पूर्ववर्ती सम्मस्त महत्वपूर्ण धर्मों का गहन ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने विश्वधर्म सम्मेलन शिकागो मे अपने ज्ञान, वक्तृत्व कौशल का झण्डा गाड़ा तथा योरोप के अनेक देशों मे भारत के मानवतावादी, सहिष्णु हिन्दू धर्म की यश पताका लहराया। हजारों विदेशियो को अपना शिष्य बनाया। उन्होंने स्पष्ट ही घोषित किया कि ***प्राणीमात्र की सेवा ही सच्ची ईश्वर आराधना है।*** उन्होंने अपना पुरषार्थ राष्ट्र के निर्माण मे लगाया। वे राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के पक्षधर थे। नारी-शिक्षा की अनिवार्यता को उन्होंने स्वीकारा और प्रचारित किया। छुआछूछत, जाति-पॉति तथा खान-पान के विभेद को वे भारत का कोढ़ और अभिशाप मानते थे। नवीन बारत को उन्होंने सन्देश दिया था। 'उत्तिष्ठत जाग्रत पाप्य वरान्निवोधत'। वे मातृभूमि तथा मनुष्य मात्र की सेवा को सर्वोपरि धर्म स्वीकारते है। वे राष्ट्रीय जागरण के प्रेरणा व पुरुष थे।

स्वामी रामतीर्थ ने भाग्यवाद को अस्वीकार करते हुए कर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित की और कहा कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वय है। वे क्रिया, शक्ति और जीवन के त्रिक के आधार पर वेदान्त की श्रेष्ठता का प्रचार करते हुए विशेष मानव धर्म की स्थापना के आग्रही थे। राष्ट्रप्रेम ही उनका सर्वोपरि धर्म था। वे मानव-मानव मे प्रेम तथा बन्धुत्व को स्थापित करने, सभी मे एक ईश्वर की आमा देखने पूरे समाज एवं राष्ट्र के विकास का सपना देखने वाले धर्म-पुरुष थे, जिन्होंने अपने व्यक्तित्व, प्रचार-प्रसार से सामाजिक चैतन्य को विकास मान्यता दी। समन्वय को महत्व दिया तथा युग को गौरवान्वित भी किया।

महर्षि अरविन्द, विश्ववाद की सर्वोच्च परिकल्पना तो राममोहन राय महाशय ने ही कर दिया था, विवेकानन्द ने उसे मूर्तिमान करके प्रचारित, प्रसारित भी किया। राम कृष्ण और परमहंस ने सर्वधर्म-समन्वय का अद्‌भुत सन्देश देकर पूरे भारतीय समाज को एकमूत्रता मे बांधने का अभनिव सत्प्रयास किया। महर्षि अरविन्द घोष ने इस विश्ववाद को स्वर्गवाद मे परिणत करने की चेष्टा की और पृथ्वी को ही स्वर्ग बना देने की कोशिश मे संलग्न हो गये। स्वामी विवेकानन्द ने भाग्यवाद के स्थान पर कर्मवाद को महत्व दिया तो अरविन्द ने दिव्यता के सहारे सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त करने की चेतना को

जाग्रत करने का उपक्रम किया। प्रारंभ मे अपने क्रान्तिकारी विचारो तथा कार्यों के कारण उन्होंने भारतीय राजनीति मे क्रान्ति की चेतना फूँकने की चेष्टा की पर आगे चलकर उन्होंने साधना के द्वारा समग्र मानवीय चेतना को उर्ध्वगामिता देने का उपक्रम प्रारम्भ किया। वे मानवीय दुर्बलता की खोज मे संलग्न होकर उन दुर्बलताओ से उसे मुक्ति दिलाने की सोच मे निरन्तर डूबे रहे। उन्होने लोभ, मोह और भौतिक सुखैषणा के विरुद्ध उच्चाशयता, दया और करुणा की राह सुझायी। वे समाज के भीतर छिपी सभावनाओं का विवेकसम्मत हल निकालने के पक्षधर थे।

बुद्धिवाद के पक्षधर होते हुए भी आर्थिक एव भौतिक जीवन पर केन्द्रित बुद्धि के प्रति उनके मन मे अनेक शकाये थी। उन्होने विज्ञान की उपलब्धियों को बाह्य सुखो का सवाहक माना है। वे सुधारवादी उपदेशो की अपेक्षा मानस से अतिमानस तक की विकास यात्रा की आवश्यकता पर बल देते रहे। उनका मानना था कि व्यक्तियो मे सर्वथा नवीन चेतना का सचार करो, उनके मस्तिष्क को समग्र रूप से बदलो, जिससे पृथ्वी पर नये जीवन का समारंभ हो सके। वे अतिमानस के साथ ही अतिमानव की भी परिकल्पना कर रहे थे किन्तु अरविन्द का अतिमानव ज्ञान तथा कर्म के योग से समन्वित होकर भक्ति तथा योग के संयोजन से दिव्यत्व की प्राप्ति वाला मानव होगा।

१९१४-१५ से लेकर १९५० तक का भारत महात्मा गाधी के क्रिया-कलापो और विचार-सन्दर्भों का भारत है। गाधी ने राजनीति, समाज, धर्म और नैतिकता चारो को प्रभावित किया और एक सीमा तक अपनी सोच और पद्धति मे ढाला भी। राजनीतिक स्तर पर उन्होने सत्य, अहिसा और सत्याग्रह से अग्रेजी राजसत्ता के विरुद्ध जनमत को जागरित किया तथा आम जनता को सीधे-सीधे बर्तानियाँ हुकूमत के विरुद्ध लामबद करने की कोशिश की। स्वदेशी आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का बराबर प्रयोग करते हुए वे अपने मन को दृढ से दृढतर बना रहे थे साथ ही भारत की तीस करोड़ जनता के विश्वास को भी पुख्ता कर रहे थे। उन्होने सत्य स्वरूपी परमेश्वर को ही स्वीकार किया, अहिसा उन्होने जैनो से ली, महाकरुणा बुद्ध से तथा प्रेम और बन्धुत्व लिया ईसा मसीह से सत्याग्रह की प्रेरणा उन्हे अमरीकन चिन्तक *थेरो* से प्राप्त हुई तथा जनजीवन मे प्रवेश कर उनके समान जीवन जीने की प्रेरणा *लियो टॉलस्टॉय* से उन्हे मिली।

सत्य, अहिसा, असहयोग, सविनय अवज्ञा और उपवास के सुदृढ़ आधार पर टिका गाधी का दर्शन अत्यन्त व्यावहारिक एव नैतिक दर्शन है। उनका धर्म वेद, उपनिषद् एवं गीता पर टिकटहोकर भी प्रेम से सभी को बाध लेने वाले सहज स्वभाव वाले मानव धर्म के रूप मे प्रस्फुटित होता है। वे सर्वधर्म समन्वय के आग्रही थे अतएव बुरा देखने, सुनने और बोलने तीनो पर उन्होने जकड़बदी कर दी थी। वे घृणा के

स्थान पर प्रेम से मानव का मन जीतने के आग्रही प्रतीत होते हैं।

राज्य की अवधारणा उनकी ***रामराज्य*** भी थी। वे शासक को सर्वगुण सम्पन्न, प्रतापी, स्वाभिमानी और उदारचेता के रूप में देखने के आग्रही थे। वे जनसेवक, प्रजा पालक, जनतांत्रिक प्रशासक की कल्पना करते थे।

सामाजिक-चेतना के क्षेत्र में गांधी समसामयिक समस्याओं, अछूतोद्धार, अस्पृश्यता निवारण, तन की पवित्रता, जाति पाँति और धर्म-विभेद की समाप्ति के लिये प्रयासरत थे। अछूतों को उन्होंने ***हरिजन*** संज्ञा दी तथा दरिद्र नारायण की सेवा के व्रत को ईश्वर भक्ति के रूप में स्थापित किया। वे ***ग्राम*** की सेवा, ग्राम के संगठन, ग्रामीण उद्योगों, लघु उद्योगों, चरखा, हथकरघा को महत्व देते हैं तथा अनावश्यक भोगवादी, मशीनीकरण का विरोध करते हैं। गांधी ने खादी को वस्त्र नहीं एक विचार के रूप में स्थापित एवं प्रचारित किया। गांधी की आर्थिक चेतना ग्रामीण विकास एवं गरीब जनता के हितों का *अर्थवाद था। वे अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के विरुद्ध बुनियादी शिक्षा* तथा हिन्दुस्तानी भाषाओं के पक्षधर थे। वे ग्रामीण उद्योग-धन्धों तथा कृषि, लोक पाठ्य-क्रम में स्थापित कर निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता पर आग्रह रखने वाले अग्रसोची मनीषी थे। वे शिक्षा तथा साक्षरता दोनों को भिन्न धरातलों पर रखकर देखने के पक्ष में भी थे। वे अंग्रेजी संस्कारों को देश के लिये घातक मानते रहे और अंग्रेज तथा अंग्रेजियत दोनों से मुक्ति पाना चाहते थे। वे सत्य, अहिंसा के आधार पर प्रेमपूर्ण समाज की संरचना, राष्ट्रीय शिक्षा राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रयोग से सशक्त, सम्पन्न राष्ट्र की रचना करना चाहते थे।

भारत को आधुनिक सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और राष्ट्रीय चेतना को उदात्त बनाने, उसे परिष्कृत करने में पण्डित मदन मोहन मालवीय, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन, पण्डित नेहरू का महत्वपूर्ण योगदान था। मालवीय जी धर्मानुशासित समाज, रवीन्द्रनाथ ठाकुर सांस्कृतिक चेतना तथा नेहरू आधुनिकता के आग्रही थे। भौतिक सुखों और आत्मिक शान्ति का द्वन्द्व आज भी वैसा ही है, जैसा पहले था परन्तु सुख की चाह में भटकते मानव को शान्ति। आनन्द की आवश्यकता आज पहले से अधिक प्रतीत हो रही है।

पश्चात्य चिन्तकों ने भारत को, विशेषतः स्वतंत्रता के लिए छटपटाते भारत को बहुत तरीकों से प्रभावित किया है। चिन्तन के स्तर पर मार्क्स, फ्रायड, क्रोचे और सार्त्र ने भारतीय सामाजिक चेतना को परिष्कृत करने और नये सन्दर्भों में उसे सोचने को प्रेरित किया है। ट्रेड यूनियनों की स्थापना, पूँजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद और जनतंत्र की अनेक गुत्थियों को सुलझाने, समझने और उनके द्वारा भारतीय समाज को गतिशीलता देने का उपक्रम भी हमें पाश्चात्य विचारकों के सम्पर्क तथा प्रेरणा से मिला

है। पाश्चात्य साहित्य ने बंगला, मराठी कन्नड़, तमिल, तेलुगू तथा हिन्दी को नयी विधाएँ दी विशेषत गद्य और उसकी विविध विधाएँ पाश्चात्य साहित्य के अनुकरण और आधार पर ही विकसित हुई। नये विषयो, सन्दर्भों तथा नये काव्य तत्वो, प्रतीको, बिम्बो की विशेष समझ भी पाश्चात्य साहित्य के आधार पर ही विकास पायी।

भारत मे अंग्रेजी राज्य की स्थापना का सूत्रपात *कम्पनी राज* से हुआ। जहाँगीर वह मुगल सम्राट है जिसके दरबार मे *सर टॉमस रो* ने उपस्थित होकर *ईस्ट इण्डिया कम्पनी* की स्थापना तथा उसे कुछ सहुलियते देने की सिफारिश की थी। अंग्रेजो ने प्रारम्भ मे सूरत, भड़ौच, कलकत्ता, विशाखापत्तनम मे अपनी कोठियाँ, बस्तियाँ बसाने की कोशिश की। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रतिस्पर्धा डचो तथा फ्रांसीसियो से थी, जिसमे उन्होने फ्रांसिसियो को पराभूत कर दिया। छल, प्रपंच, लोभ, भय और कूटनीति से कम्पनी सरकार ने अनेक भारतीय सामन्तों, जागीरदारो तथा राजाओ के शासन-सूत्र अपने हाथ मे ले लिया। राजनीतिक अनिश्चितता, आपसी कटुता और सामाजिक, धार्मिक वैमनस्य का भरपूर लाभ उठाया अंग्रेजो ने तथा जमीदारो, सामन्तो और मुगल सम्राटो की अथाह सम्पत्ति को खुले हाथों लूटा। व्यापार करने वाली ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने असीम प्रभुसत्ता स्थापित करने का कुचक्र रचा।

इंग्लैण्ड मे राजतंत्र व्यवस्था थी। ई० सन् १९१५ मे ही वहाँ 'मैग्नाकार्टा' ने प्रजातन्त्र स्थापित करने का प्रयास किया। सत्रहवी सदी के अन्त तक इग्लैण्ड की राजसत्ता मात्र कागजी और शोभा की वस्तु रह गयी थी। *दि बिल आफ राइट्स* अर्थात् जनता के अधिकार कानून ने प्रतिनिधि सरकार की कल्पना को साकार करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। *थामस जैफर्सन* ने अंग्रेजी प्रजातन्त्र के ही अस्त्र का कारगर उपयोग करके अमेरिकी स्वायत्तता तथा स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी। फ्रांस मे सफल राज्यक्रान्ति हो चुकी थी तथा फ्रांस और अमेरिकी जनता ने स्वतन्त्रता का, स्वावलम्बन का, उपनिवेशवाद के खात्मे का श्री गणेश कर दिया था। जिन अंग्रेजो ने अपने देश मे स्वतन्त्रता, प्रभुसत्ता, स्वावलम्बन का झण्डा बुलन्द किया था उन्होने ही भारत मे आकर शोषण तथा साम्राज्यवादी हथकण्डो का इस्तेमाल किया। शोषण, लूट-खसोट तथा *फूट डालो और राज्य करो* की कूटनीति के चलते भारत के राजा-महाराजा, सामन्त, जमीदार निरन्तर विपन्न हो रहे थे, सत्ता से च्युत किए जा रहे थे जिसकी भीषण प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी। ग्रामीण दस्तकारी, बुनकरी पर मशीन हावी हो रही थी। कच्चे माल ढोकर इग्लैण्ड के यार्कशायर और मैनचेस्टर की मिलो के लिये ले जाये जा रहे थे। हर माल पर चुगी लगा दी गयी थी। कम मूल्य मे खरीद और मुनाफे मे बिक्री अंग्रेज व्यापारियो का जन्मना अधिकार हो गया था। धर्म के स्तर पर ईसाईयत का प्रचार-प्रसार तथा विभेद नीति ने पूरे भारत को विक्षुब्ध कर दिया था।

अंग्रेजो के शोषण, लूट-खसोट को अब ठीक-ठीक पहचाना जा सकता था। ईसाईयत के प्रचार को खुली छूट देकर तथा न्याय-प्रशासन के नाम पर भारतीय समाज को अन्याय, लूट, अत्याचार के शिकंजे मे कसकर आतंक का शासन कायम किया था अंग्रेजो ने। मुगल सल्तनत तथा मराठा शक्ति का सम्मिलित उद्‌घोष १८५७ मे फूट उड़ा। धर्म और संस्कार के विरुद्ध साजिश को सिपाहियो ने नाकाम करने की ठानी परिणामत भारत का प्रथम सशस्त्र स्वाधीनता सग्राम पूरे भारत मे उभरा। विद्रोह को दबाने मे जो अमानवीयता, भीषण दमन तथा अत्याचार किया गया उससे भारतीय समाज मे भय भी उमगा तथा आक्रोश भी। कम्पनी-शासन समाप्त हो गया तथा शासन सूत्र महारानी विक्टोरिया के हाथो मे चला गया। इग्लैण्ड की अंग्रेज सरकार ने प्रशासन-व्यवस्था मे कतिपय महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। भारत मे विदेशी शासन और विदेशियों के प्रति घृणा का पारावार प्रवाहित होने लगा तथा स्वतत्रता की चाह बलवती हो उठी। राष्ट्रीय चेतना सामाजिक सामजस्य के आधार पर विकसित होने लगी। 'सन् १८७६ से १८८४ तक का समय भारतीय राष्ट्रीयता का बीज बोने का समय कहा गया है।'[1] १८७७ मे गवर्नर जनरल लार्ड लिटन ने अंग्रेजी दरबार लगाकर भारतीय वैभव पर सत्ता का झिलमिल प्रकाश बिखेरा। उसी समय वर्षण तथा अकाल से दक्षिण भारत झुलस रहा था। द्वितीय अफगान युद्ध ने भारतीय शासको का खजाना ही नही खाली किया उन्हें झुंझलाहट से भर भी दिया। लार्ड रिपन ने सूती माल पर, आयात पर कर घटाकर लंकाशायर के मिल मालिको को माला-माल कर दिया। अन्याय, शोषण के खिलाफ सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने ***इण्डियन एसोसिएशन आफ बंगाल*** की नींव रखी तथा कलकत्ता मे एक सम्मेलन करके देश और हिन्दू समाज के हित मे एक हो जाने का जन आह्वान किया। १८८४ मे मद्रास तथा १८८५ मे बम्बई मे भी इस प्रकार की प्रादेशिक संस्थाएँ गठित की गयी। अन्य संस्थाओ को एकसूत्र मे बांधने का काम हुआ।

सर ए. ओ. ह्यूम ने सन् १८८५ मे ***इण्डियन नेशनल कांग्रेस*** की स्थापना की। इस संस्था मे लर्चाल रुख की तरजीह मिली तथा सरकारी न्यायालयो, नौकरियों मे भारतवासियो को जगह मिली। कांग्रेस के महत्वपूर्ण नेताओं मे से अनेक ऐसे थे, जो सामाजिक सुधार को भी बेहद महत्वपूर्ण मान रहे थे। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की माँग, विधवा-विवाह, बाल-विवाह विरोध, सती-प्रथा विरोध आदि का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। भारत की राजनीतिक चेतना, समाज चेतना की आड़ मे बढ रही थी।

बीसवी सदी के प्रारम्भ होते-होते अंग्रेजो का दमन-चक्र प्रारंभ हो गया सरकारी गुप्त समितियो का कानून विश्वविद्यालयो को सरकारी नियंत्रण मे लेना तथा तिब्बत

१ *भारत का संवैधानिक इतिहास-महाजन और सेठी, पृ० ३३७।*

पर *आक्रमण और बंगाल का विभाजन करके अंग्रेजो ने अपनी कूटनीति का,* राजनीतिक विद्वेष का परिचय दिया। १९०५ मे सरकार ने बगाल को दो टुकड़ो मे बॉट दिया जिसके विरुद्ध दुर्धर्ष संघर्ष प्रारभ हुआ प्रारभ मे यह आन्दोलन पूर्णत अहिसक था पर दमन-चक्र ने इसे पूरे भारत मे फैलाया 'सरकार की उत्तरोत्तर उग्र और नग्नरूप धारण करने वाली दमन नीति के कारण नवजाग्रत चेतना भी सचमुच व्यापक, विस्तृत और गहरी होती गयी। देश के एक कोने मे जो घटना होती थी, वह सारे देश मे फैल जाती थी। सरकारी का प्रत्येक दमन कार्य देश मे उलटा असर करता था। सम्पूर्ण भारत ने बगाल के सवाल को अपना सवाल बना लिया।'[१]

सर गुरुदास बनर्जी ने *बंग जातीय विद्यापरिषद्* की स्थापना की और स्वामी श्रद्धानन्द ने *गुरुकुल कांगड़ी की* इस संस्थाओ तथा प्रार्थना समाज के विपिचन्द्र पाल ने पूरे देश मे राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय चेतना का प्रचार-प्रसार किया। महर्षि अरविद घोष, ने नवचैतन्य, मानव-दर्शन और समानता के आग्रह के साथ सघर्ष का सूत्रपात किया। दादा भाई नौरोजी ने स्वराज्य की भावना का उद्घोष किया। बग भग के बाद तिलक ने सूरत अधिवेशन के मच पर खड़े होकर घोषणा कि मैं उस पार्टी मे हूँ जो वह काम करने को तैयार है जिसे वह ठीक समझती है, चाहे सरकार खुश हो या नाखुश। *हम भीख मागने की नीति के खिलफ है।*[२]

श्यामजी कृष्ण वर्मा ने १८९९ मे *रैंड* नामक आततायी अग्रेज अफसर की हत्या कर दी थी और १९०५ मे इग्लैण्ड जाकर उसने *इण्डियन होम रूल सोसायटी* की स्थापना की। वीर सावरकर उन्ही के प्रयास से इग्लैण्ड गये और उनके बाद सोसायटी का नेतृत्व सम्हाला तथा एक *नयी सस्था सावरकर बन्धुओ ने खड़ी की अभिनव भारत सोसायटी।* आगे चलकर वीरेन्द्र घोष और भूपेन्द्र नाथ दत्त ने गीता के *निष्काम कर्म* के आधार पर राष्ट्रीय क्रान्ति को धर्म से जोड़ा। खुदी राम बोस को १९०८ मे फॉसी दी गयी। मदन लाल धीगरा को मृत्युदण्ड तथा वीर सावरकर को काले पानी की सजा दी गयी। तिलक को *माडले* के जेल मे नजरबद कर दिया गया। भारत मे बगाल, पजाब, मध्यदेश तथा पाण्डिचेरी मे हिसक सघर्ष प्रारभ हो गया था।

१९१४ मे प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया। कांग्रेस मे महात्मा गाधी और श्रीमती एनी बेसेन्ट का पदार्पण हुआ। यही समय है जब *प्रसाद* सीधे साहित्य मे, लेखन के क्षेत्र मे स्थापित रचनाकार के रूप मे उतरते है। ब्रज भाषा के माधुर्य तथा वैदिक और मनोवैज्ञानिक प्रतीकात्मकता से उनकी रचनात्मकता अग्रसर होती है। वे समसायिक समस्याओ के लिये पौराणिक, ऐतिहासिक प्रमाणो, समर्थनो की खोज

१. *कांग्रेस का इतिहास-हिन्दू अनुवाद पट्टाभि सीता रमैय्या, पृ० ६४-६५।*

२ *वही।*

मे प्रवृत्त होते हैं। वे भाषा के परिष्कार को सोच की परिष्कार के पर्याय मानकर अग्रसर होते हैं। कामसूत्रों के लिये वे मान्य भारतीय परम्पराओ तथा सामाजिक स्वीकृतियों का सहारा लेते हैं। स्वमता को सर्वोपरि मानने वाले भारतीय चैतन्य के प्रतीक पुरुष थे प्रसाद। जिन्होने माना कि जनता ही राष्ट्र की नियामक है। वे प्रेम, सौन्दर्य, महाकरुणा तथा समरसता के उदगाता रचनाकार के रूप म स्वाधीन भारत की भावी तस्वीर खीच रहे थे। वे समाज और साहित्य मे सामजस्य के पुरोधा थे।

हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना का स्वरूप

सामाजिक चेतना *प्रसाद* के काल तक आते-आते जिसे समाजशास्त्री सस्कृतिकरण के रूप मे स्वीकार करते हैं, के रूप मे ढलने लगी थी। डा श्रीनिवास निम्न जातियों द्वारा गृहीत सस्कार को जो वे अपने से बडी जातियों मे ग्रहण करते हैं, सस्कृतिकरण के रूप मे मान्यता देते है, परन्तु प्रसिद्ध समाजशास्त्री मजूमदार एव मदन के अनुसार जब एक सस्कृति प्रसार के स्तर पर दूसरी सस्कृति को प्रभावित करने लगती है अथवा सस्कृति के तत्व या सकुल जब आदान-प्रदान की प्रक्रिया मे दुहराये जाने लगते हैं तो उसे सस्कृतिकरण कहा जा सकता है। आज सचार, प्रचार-प्रसार और व्यवहार के स्तर पर सम्पूर्ण विश्व ही एक सास्कृतिक परिवार के रूप मे ढलता जा रहा है। परन्तु समाजशास्त्रियों का यह विश्लेषण केवल उन्नत जातियों, समूहों एवं सस्कृतियो पर ही आधारित है। जब हम वन्य जातियों, जनजातियो की संस्कृति का अध्ययन करते हैं तो उनके रहन-सहन, वेश-भूषा, आचार-व्यवहार, पर्व-त्यौहार, मनोरंजन आदि की विधियाँ हमे सर्वथा भिन्न, अलग तथा अतिरिक्त प्रतीत होती हैं।

भारत की सामाजिक चेतना मे, जनजातियो, कोल, भील, संथाल, मुण्डा, थारू, गोड आदि के जीवन मे हस्तक्षेप अंग्रेज मिशनरियो ने ईसाई धर्म को प्रचारित, प्रसारित करने के उद्देश्य से किया। प्रलोभन, दवा, भोजन, वस्त्र आदि देकर ईसाई धर्म प्रचारकों, पादरियो ने लाखो लोगों को ईसाई बनाया तथा उनके जीवन, रहन-सहन को परिवर्तित करने का उपक्रम किया। ब्रह्म समाज, प्रार्थना-समाज, आर्य समाज का धर्मचक्र प्रवर्तन, हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता, वेदो, यज्ञो के प्रति गहरी रूझान इस धर्मान्तरण की व्यापक प्रतिक्रिया मे भी उठा था। जन-जातियां जो समूहों, कुलो और रक्त सम्बन्धों के साथ ही एक कुल देवता के सूत्र से बधी हुयी थी उनमे भी जाति-वर्ग, छोटे-बड़े अमीर-गरीब के स्तर बनने लगे। यौन सम्बन्धो, विवाह तथा अन्य संस्कारो, पद्धतियो में भी गजब का परिवर्तन उठने लगा। वे अपने मौलिकता से भटककर अनुकरण के व्यवहार को अपनाने लगे।

जिन लोगो, समूहो ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था वे अपने को उच्च, अतिरिक्त तथा सभ्य समझने लगे परन्तु अंग्रेजो ने उन्हे अपेक्षित सम्मान नही दिया और हिन्दुओं

मे भी वे अस्पृश्य, निम्न स्तरीय ही समझे गये। इससे *अनुकूलन* की समस्या भी उठी और सामाजिक विघटन हुआ। भाषा, मूल्य, आदर्श सभी मे बड़ा ह्रास उत्पन्न हो गया। वेश-भूषा, रहन-सहन के बदल जाने के कारण आर्थिक कठिनाईयाँ भी इन समूहो को झेलनी पड़ी, जिससे आगे चलकर अपराध मे बेतहासा वृद्धि हुई और सन्तुलन टूटा। रेल, यातायात के साधनो, सड़को पर दबाव बढ गया। भीड़ के कारण गिरहकटी, जुआ, शराब, मटका, लाटरी ने नगरीय जनता को शार्टकट की राह सुझायी। जिससे उत्पन्न हुयी मानसिक हीनता और अनेक मनोरोग। शिक्षा के पर्याप्त साधन नही थे इन नगरो मे और ये तो इतने महगे थे कि झुग्गी, झोपड़ियो मे रहने वाला, गरीब कामगार, मेहनतकश मजूर उस भार को वहन करने मे असमर्थ था, अतएव अशिक्षा बढी, बेरोजगारी बढी।

इन बड़े शहरो, औद्योगिक नगरो मे आबादी का घनत्व बढ़ता ही गया। दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, नागपुर, पूना, अहमदाबाद, मद्रास, कानपुर जैसे शहरो मे शान्ति और सुरक्षा के लिये शासन को अधिक परिश्रम से ससाधन जुटाने पड़े। अनेक धर्मो, जातियो, क्षेत्रो, सम्प्रदायो, वर्गो, भाषा-भाषियो के इस समूह को सम्हालने, सहेजने मे नगरो की पूरी व्यवस्था ही चरमरा उठी। धर्मान्धता पूजा स्थलो की पवित्रता, सम्प्रदायो के आपसी विद्वेष से इन नगरो मे साम्प्रदायिक दगे होने लगे जिससे सामाजिक सौमनस्य ही टूट और बिखर गया। विपरीत सोचो, रहन-सहन के तरीको, रीति-रिवाजो के कारण भी झगड़े उभरे।

अग्रेजो की साम्राज्यवादी नीति और औद्योगिक लूट ने भारत को भीतर से खोखला कर दिया। कच्चे माल, कोयला, सोना, अभ्रक, कपास, जूट और गन्ना के उत्पादो तथा चाय के बागानो पर, सचार तथा परिवहन के समस्त साधनो पर अग्रेजो और उनके दलाल ठीकेदारो का प्रभुत्व कायम हो गया। बगाल और दक्षिण भारत मे दुर्भिक्ष पड़ गया। प्रथम विश्व युद्ध से बाजार मे मदी आयी तथा जिन्सो, वस्तुओ के दाम मे बेतहासा वृद्धि हो गयी। जनता की क्रय शक्ति समाप्त हुयी साथ ही कृषि क्षेत्र मे परिश्रमी मजदूरो, किसानो की कमी हो गयी। अपनी अयोग्यता, आलस्य, अविवेक, अशिक्षा के कारण भारत के ग्रामीण समाज का व्यक्ति निरन्तर दरिद्र और परजीवी होता गया। ठगी प्रथा, लूट-खसोट, चोरी, डकैती, छिनैती बढ गयी। हैजा, प्लेग, मलेरिया जैसे रोगो ने भी भारतीय समाज को रूग्ण और जर्जर बनाया। इस निर्धनता मे चिन्ता को जन्म दिया जिससे समाज मे असम्मान एवं असुरक्षा की भावना बढी। औद्योगिक नगरो की मिलो मे, सड़को पर दुर्घटनाये बढी। पैसे की ललक ने अनैतिकता और कामचोरी को उपजाया। दहेज की प्रथा ने, झूठी अहमन्यता, दिखावे एव महगे धार्मिक सस्कारो आदि ने भी भारतीय समाज को निर्धनता से जकड़ दिया। सूदखोरी और जखीरबाजी

ने महाजनी सभ्यता को जन्म दिया। अंग्रेजों ने कुटीर उद्योगो का सफाया कर दिया। औद्योगिक प्रगति भी मंद हो गयी। जैसे-जैसे राजनीतिक आन्दोलन बढ़े वैसे-वैसे उत्पादन घटा। दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली, पूँजी के अभाव और कृषि निर्भरता ने भी भारतीय समाज को अधोगामी बनाया।

आदर्शवाद को ***आइडियालिज्म*** के पर्याय के रूप मे मान लिया गया है पर यह शब्द मूलत ***आइडिया*** अर्थात् विचार से सम्बद्ध है। अतएव आदर्शवाद किसी सीमा तक विचारवाद ही है। परन्तु सामान्यत हिन्दी समीक्षको, अध्येताओ को विचार की अपेक्षा आदर्श अधिक प्रीतिकर प्रतीत होता है। आदर्शवाद एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है जिसके आधार पर दर्शन, चरित्र और साहित्य को जाँचा-परखा जा सकता है। आदर्शवाद-विवेचन की वह प्रणाली है जिसके द्वारा जो दृश्य है, दृश्यमान सत्य है, मूल तत्व है उसके आगे, उससे अतिरिक्त जो हो सकता है, जो होना चाहिए, जो उदात्त और रेयर हो ऐसी चेतन सत्ता की परिकल्पना की जाती है। आदर्शवाद की दृष्टि बौद्धिक है पर वह सूक्ष्मतर सत्यो के अन्वेषण मे सलग्न सोच है, वह इस दृश्यमान सत्ता के पीछे अदृश्य, अज्ञात, सचेतन सत्ता की स्थिति को स्वीकार करता है। मूलत. दर्शनशास्त्र से सम्बद्ध यह शब्द आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे अर्थविवृत्ति प्राप्त कर चुका है। महान् दार्शनिक प्लेटो ने एक ऐसे संसार की परिकल्पना की जिसमे शाश्वत और चिरन्तन विचारो को ही ***सत्य*** के रूप मे ग्रहण किया गया। विचारक ***काण्ट*** ने शुद्ध बुद्धि और व्यावहारिक बुद्धि के द्वारा आदर्श के स्वरूप को जानने का प्रयास किया। बुद्धि और इच्छाशक्ति के आधार पर ***उदात्त*** की समझ को उसने ***आदर्श*** कहा जबकि ***हीगेल*** ने इसे ***विश्वात्मा*** माना तथा इसकी प्रक्रिया को ***द्वन्द्वात्मक*** स्वीकार किया तथा उसे वाद-विवाद की वक्र रेखाओं से विकसित माना। ***हीगेल*** के ***द्वन्द्वात्मक*** चिन्तन को आगे मार्क्स ने ***भौतिकवाद*** मे जोड़ दिया। ***जार्ज बर्कले, ब्रेडले*** आदि ने भी ***आदर्शवाद*** के चिन्तन को अग्रसर किया व स्पष्टता दी।

साहित्य म आदर्शवाद रूढ़िवाद अर्थ में न होकर मानव के आन्तरिक पक्ष की सुघरता, आनन्द की स्थिति मे होता है। मानसिक सुख, परितोष और आनन्द की इस आन्तरिक अनुभूति को ही वास्तविक आनन्द या आदर्श कहा जा सकता है। मानव की भटकती आत्मा को चिरन्तन सत्य की उपलब्धि ही आनन्द है तथा उसकी अभिव्यक्ति है आदर्शवादी अभिव्यक्ति। संस्कृत के सुखान्त नाटको, धीरोदात्त नायको, स्वस्ति वाचो, मागलिक उपसंहारो से भी यह बात प्रमाणित होती है कि चरम सुख, परम आनन्द ही साहित्य का प्रेय है। वही अभिप्रेत है, वही आदर्श की स्थिति है। ***रामायण, महाभारत*** मिल्टन का ***पैराडाइज लास्ट*** मानव के उच्चतर मूल्यो, दोनो की दानवो पर विजय तथा उच्चाशयता की उपलब्धि को ही मानक के रूप मे स्थापित करते है। आदर्श साहित्य

मे सत्य, आनन्द तथा उपदेश का सुन्दर समन्वय होता है। भावना और शिल्प के आधार पर आदर्शवाद के दो रूप हो सकते है। भावक्षेत्र का आदर्शवाद रचनाकार को जीवन के महत्, चिरन्तन और उदात्त सम्भावनाओ की खोज मे प्रवृत्त करता है। योरोप के अधिकाश स्वच्छन्दतावादी रचनाकार इस दृष्टि से आदर्शवादी कहे जा सकते है। क्योकि वे कल्पना के सहारे आदर्श लोक, सौन्दर्य और स्वप्नलोक का सृजन करते है। इसके लिये वे भाषा की समग्र सम्भावनाओ मे से भी उदात्त भाषा, सगीतमयता, सुन्दर बिम्बो भव्य प्रतीको का सन्धान करते है। शैली सम्बन्धी आदर्श को अभिव्यजना का आदर्श कहा जा सकता है।

यथार्थवाद, आदर्शवाद का विरोधी कहा जाता है। यथार्थवाद भौतिक मूल्यो को महत्व देता है जबकि आदर्शवाद आध्यात्मिक, रहस्यवादी और सुन्दरम् की समावना का काल्पनिक स्वरूप प्रस्तुत करता है। आदर्शवाद बहुधा वायवी होता है और कला, कला के लिये, का पोषण करता है जबकि यथार्थवाद कला को सोद्देश्य और उसे *जीवन के लिए* महत्वपूर्ण मानकर व्याख्यायित करता है। आदर्शवादी लेखक की शैली भावुकता प्रधान और कल्पना से सज्जित होती है।

छायावादी हिन्दी कविता आदर्शवादी जीवन दृष्टि से परिचालित है। उसमे आध्यात्म दर्शन की अपेक्षा सौन्दर्य, कल्पना, रहस्य तथा सुधारवादी सामाजिक जागरुकता और राष्ट्रियता का प्रभाव अधिक है। जयशकर प्रसाद की रचनाओ मे छायावादी आदर्शवाद चरमोत्कर्ष पर दिखायी देता है। आदर्श की परम स्थिति 'के' 'परिणय हो विरह मिलन का', 'ले चल मुझे भुलावा देकर', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', 'हिमाद्रि तुग शृग से' और 'समरस थे जड या चेतन .आनन्द अखण्ड घना था' मे देखा जा सकता है। *प्रसाद की चेतना समष्टि के सुख, समाज की समरसता, अखण्ड और घने आनन्द* के खोज मे प्रवृत्त है। लोक कल्याण, लोकमगल तथा लोकोत्कर्ष की महत् सम्भावनाओ की तलाश के कवि हैं प्रसाद। इसके लिये वे प्रत्यभिज्ञा दर्शन, शिव की मागलिकता और सामजस्य की स्वर्णिम परिकल्पना का वितान सिरजते प्रतीत होते हैं।

हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यास, अंग्रेजी, बगला, मराठी से अनुदित अथवा उनके रूपो के आधार पर सृजित उपन्यास थे। *इंशा अल्ला खाँ* की 'रानी केतकी की कहानी', *लल्लू लाल* की 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चसी', 'शकुन्तला', 'प्रेम सागर', *सदल मिश्र* का 'नासिकेतो पाख्यान', 'जटमल चरित', 'गोरा बादल की कथा', 'राजा शिव प्रसाद का 'राजा भोज का सपना' आदि घटनाओ के आधार पर कथा प्रधान, चरित्र प्रधान कृतियाँ जिसमे रहस्य, कौतूहल और आकस्मिकता का सुधार और सुखवादी सामाजिक चैतन्य उभरता है।

भारतेन्दु ने इसी समय मराठी से अनुदित 'पूर्ण प्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा', नामक उपन्यास प्रस्तुत किया और उसे लोकरूचि जो 'किस्सा हातिम ताई', 'गुलबकावली',

'छबीली भटियारिन', 'चहार दरवेश', 'बागो बहार' से मन बहलाती थी', का परिष्कार किया। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव, सुधारवादी चेतना, राष्ट्रीय जागरण और अतीत गौरव के पुनरुत्थान ने व्यापक हिन्दी भाषा-भाषी समाज को समकालीन सन्दर्भों से जोड़ा। कुरीति का समाप्ति तथा सामाजिक चेतना के उन्नयन का कार्य साहित्यकारों, सम्पादकों और पत्रकारों ने सम्हाला। हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों में यह सामाजिक-चेतना, देशाभिमान, गौरव और सुधारवाद के रूप में उभरी। ***किशोरी लाल गोस्वामी*** की 'त्रिवेणी', 'लवंगलता', ***स्व. कुसुम राधारमण गोस्वामी*** के 'विधवा विपत्ति', 'कल्पलता, चन्द्रकला', ***गोपालराम गहमरी*** के 'नये बाबू', ***राधाकृष्ण दास*** के 'निस्सहाय हिन्दू' आदि उपन्यासों में सामाजिक और नैतिक आग्रह दिखायी देते हैं। जिन उपन्यासों ने व्यक्तिगत, पारिवारिक सन्दर्भों को पाप-पुण्य, अच्छाई-बुराई को सहेजकर सामाजिक चैतन्य को उभारने का उपक्रम किया, उनमें बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान एक सुजान', ***श्रीनिवास दास का*** 'परीक्षा गुरु', ***गोपाल राम गहमरी*** का 'बड़ा भाई', 'सास-पतोहू', ***लज्जाराम शर्मा*** का 'धूर्त रसिक लाल', 'स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी' आदि महत्त्वपूर्ण है। तिलस्मी ऐय्यारी और जासूसी उपन्यासों-शौर्य पराक्रम, सौन्दर्य, प्रेम तथा चातुर्य का आभास दिया 'किशोरी लाल गोस्वामी, कार्तिक प्रसाद खत्री तथा देवकीनन्दन खत्री और दुर्गा प्रसाद खत्री की रचनाओं ने। अरबी, फारसी कथाओं-प्रेम-प्रपंचों, चमत्कार, जादू, ऐय्यारी, प्रेम विरह, मिलन, बिछोह के आधार पर सृजित इन उपन्यासों विशेषत: चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति, नरेन्द्र मोहिनी, वीरेन्द्र वीर, भूतनाथ आदि में साहित्यकला का प्रथम उन्मेष फूटा तथा चरित्रों के आधार पर आदर्शवादी सामाजिक चेतना का प्रस्फुटन सम्भव हो पाया। इसी जमाने में बंगला से ***'राजसिंह'*** का अनुवाद किया भारतेन्दु, 'दुर्गेश नन्दिनी' का किशोरी लाल गोस्वामी ने, जिसमें, प्रेम प्रसंग और वीरता का उन्मेष दिखायी देता है। ये समाज को बदलने की इच्छा वाली रचनाएँ हैं।

भारतेन्दुयुगीन उपन्यासों से आगे चलकर मनोवैज्ञानिकता के आधार पर जो उपन्यास हिन्दी में सृजित हुए उन पर बंगला के बंकिम चन्द्र, शरतचन्द्र तथा रविन्द्रनाथ टैगोर का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रेमचन्द के 'रंगभूमि', 'कर्म भूमि' तथा 'निर्मला' पर *यह प्रभाव स्पष्ट है। सामाजिक उपन्यासों के क्रम में मनोरंजन, सुधार तथा कलात्मक* उपन्यास १९०१ से १९२५ के बीच लिखे गये। ये उपन्यास घटना प्रधान, भाव प्रधान और चरित्र प्रधान उपन्यास थे। प्रसाद का कंकाल, तितली ऐसे ही उपन्यास हैं। युग की समस्याओं को प्रेमचन्द ने उठाया पर व्यक्तिगत प्रेम, त्याग साहस और समर्पण के बोध को ***प्रसाद*** ने पूरी कलात्मक ऊँचाई दी।

कहानी गद्य की सबसे लोकप्रिय विधा है। हिन्दी कहानी ने अर्थों में बंगला के माध्यम से योरोपीय प्रभाव में विकास की यात्रा प्रारंभ की। अंग्रेजी की ***सार्टस्टोरी*** अथवा

बंगला के *गल्प* ने ही आधुनिक हिन्दी कहानी का स्वरूप अख्तियार किया। आधुनिक साहित्यक कहानी का इतिहास वस्तुत १९वी सदी मे उभरता है। भारतीय साहित्य मे कहानी का रूप वैदिक साहित्य मे यम-यमी, पुररवा-उर्वशी के सवादो मे देखा जा सकता है। उपनिषदो मे कथा के प्राचीनतम स्वरूप विकसित हुए। प्राचीन भारतीय गाथाये वीरो की शौर्य गाथाओ और घटना प्रधान कथानक, वैचित्र्यताओ से भरी पड़ी है। क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा मजरी तथा सोमदेव के 'कथादि रत्नाकर' मे प्राचीन कथाओ के विकसित स्वरूप देखे जा सके है। दण्डी के 'दशकुमार चरित' वाणभट्ट की ***कादम्बरी*** सुबन्धु की ***वासवदत्ता*** को प्राचीन आख्यानक कथाओ के रूप मे प्रसिद्धि प्राप्त है। प्राचीन सस्कृत साहित्य की नीति कथाओ को भी कथा-विकास मे योगदान देने का श्रेय है। पचतत्र, *वृहत्कथामंजरी, कथा सरित्सागर, हितोपदेश की कहानियाँ सामाजिक चैतन्य का प्रमाण* प्रस्तुत करती है। संस्कृत काव्यो, नाटको, प्राकृत गाथाओ, पालि की रचनाओ मे भी कथा का पर्याप्त भण्डार है। भक्तिकाल और रीतिकाल मे कथा के आधार पर ही काव्यो, *महाकाव्यो की रचनाएँ की गयी है।*

पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव, छापेखाने के प्रयोग, ईसाईयत के प्रचार, प्रसार, राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक उन्मेष ने समाज की चेतना को परिष्कृत किया। गद्य के प्रचार और *मुद्रण की सुविधा ने हिन्दी 'प्रदीप', 'ब्राह्मण', 'सरस्वती', 'इन्दु' तथा 'सुदर्शन' जैसी पत्रिकाओ* को जन्म दिया। इन पत्र-पत्रिकाओ मे पहले तो सस्कृत, अरबी, फारसी, अग्रेजी की अनुदित कथाएँ प्रकाशित हुई और फिर आगे चलकर उनके आधार पर छाया रूपो मे और फिर स्वतत्र रूपो मे *कहानी का विकास प्रारभ* हुआ। *'सरस्वती मे १९०० मे किशोरी* लाल गोस्वामी की ***'इन्दुमती'*** प्रकाशित हुई। यद्यपि इस पर शेक्सपीयर की ***'टैम्पेस्ट'*** की छाया है तथापि इसे ही हिन्दी की प्रथम कहानी भी कहा गया है। बग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी को भी कुछ लोगो ने *पहली कहानी कहा है। रामचन्द्र शुक्ल का ग्यारह वर्ष का* समय 'राजा राधिका रमण प्रसाद सिह का 'कानो मे कगना' कहानी भी इस दौड़ मे शामिल है परन्तु 'इन्दु' मे प्रकाशित प्रसाद की कहानी 'ग्राम' ही सही अर्थों मे हिन्दी की पहली कहानी है। १९११ मे भारत *मित्र मे प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'सुखमय जीवन'* छपी। १९१२ मे प्रसाद की ***रसिया बालम*** प्रकाशित हुई इन्दु मे। इन प्रारभिक कहानियो मे प्रेम, करुणा, विनोद, विस्मय और कल्पना का प्रयोग कर प्रसाद और अन्य कहानीकारो ने व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्धो को *रेखाकित किया। आदर्श, उत्सर्ग और समर्पण की* ये कहानियाँ सामाजिक सरोकारो तथा परिष्कृत चैतन्य की कहानियाँ है। प्रसाद की आकाशदीप, गुण्डा, आधी, इन्द्रजाल आदि कहानियाँ व्यक्ति के गुणो, राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, उपकार, सहयोग, प्रेम, स्वाभिमान, जातीय गौरव *तथा उत्थान के प्रति अदभुत आग्रह रखने वाली कहानियाँ* है जिनमे सामाजिक चेतना के अनेक सूत्र सग्रथित है।

❖❖❖

3

हिन्दी कहानी के विकास-क्रम की ऐतिहासिक-सामाजिक दृष्टि

नयी कहानी के विकासक्रम की ऐतिहासिक, सामाजिक दृष्टि

कहानी निश्चय ही आधुनिक पाश्चात्य विधा की तर्ज पर हिन्दी मे प्रारंभ हुई और अपनी पूर्व परम्परा से अलग एक नयी पहचान के रूप मे स्थापित हुयी। छापाखाना, पाश्चात्य प्रभाव, पत्र-पत्रिका तथा समाचार पत्रो मे प्रारंभ मे इसने अपना स्थान बनाया और एक नयी परम्परा मे ढली। इस शताब्दी का चौथा दशक आधुनिक भारतीय राजनीतिक, सामाजिक चैतन्य मे एक विशेष और गतिशील लहर के रूप मे उठा। १९३०-३१ से भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन मे एक विशेष धार और अभिनव प्रवाह परिलक्षित होता है। आगे चल कर भारतीय समाज मे युवा वर्ग मे *'करो या मरो', तुम मुझे खून दो मै तुम्हें आजादी दूंगा, दिल्ली चलो, अंग्रेजो भारत छोड़ो* के स्वर मुखर हो उठे। यथार्थ के प्रति जीवन की कठोर सचाइयो के प्रति, किसानो, मजदूरो मे जागृति पैदा हुई। अनुभूति के स्थान पर यथार्थ, मनोविश्लेषण, मनोग्रंथियो, उलझनो से टकराने का दौर प्रारंभ हो गया था जिसकी अनिवार्य परिणति होनी ही थी।

हिन्दी कहानी का समय ऐतिहासिक रूप से उथल पुथल का समय है— बीसवी सदी के प्रारंभिक दो चरण भावुकता, कल्पना तथा तटस्थतावादिता से सम्बद्ध थे, पर १९१९-२३ मे स्वराज्य चेतना प्रमुख हो उठी साम्राज्यवाद का विरोध तथा राष्ट्रवाद की सीधी मच्ची-समझ ने जनमानस को नये उत्साह से सराबोर कर दिया। भारत के नेताओ ने केन्द्रिय विधान-परिषद् मे स्थान तो बनाया पर उनकी अपेक्षाएँ वहाँ प्रतिफलित हो नही पायी। १९२३ मे इंग्लैण्ड मे लेबर दल की सत्ता हो गयी पर वह लम्बे अरसे तक टिक नही पायी। भारत मे भी राजनीतिक निष्क्रियता और निराशा की दो प्रतिक्रियाएँ हुई। एक तो धर्म के नाम पर झूठी साम्प्रदायिकता उभरी और दूसरे सशस्त्र क्रान्ति के प्रति युवावर्ग का आकर्षण बढ गया।

भारतीय व्यवस्था का मूल चरित्र सामन्ती था। लोग कृषि पर ही ज्यादा निर्भर थे। अंग्रेजो ने आकर यहाँ के जो पारम्परिक उद्योग थे उन्हे नष्ट कर दिया, इस तरह समाज का जो स्वाभाविक विकास था अवरुद्ध हो गया। अंग्रेजों ने अपने हितों के अनुकूल परिवर्तित किया। सामन्तवाद को पूरी तरह से नष्ट नही किया, बल्कि अपने

फायदानुसार उनका रुख मोड़ दिया। इस प्रकार भारतीय समाज दोहरे शोषण का शिकार हुआ। *सामन्ती एवं औपनिवेशिक/ सामन्तीय रूढ़ियो एवं अन्धविश्वासो से छुटकारा पाने* के लिये यह जरूरी था कि कोई चेतना उभरे। जिसमे ब्रह्म समाज, आर्य समाज की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। अनेक सुधारात्मक आन्दोलनो के फलस्वरूप समाज मे नयी जागृति आयी। मध्ययुगीन विचारधारा और सास्कृतिक रूपो का खण्डन कर नयी विचारधाराओ की स्थापना ने व्यक्ति के सोचने-समझने का ढग बदला।

दूसरी तरफ यह समाज वैज्ञानिक प्रभावो से अछूता नही रहा। परीक्षण, तर्क, विश्लेषण की उग्रभावना के चलते श्रद्धा, आस्था की पकड ढीली पड़ी। इसी संदर्भ मे टिप्पणी करते हुए ***बर्टेंड रसेल*** ने लिखा है कि 'भारत की सास्कृतिक चेतना मे ***'विश्वास'*** *का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।* विज्ञान के प्रकाश मे परम्परागत रूढ़ियो, कुरीतियो अन्धविश्वासो का अन्धकार तिरोहित हो गया। वैज्ञानिक युग के पूर्व ईश्वर सर्वशक्तिमान समझा जाता था। ईश्वर को प्रसन्न रखना ही प्राकृतिक दुर्घटनाओ से बचने का एक मात्र *उपाय था। अत. ईश्वर को प्रसन्न रखने के लिये आवश्यक था कि मानव अपनी असमर्थता,* शक्तिहीनता तथा नम्रता व्यक्त करके ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखे।'

राजनीतिक परिदृश्य

१९२७ मे सोवियत सघ ने अपनी दसवी वर्षगांठ मनाई। भारत के मजदूरो और किसानो मे एक नयी स्फूर्ति उभरी। परिवर्तन की प्रबल लालसा ने औद्योगिक मजदूरो को साम्यवाद की नयी व्याख्या से जोड़ने का उपक्रम किया। गाधी और प्रगतिशील सोच के लोगो ने सम्प्रदायपरक प्रवृत्तियो को काटने, समता का व्यवहार करने की चर्चा को उठाया। इसी समय ***'साइमन कमीशन'*** भारत आया ३ फरवरी १९२८ को साइमन जब मुम्बई मे उतरा तो उसे जुलूस के गगनभेदी नारे सुनाई पड़े ***'साइमन वापस जाओ'*** इसी बीच राष्ट्रीय संघर्ष मे मजदूरो की शिरकत भी बढी। 'साइमन लौट जाओ' का प्रभाव उत्तर भारत मे व्यापक रहा और युवा शिक्षित वर्ग ने ***छात्र संघ*** की स्थापना करके नवयुवको को एक मत्र दिया जिससे उनमे राष्ट्रवादी, समाजवादी सोच विकसित हो सकी। १२ मार्च १९३० को गाधी ने साबरमती आश्रम से नमक सत्याग्रह के लिये दाण्डी मार्च का प्रारम्भ किया। ३० अप्रैल को अपने पत्र ***'यंग इण्डिया'*** मे गाधी ने महिलाओ को चर्खा काटने, घर से बाहर निकलने तथा आन्दोलना मे शरीक होने का आह्वान किया।

1. *In the four scientific world power is God . . judge by the analogy on monarches man decided that the thing most displeasing to the devoty is a lack of emility 'B' Rusell the impact of science society, 1952, pp 24-25*

१९३०-४० के बीच कर न चुकाने का वृहत्तर आन्दोलन पूरे देश मे उभर आया। इसी समय भारतीय किसान सभा का अस्तित्व मुखर हो उठा था। २३ मार्च १९२९ को भगत सिंह, राजगुरु सुखदेव को फाँसी दे दी गयी जिससे युवा मानस एकदम से बौखला गया था। १९३० व १९३१ मे पहले व दूसरे गोलमेज सम्मेलन से कोई उल्लेखनीय उपलब्धि नही हो पायी।

कांग्रेस के भीतर नयी वामपंथी प्रवृत्ति प्रबल हो गयी थी। प० नेहरू १९३६, १९३७ मे दो बार काग्रेस अध्यक्ष चुने गये। १९३८ के अध्यक्ष हुए सुभाषचन्द्र बोस। १९३९ मे गांधी के विरोध के बाद पुन अध्यक्ष पद जीत गये। काग्रेस मे समाजवादियो का सघर्ष आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश जी करते थे। दमन तीव्र हो गया। कम्युनिष्टो और मजदूर सघो पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। १९३९ मे पुन साम्प्रदायिक ताकतो को अंग्रेजो ने उभार दिया। मुस्लिम लीग ज्यादा मुखर हो गयी। १९३९ मे द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया। अंग्रेज शासको ने भारतीयो से युद्ध मे सहायक बनने की अपील की। ब्रितानी शासक ने 'स्टैफोर्ड क्रिप्स का एक नयी घोषणा के मसौदे के साथ भारत भेजा जिसमे प्रस्ताव था कि युद्ध के बाद भारत को उपनिवेश का दर्जा दे दिया जायेगा। इस घोषणा को सभी राजनैतिक दलो ने अस्वीकार कर दिया। पूरा देश विषाद और आक्रोश से भर उठा। चारो तरफ निराशा का वातावरण था। ९ अगस्त को भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। परिस्थिति सरकार के नियंत्रण मे बाहर था। यद्यपि विद्रोह दब गया पर अंग्रेजी सत्ता हिल गयी। विश्व मे सोवियत सघ एवं अमेरिका दो विश्व शक्तियाँ उभार पर आ गयी थीं। दोनो ने ही भारतीय स्वतत्रता का पक्ष लिया। ब्रितानी सैनिक व कर्मचारी युद्ध से थक गये थे। इंग्लैण्ड मे नये चुनाव हुए और लेबर दल सत्ता मे आया जिसमे भारतीय स्वतंत्रता की माग को समर्थन पहले भी दिया था। भारत की स्थिति बदल गयी थी। १९४६ मे नौ सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। भारतीय वायुसेना ने भी हड़ताल की, पुलिस व्यवस्था मे भी राष्ट्रवादी झुकाव का दौर प्रारंभ हो गया था। १९४६ मे अन्तरिम सरकार का गठन जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व मे हुआ। ब्रितानी प्रधानमत्री एटली ने जून, १९४८ तक भारत को स्वतंत्र करने की घोषणा की। सत्ता हस्तान्तरण की व्यवस्था के लिये लार्ड माउण्ट बेटन को भेजा गया। कांग्रेस और मुस्लिम लीग मे भयकर मतभेद पैदा हो गये थे। देश के बँटवारे के साथ १९४७ की १५ अगस्त को देश स्वतत्र हो गया। देश विभाजन मे भूमि का बड़ा भाग जो काफी उर्वर था पाकिस्तान में चला गया।

'गांधी जी की हत्या' १९४८ से देश की राजनीति मे मूल्यहीनता और आदर्शहीनता का दौर प्रारंभ हो गया। देश के नायक व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि को महत्व देने लगे। उनका नैतिक पतन हो गया था, फलत राजनैतिक परिवेश में अवसरवादिता, स्वार्थान्धता,

बेइमानी और भ्रष्टाचर का समावेश हो गया। *समाजवाद* और गरीबी उन्मूलन का नारा खोखला पड़ गया था। नेताओ के रूप मे नये सामन्त उत्पन्न हो गये। चारो ओर अव्यवस्था दायित्वहीनता, कार्य-अकुशलता और व्यर्थ की नारेबाजी ने गाधीजी के रामराज्य को स्वप्न बना दिया। इन समस्त परिस्थितियो ने देश को पर्याप्त प्रभावित किया। लोग दिग्भ्रमित और हतप्रभ हो गये। सकीर्ण मनोवृत्ति के चलते भाषावाद, प्रान्तीयता, क्षेत्रीयता साम्प्रदायिकता आदि को लेकर विवाद शुरु हो गये।

संस्कृति समाज और कहानी

उपर्युक्त राजनीतिक परिदृश्य के साथ भारत की सामाजिक स्थिति का भी सक्षिप्त जायजा यहाँ लेना जरूरी है जिससे साहित्य, कला, स्थापत्य तथा लोकजीवन और समाज मे होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनो के आलोक मे नयी कहानी की सामाजिक सोद्देश्यता को पहचाना जा सके तथा उसकी भाव-भगिमा तथा कथ्य-शिल्प एव भाषायी तेवरो मे जो परिवर्तन आये उनकी सम्यक् जॉच की जा सके। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात वर्तमान युग की जटिलताओ से नये भारत को मुखातिब होना पड़ा। सम्पूर्ण जीवन मे तेजी से परिवर्तन हो रहे थे। मशीनी सभ्यता और सस्कृति मे पल्लवित होता हुआ समाज मे पूर्व समाज इतर, अन्य और अतिरिक्त हो उठा था। प्रगति की चेतना ने भारतीय युवापीढ़ी को यथार्थवादी बनाया।

समाज की कुशल व्यवस्था सड़-गल गयी थी। इस जीर्ण-शीर्ण सामाजिक व्यवस्था का लाभ ईसाई मिशनरियो ने उटाने का प्रयास किया। राजा राममोहन राय को भारत का प्रथम समाज सुधारक कहा जाता है। जिन्होने सती प्रथा, बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, *बहु-विवाह, ठगी प्रथा के विरुद्ध जनमानस को जागृत करने का प्रयास किया। १८८६ मे वेदान्त कालेज की स्थापना करके बगाल की युवा पीढी को नयी यूरोपीय* शिक्षा पद्दति से जोड़ने का उपक्रम किया। आगे चलकर *'रामकृष्ण परमहंस'* और *'स्वामी विवेकानन्द'* ने भारतीय आध्यात्म मे नवजागरण के उल्लेखनीय प्रयास किये। ये अभिजात्य वर्ग के प्रतीक नही थे। अतएव इन लोगो ने साधना के महत्त्व को स्थापित करने का उपक्रम प्रारभ किया। वे पाण्डित्य के बजाय अनुभूति के पक्षपर बल देते रहे। आत्मसाक्षात्कार के द्वारा उन्होने धर्म के पाखण्ड को तोड़ने का सहज मार्ग सिखाया। वे हिन्दू धर्म की कट्टरता के स्थान पर उदारवादी सोच को महत्व देते रहे। रामकृष्ण के आध्यात्मिक जागरण को प्रचारित, प्रसारित करने का अनथक प्रयास स्वामी विवेकानन्द ने किया। वे सुशिशिक्षत युवा थे— उन्हे ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का अवसर मिला था। वे वाणी तथा लेखनी के सक्षम प्रयोक्ता थे। वेदान्त को वे धर्म सहिष्णु मानते रहे उनका कहना था वेदान्ती नैतिकता यही साराश है 'सबके प्रति साम्य'।[१] उनका वेदान्त वापिण्डत्य

१ *विवेकानन्द साहित्य, भाग-१०, पृ० ५।*

के चमत्कार से अलग मानवीय मदाशयता से उद्वेलित था। वे धार्मिक विचारो मे स्वतत्रता के पक्षधर थे वे नये भारत की कल्पना कर रहे थे।

साहित्यकार समाज का एक अत्यन्त सवेदनशील एवं जागरूक प्राणी होता है और वह सामाजिक जीवन मे हो रहे क्रियाकलापों एव उसकी गतिविधियो से पूरी तरह भिज्ञ होता है। उसकी सर्तक दृष्टि समाज पर होती है। जो उसके रचनाकर्म को बहुत गहराई तक प्रभावित करती है।

परिवर्तन प्रक्रिया का नियम है। भारतीय समाज के आधुनिक होने की प्रक्रिया स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही प्रारंभ हो गयी थी। पश्चिमी विचारधारा, वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, अन्तर्जातीय रहन-सहन, खान-पान आदि ने इस प्रक्रिया में गति प्रदान की है। तमाम वैज्ञानिक, भौतिक तथा वैचारिक प्रगति के यावजूद भारतीय सामाजिक जीवन स्वातत्र्योत्तर काल मे गरीबी बेरोजगारी, सामाजिक मूल्यहीनता, नैनिक मूल्यहीनता, अवसरवादिता, जड़ता का शिकार रहा है।

साहित्य का रचनाकार बदलती हुई परिस्थिति तथा जड़ होती गयी शासकीय सवेदना से घिर गया। समाज को वाणी देने की छटपटाहट मे साहित्य चेता ने पुराने प्रतिमानो को, मानदण्डो की अस्वीकार करने का प्रयास किया। प्रारंभ मे वह कुछ प्रगति, कुछ मनोविश्लेषण मे अपने को सात्वना देने में लगा भी पर जल्दी ही वह नये प्रयोगो, नये कथ्यो, नये मुहावरो को गढने मे सलग्न हो गया। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी क्षेत्रो मे जो विघटन और विद्रूप उसने देखा, समझा, झेला तथा भोगा उसे भोगे हुए यथार्थ के नाम पर उसने बेलाग, बेलौस, सपाटबयानी के स्तर पर उकेरना प्रारंभ किया। इस प्रकार हिन्दी कहानी बीसवी सदी के प्रथम चरण से प्रारंभ हुई थी। छठवे दशक तक आते-आते रूप, गुण, कर्म सभी मे परिवर्तित होकर नई हो गयी।

कहानी और नयी कहानी

कहानी निश्चय ही हिन्दी मे यूरोपीय साहित्य के आधार पर विकसित हिन्दी गद्य की एक विशेष विद्या है। यह एक नवीन प्रयास रहा है जो पाश्चात्य शिल्प विधान से प्रभावित रहा है। अत इसे पौराणिक, लौकिक, ऐतिहासिक कहकर सुदूर अतीत मे ले जाने से कुछ हासिल नही होगा। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका मे कहानी के लिये लिखा गया है। किसी कहानी में एक ही चरित्र, एक ही घटना, एक ही भावना अथवा भावनाओ की शृंखला एक ही स्थिति के कारण अग्रसर होती है, वह सक्षिप्त अत्यधिक सगठित तथा पूर्ण कथा रूप है।[1]

कहानी नाटकीय शैली की लघु सरचना होती है। एक बिन्दु को केन्द्र मे रखकर कथाकार उसे विस्तार देता है। एक सामान्य घटना, एक क्षण, एक सवेदना, एक अनुभव कहानी मे विस्तार पाकर सार्वभौम बनता है। इससे घटना अप्रत्याशित विस्तार पाती है।

१. अनुवाद-इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका वाल्यूम-२०, पृ० ५८०।

कहानी मे गहराई एवं सक्षिप्तता सहजात ही होती है। कथा मे एक दर्शन, एक लक्ष्य और एक उद्देश्य होता है। कहानी एक मनोभाव को उभार कर उसे सहज सवेद्य तथा सम्प्रेषणीय बनाती है। प्रेषण एवं प्रभाव दृष्टि से रचनाकार अपनी क्षणिक सोच संवेदना, कल्पना आदि को रूपाकार देता है।

हिन्दी की प्रारभिक प्राथमिक शैली कथात्मक रही है। उन्नसवी सदी के प्रारभ मे 'रानी केतकी की कहानी', 'प्रेम सागर', 'नासिकेतोपाख्यान' प्रकाश मे आये और उनमे मौलिकता, सम्प्रेषणीयता प्रभावान्वित बेहद कमजोर रही है। १९०० मे इन्दुमती-किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी प्रकाश में आयी पर समीक्षको की राय मे इस पर शेक्सपीयर की **टेम्पेस्ट** की साफ छाया दिखती है। १९०१ में माधवराव सप्रे की कहानी ***'टोकरी भर मिट्टी'*** प्रकाश मे आयी जिसे हिन्दी के कतिपय समीक्षको ने पहली समर्थ कहानी कहा। ***'छत्तीसगढ़ मित्र'*** पत्र मे प्रकाशित इस कहानी मे भी अनगढपन है। आगे चलकर 'दुलाई वाली' बग महिला की रचना १९०३ मे आयी। *प्रसाद* की कहानी *ग्राम* तथा वृन्दावन लाल वर्मा की 'राखी बन्द भाई' १९०९ मे प्रकाशित हुई। १९१५ मे प्रकाशित *'उसने कहा था'* गुलेरी जी की सर्वोत्कृष्ट कथा सरचना है। १९१६ मे प्रेमचन्द की 'पंच परमेश्वर' प्रकाशित हुई। *यहाँ से मौलिक कहानियो की विकासयात्रा प्रारभ होती है। 'ग्यारह वर्ष का समय', 'कानो मे कगना' कहानियाँ आयी। हिन्दी कहानी का विकास* ***प्रेमचन्द*** *तथा* ***प्रसाद*** *से ही प्रारभ हुआ है। डा लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है कि 'इन दो प्रसाद और प्रेमचन्द महान कथा-शिल्पियो से दो पृथक सस्था के निर्माण हुए जिसके अन्तर्गत* अनेकानेक प्रतिष्ठित विकासकालीन कहानीकारो ने अपनी बहुमूल्य कलाकृतियाँ दी।'[1]

प्रारभिक चरण की कहानी मे कल्पना, आदर्श, ऐतिहासिकता, सहजता के साथ-साथ समाज की सुधारवादी वृति कही-न-कही जरूर उभरती रही है। प्रेमचन्द आदर्श, यथार्थ, सामाजिक समस्या, सुधार, इतिहास, नैतिकता की चर्चा उभारते है। प्रासद करुणा, कल्पना, सौन्दर्य, भावुकता प्रेम और आनन्दपरकता के कथाशिल्पी थे। प्रसाद जी मूलत प्रेम के गायक है। उन्होने प्रेम मे अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न करके परस्पर विरोधी दो अनुभूतियो और अभिवृत्तियों का द्वन्द्व प्रकाशित किया। वह द्वन्द्व कही प्रेम व घृणा, कही परिवार की मर्यादा और राष्ट्रीय मूल्य कही वैयक्तिक प्रेम तथा राष्ट्रीय प्रेम के मध्य है। प्रेम और घृणा का द्वन्द्व आकाशदीप कहानी मे अभिव्यक्त हुआ है। चम्पा-बुद्धगुप्त से स्पष्ट शब्दो मे कहती है। 'मैं तुम्हे घृणा करती हूँ, अधेर है जलदस्यु। तुम्हे प्यार करती हूँ।[2]

प्रसाद परम्परा के कृतिकार है आचार्य चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्णदास, विनोद शकर श्रीवास्तव १९३७ तक की कहानियो पर प्रेमचन्द एव प्रसाद का ही वर्चस्व रहा है। प्रसाद की ***'ग्राम'*** यद्यपि उनकी पहली कहानी है और उसमे कहानी कला का चरमोत्कर्ष

१ *हिन्दी कहानी के शिल्प का विकास-लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ६०।*

२ *आकाशदीप कहानी, प्रसाद, पृ० १८।*

तो नही फिर भी पूँजीवादी व्यवस्था के विकास का प्रतिफलन एव मध्यवर्गीय चरित्रो की महत्वाकाक्षा का वर्णन हमे मिल जाता है।

प्रेमचन्द-युग हिन्दी कथा-साहित्यक स्वर्णयुग माना जाता है। वस्तुत प्रेमचन्द ने ही हिन्दी कहानी को वह आधारशिला प्रदान की जिस पर आगे चलकर भव्य भवन निर्मित हुआ। उन्होंने हिन्दी कहानी को पूर्णतया मध्यवर्ग मे जाडा। उसकी यथार्थ घटनाओ को ही उन्होंने अपनी कहानी मे स्थान दिया और साधारण मनोरजन के स्तर से उठाकर कहानी को जीवन की मध्यवर्गीय जीवनगाथा का अमर गायक बनाया। 'तत्कालीन समाज, राजनीति, देशप्रेम और सुधार आन्दोलनो से प्रेरणा ग्रहण कर यशस्वी कथाकार श्री प्रेमचन्द और अन्य कहानीकारो ने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानिया की रचना की। सामाजिक स्थितियो मे परिवर्तन के साथ जीवन म भी परिवर्तन आता है और इस परिवर्तित जीवन का प्रभाव साहित्य के वदलाव मे सहायक होता है।''[1]

यद्यपि प्रेमचन्द के पूर्व गुलेरी जी ने ***उसने कहा था*** के माध्यम से यथार्थ घटना, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व और जीवन के सघर्ष को हिन्दी कहानी का पर्याय बना चुके थे, पर उनमे वह जीवन दृष्टि नही थी, उस जीवन मूल्य के प्रति आस्था नही थी, जिस पर प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी को ला खड़ा किया। प्रेमचन्द की कहानियो मे भारतीय समाज के विविध चित्र उसकी दुरवस्था, पुरुष और नारी का यथार्थ स्थिति, उनकी मध्यवर्गीय आकाक्षाएँ उनके शोषण की नियति आदि कथातत्व पहली बार कहानी मे देखने को मिलती है। तभी तो प्रेमचन्द भारतीय समाज के अमर गायक बने।

प्रेमचन्द की कहानियो मे जीवन का विशाल चित्रपट सगुम्फित किया गया है सारा युगबोध एव भाव अपने यथार्थ परिवेश मे व्यापक आयामो के साथ सवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त हुआ है क्योंकि प्रेमचन्द जी की यही प्रतिवद्धता थी, जिसका निर्वाह उन्होंने सामाजिक सन्दर्भो मे किया, उससे पलायित नही हुए। उन्होने अपनी कहानियो के लिये मूल रूप मे आदर्शवादी विषयो को ही चुना था, जिनके पीछे उनकी सुधारवादी प्रवृत्ति ही क्रियाशील थी। इनकी कहानियाँ निम्न है आगापीछा, नया विवाह, कुसुम विद्रोही, सुभागी आदि।

प्रेमचन्द जी नारी की स्वतत्रता और समानता के हिमायती थे। वह नारी शिक्षा के पक्षधर थे तथा राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी क्षेत्रो मे स्त्री स्वतंत्रता के पक्षधर थे। हिन्दी कथा-साहित्य मे प्रेमचन्द ने पहली बार भारतीय आध्यात्मिक परम्परा से हटकर समाज मे अर्थ की महत्ता को शीर्ष स्थान प्रदान किया। ***'लाटरी'*** कहानी इसका सशक्त उदाहरण है।

प्रेमचन्द युगीन कहानीकारो मे प्रसाद रायकृष्णदास, विनोदशंकर व्यास, चण्डी प्रसाद कौशिक, ज्वाला दत्त शर्मा, वृन्दावन लाल वर्मा, राजा राधिका रमण सिंह, चतुरसेन शास्त्री प्रमुख रूप से आते हैं।

---

१ *प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड- डॉ० रागेय राघव, पृ० ११।*

विनोद शंकर व्यास और चण्डी प्रसाद हृदयेश की कहानियों में भी यथार्थता के स्थान पर भावुकता की प्रधानता है। विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' की प्रसिद्ध कहानियाँ *ताई, रक्षाबंधन, माता का हृदय* है। इसमें समाज सुधार की भावना प्रखर है। *ताई* चरित्र प्रधान कहानी होते हुए भी उसमें जीवन की एक प्रमुख लालसा मातृत्व की कथा प्रस्तुत की गयी है।

ज्वालादत्त शर्मा की कहानियाँ भी सुधारवादी और आदर्शवादी दृष्टिकोण की परिचायक है, राजा राधिकारमण सिंह भी घटना प्रधान कहानीकार ही अधिक है। इनकी पहचान सामाजिक कहानियों के कारण है जो अति यथार्थवादी है। इसमें चतुरसेन शास्त्री भी है।

प्रेमचन्द की कहानियों में मध्यवर्गीय समाज की खोखली नैतिक मान्यताओं को देखा जा सकता है। नारी आज के स्वतन्त्र होने हुए भी परतन्त्र ही है, उसे संरक्षण चाहिये। 'निर्वासन' तथा 'बहिष्कार' कहानियों में मुंशी प्रेमचन्द ने समाज की निस्सार, जर्जर नैतिक मान्यताओं के दुष्परिणाम को दिखाया है। *निर्वासन* कहानी का पुरुष नारी को तब तक केवल पवित्र मानता है जबतक कि वह घर के चौखट से बाहर नहीं निकलती। इस सन्दर्भ में 'निर्वासन' के परशुराम का वक्तव्य दृष्टव्य है—

'तुम जानती हो कि मुझे समाज का भय नहीं है। छूट विचार को मैंने पहले ही तिलाञ्जलि दे दी, देवी-देवताओं को पहले ही विदा कर चुका, पर जिस स्त्री पर दूसरी निगाहें पड़ चुकीं जो एक सप्ताह तक न जाने कहाँ और किस दशा में रही, उसे अंगीकार करना मेरे लिये असम्भव है। अगर यह अन्याय है तो ईश्वर की ओर से है, मेरा दोष नहीं।''

उपेन्द्रनाथ अश्क भी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी प्रवृत्ति के कहानीकार है। डा लक्ष्मीनारायण लाल शब्दों के शब्दों में— 'जिस तरह प्रेमचन्द की कला व्यक्ति, समाज के यथार्थ जीवन और मनोविज्ञान का सामूहिक प्रतिनिधित्व करती थी, ठीक वही पक्षतन अश्क की कहानियों का है।[2]

प्रेमचन्द युग में ही आगे चलकर भगवती प्रसाद वाजपेयी, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने यथार्थवादी कहानियों की रचना की। डा ब्रह्मदत्त शर्मा के शब्दों में यथार्थवादी परम्परा के कहानीकारों की रचनाओं में समाज की प्रत्यक्ष रचनाओं का चित्रण मिलता है। जैसे विधवा-विवाह अछूतोद्धार, शोषित वर्ग का असन्तोष आदि।

प्रेमचन्द एवं प्रसाद की कल्पना का प्रभाव अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। बाद की कहानियों में प्रेमचन्द का यथार्थवादी स्वरूप मुखर होता है। डा देवराज के शब्दों

१ प्रेमचन्द-मानसरोवर, भाग-३, पृ० ५१।

२. लक्ष्मीनारायण लाल-हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० २७७।

मे— 'इनके अंतिम काल की कहानियो मे मनोवैज्ञानिकता का आग्रह इतना बढ़ गया है कि घटनाओ का निर्माण, कथा की सजावट आदर्शवादिता का मोह तथा राजनैतिक या सामाजिक परिस्थितियो का चित्रण आदि की धूमधाम रहते हुए भी चरित्र-चित्रण तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का स्वर मुखरित होने लगा है।'

यो तो प्रेमचन्द की कहानियो मे भी मनोविश्लेषण बड़े स्थूल रूप से मिलता है। इसी समय अज्ञेय जी अपनी मनोविश्लेषणकारी कहानियो को लेकर प्रविष्ट हुए। उनकी ***विपथगाथा*** की सभी कहानियाँ विभिन्न व्यक्तित्व का उदघाटन करता है। अकलंक, शत्रु, रोज, आदि कहानियो मे मनोविश्लेषण बड़ा ही स्वाभाविक एव मार्मिक है।

पाश्चात्य आन्दोलनो के प्रभाव स्वरूप फ्रायड के मनोविश्लेषण को जैनेन्द्र, अज्ञेय जोशी, यशपाल, अश्क, नागर, रांगेय राघव आदि ने मानवमन की आन्तरिक परतों को उभारा, उकेरा। सामाजिक परिवर्तन से रचना मे क्या और क्यो अन्तर आता है, वह जैनेन्द्र की ***एकलव्य*** कहानी मे देखा जा सकता है। अज्ञेय की ***गैंग्रीन शत्रु***, मेजर चौधरी की ***वापसी*** मे भी अवचेतन मन की प्रतिक्रिया ही उभरती है। वे वर्ग पात्रों के स्थान पर व्यक्ति की उनकी आशा तथा निराशा, बुनावट एवं प्रतिक्रिया पर अपने को केन्द्रित करते है। जोशी असामान्य मनोग्रथियो के सहारे कहानी लिखते है।

पागल की सफाई तथा ***विद्रोही*** मे वे इसी पैंग को उठाते है ***'आहुति'*** मे फ्रायड के उदात्तीकरण की बात रखने का प्रयास करते है। ***डा. देवराज की*** प्रतिक्रिया है कि— 'मनोविज्ञान-विषय के निर्वाचन की दृष्टि से जोशी जी आधुनिक कथा-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ लेखक है।'[२] मार्क्सवादी विचारधारा का सर्वाधिक प्रभाव हमे ***यशपाल*** की कहानियो पर परिलक्षित होता है। जबकि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जीवन के कटु यथार्थ को अपनी कहानी का वर्ण्य बनाते है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार ***उग्र जी*** हिन्दी के प्रथम और प्रमुख राजनीतिक कहानी लेखक है।[३]

मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य अपनी भावनाओ को तृप्त न कर सकने की स्थिति मे उसका आरोपण दूसरे व्यक्ति पर करता है या फिर दूसरे दोनों के साथ उसका तादात्मीकरण करता है। ***डा. सुरेश सिन्हा*** ने कहा है— 'इस क्षणवादी युग मे कोई भी सुखी नही है सभी भीतर से टूटे हुए है, बिखरे हुए है। सभी की आत्माएँ खण्डित है। सभी के विश्वास जर्जरित है। मनुष्य की वासनाएँ है पाप है, घृणा

१. आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान-डॉ० देवराज उपाध्याय, पृ० १०६।
२ वही, पृ० २५८।
३ आधुनिक साहित्य-नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० २४१।

है। कोई मनुष्य इससे वंचित नही और इसे अस्वीकारना सत्यविमुख होना है।[१]

मनोविश्लेषणवादी जीवन दृष्टि ने वैयक्तिक प्रेम, मुक्त और सम्बन्ध, नारी-स्वातंत्र्य आदि मूल्यो को जन्म दिया। बाह्य घटनाओ और कार्यों की अपेक्षा मानसिक सघर्षों, अन्तर्द्वन्द्वो, आत्मविश्लेषण एव सुषप्त वृत्तियो के विवेचन को अधिक महत्व प्रदान किया। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर लिखी नयी कहानियो मे समाज और उसकी समस्या से अधिक व्यक्ति को महत्त्व प्रदान किया गया। उसके अह और अस्तित्व की व्याख्या नवीन एव सुपरीक्षित प्रयोगो से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर की गयी। अत व्यक्तिवादी भावना को प्रश्रय मिला। जैनेन्द्र, अज्ञेय, जोशी, अश्क ने ऐसी ही कहानियाँ लिखी।

नयी कहानी : सामाजिक परिवेश के संदर्भ में

स्वाधीनता हमारे देश की बहुत बड़ी ऐतिहासिक घटना है। जिस स्वतत्रता आन्दोलन ने साम्राज्यवाद के घुटने टिका दिये वह देश की सम्पूर्ण चेतना का केन्द्र-बिन्दु कहा जा सकता है। देश का सम्पूर्ण गौरव और विगत मर्यादाएँ इस बिन्दु से जुड़ी हुई है और यही से शुरू होती है। आजादी के उमगो मे खोई हुई नये भारत की यात्रा आजादी ने हमे नये ढग से सोचने और समझने की शक्ति दी। त्याग और बलिदान से प्राप्त होने वाली आजादी ने जनमानस मे उल्लास, उमग और प्रसन्नता की लहर पैदा कर दी। आजादी प्राप्त करने के साथ ही देश ने व्यक्ति और समाज के सर्वतोमुखी कल्याण के लिये कुछ संकल्प लिये जिससे उसकी मानवतावादी दृष्टि का परिचय मिलता है। किस प्रकार आजादी के अस्तित्व की रक्षा की जा सकती है और किस प्रकार देश की समाज व्यवस्था और अर्थतत्र को समृद्ध किया जा सकता है तथा एक वर्गहीन शोषणमुक्त समाजवादी समाज व्यवस्था स्थापित की जा सकती है। ये मुख्य प्रश्न थे और उसके लिये देश के समाजवाद विश्वशान्ति सैनिक गुटो से अलग रहने की नीति अपनायी।[२]

आजादी के बाद का जो जनमानस ने स्वप्न देखा था वो स्वप्न ही बना रहे। क्योकि जिस कांग्रेस को सत्ता की बागडोर पकड़ा दी गयी वह व्यापक जनता के हितो का पोषक न होकर उन चन्द पूँजीपतियो के हाथ का खिलौना बनकर रह गयी। अत भारतीय जनता जिसके हृदय मे स्वतत्रता का एक नया अरमान जगा था। नयी, आशाएँ-आकाक्षाएँ उत्पन्न हुई थी एक ही झटके मे टूट गयी। सारे सपने धूमिल हो गये। उच्चवर्ग और उच्च हो गया, मध्य वर्ग पिसता रहा। चारो तरफ जातिवाद, कालाबाजारी,

१ हिन्दी कहानी उद्‌भव तथा विकास-डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० ४६५।

२ आलोचना-जून १९६५, सम्पादकीय।

स्वार्थपरता का साम्राज्य फैल गया। मध्यवर्गीय समाज का मोहभंग हुआ, वह निराशा, घुटन, कुंठा का शिकार हुआ। 'क्योंकि मन के उलझे हुए अनेक सत्य हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के निर्माण मे कितना हिस्सा लेते है। इसे आज के कलाकारो ने पहचाना।'[1]

स्वाधीनता से सबधित जीवन मूल्य सत्ता के अर्न्तविरोधी आचरण के कारण निरन्तर अपना अर्थ खोता गया। 'फिर भी भविष्य की आशा और सम्भावना उसमे साम भरती रही इस तरह तात्कालिक टूटन और भावी निर्मित सम्भावना के बीच फैला हुआ जीवन मूल्य एक विचित्र *ट्रैजिक* तनाव का एहसास पैदा करता है।'[2]

डॉ० बच्चन ने बताया– 'इसमे अकने वाला जीवन की 'ट्रेजडी' नही बल्कि ट्रैजिक जीवन है। यह समाज का बोध नही बल्कि व्यक्ति का बोध है, ये ट्रैजिक विजन और ट्रैजिक तनाव की कहानियाँ है।'[3]

सवेदनशील व्यक्ति समाज से टूटकर बेगाना और अजनबी हो गया आज वह गहरी वेदना और अकेलेपन के एहसास मे भर कर जी रहा था। अधिक अच्छा होगा यदि यह कहा जाय कि वह जी कर मर रहा था। गदी राजनीति के कारण शहरो पर पश्चिम के प्रभाव और गांव पर शहर के विकृत प्रभाव तथा निरन्तर बढती हुई आर्थिक विषमता के कारण हमारे सामाजिक सम्बन्धो मे अभूतपूर्व विघटन दिखायी पड़ा। देश और समाज का यह यथार्थ हमारे कलाकारो का अनुभव बनता गया जिसकी अभिव्यक्ति तत्कालीन कहानियो मे हुई।

नयी कहानी स्वातत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का सर्वाधिक जीवन्त और महत्वपूर्ण कथा आन्दोलन है। इस कथा आन्दोलन ने कहानी को साहित्य की एक गंभीर महत्वपूर्ण तथा केन्द्रीय विधा के रूप मे स्थापित किया। कहानी को इस गौरवपूर्ण विधा के रूप मे प्रतिष्ठित करने का श्रेय प्रखर समीक्षक ***डॉ० नामवर सिंह*** और सम्पादक ***भैरव प्रसाद गुप्त*** को जाता है।

नयी कविता के समानान्तर ही नयी कहानी की सोच भी उभरी। स्वतत्र भारत के नव अध्येता वर्ग तथा रचनाकार वर्ग को पुराना फार्म, पैंटर्न उबाऊ एवं बासी लगने लगा। नये समाज मे विज्ञान, उद्योग-व्यापार तथा नयी टेक्नालॉजी का जो प्रभाव पड़ा उसने आदमी की आस्था को खण्डो मे देखने के लिये, टूटने और जुड़ने के क्रम से देखने के लिये प्रेरित किया। परम्परागत आदर्शो के स्थान पर नये मूल्यो, मान्यताओ की चर्चा उभरने लगी। मानव-मन-को परत दर परत उघारने, उकेरने का नया क्रम

१. आज का हिन्दी साहित्य सवेदना और दृष्टि-रामदरस मिश्र, पृ० १५४।

२ आज का हिन्दी सवेदना और दृष्टि-रामदरस मिश्र, पृ० १५५।

३ बच्चन सिह के लेख 'कहाँ छपा नाम दो सगनी का' से उद्धृत, पृ० २२।

चला। कथ्य और भाषा ही नही शिल्प भी बदलने लगा। आदमी के स्वतंत्र इकाई को कवियों, कथाकारो ने महत्व देने का प्रयास किया। १९५४ मे सरस्वती प्रेस से *कहानी* पत्रिका के नववर्षांक मे 'आज की कहानी शीर्षक से *डा. नामवर सिंह* का लम्बा निबन्ध प्रकाशित हुआ। जिसने नयी कविता के समानान्तर *नयी कहानी* पर बहस की शुरूआत की। आजादी के बाद जो मोहभग हुआ था उसे रूपायित करने की जो छटपटाहट कहानी मे उभर रही थी उस पर चर्चा का नया दौर प्रारभ हो गया। बदली हुई सोच के विद्रोही तेवर ने नयी कहानी को एक आन्दोलन के स्तर पर उभारने का उपक्रम कर दिया।'

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के सामाजिक जीवन मे एक परिवर्तन दिखा। पुरानी मान्यताएँ ध्वस्त हो रही थी। प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष, व्यक्ति चेतना ने आदमी से आदमी को काट कर रखने की जो चाल-चली वह अभिव्यक्ति के स्तर पर भी उभरी। मानव-समाज मे उत्थान के सपने धराशायी हो गये थे। विभाजन के नाम पर मार-काट, भ्रष्टाचार, लूट-खसोट, चारित्रिक पतन, स्वार्थ लिप्सा का नगा नाच खेला जा रहा था। जाति-बिरादरी, भाई-भतीजावाद का वीभत्स स्वरूप उभरने लगा था। देश की सीमाये आरक्षित हो गयी थी। पुलिस का ताण्डव जारी था और नेतृत्व वर्ग अध पतन, शराब-शबाब, दैहिक सुख की कमियागिरी मे आकठ सराबोर होने लगा था। राष्ट्रवादी आन्दोलन, सुधारवादी आन्दोलन, अस्पृश्यता-निवारण, लघु उद्योगो की स्थापना, बुनियादी शिक्षा, किसान की खेती, जल ससाधन, आवागमन, राह-बाट सभी मे हेरा-फेरी करने और अधिक से अधिक सम्पत्ति लूट लेने की अभीप्सा का शिकार नेता भी था, अभिनेता भी, शासक भी था, प्रशासक भी था। परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन की गरिमा, जनता की आस्था तथा उसका सरल विश्वास खण्डित हो गया। आदर्शवादी भारत की अकाल मृत्यु १९५७ तक आते आते दस ही वर्षो मे हो गयी।

भारतीय समाज १९५० के बाद एक जबरदस्त अर्न्तविरोध से होकर गुजर रहा था। शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा था। गाव-गाव मे पाठशालाएँ खुली, नवीन कृषि यत्रो, उर्वरको के लिये ब्लाक विकास क्षेत्र की स्थापनाए की गयी। मध्यवर्गीय जनता का जीवन स्तर बढ़ा। नवशिक्षित ने प्रारभ मे गाव से शहर की राह ली फिर शहर से नगर की नगर से महानगर होते हुए डाक्टर, इजीनियर जैसे टेक्नीकल लोग विदेशो मे पयान करने लगे। प्रतिभा का यह पलायन देश के लिये अहित कर था। धीरे-धीरे शिक्षित होकर और ग्रामीण बेरोजगारी बढ़ने लगी जिसे सरकारी नौकरियो से सम्हाल पाना बेहद कठिन कार्य था। सरकार के पास बढती आबादी, मध्यवर्गीय शिक्षित बेरोजगारो के लिये कोई दीर्घकालीन योजना नही रह गयी, परिणामत उपद्रव, उद्वेग बढ़े। पूँजीवाद, विश्वव्यापार सगठन के रूप मे नया चोला पहन कर आया जिसने मानव मात्र को उपभोक्ता

समझा। सरकार ने भी उसे मात्र संसाधन समझने की नासमझी की। इन परिस्थितियों ने मध्य वर्ग की चेतना को पूर्णत कुंठित कर दिया।

यूरोपीय सभ्यता और संस्कृति के प्रभावों से भारतीयता की परम्परा को बचाये रखने के लिये तथा प्राचीन रूढ़ियों, झूठी मान्यताओं, बोझिल परम्पराओं म परिवर्तन एव सुधार की कामना से जो सुधारवादी आन्दोलन उपजे थे। ९५ तक आते-आते उनका प्रभामण्डल, क्षीण हो गया था। भारतीय समाज, प्रकृति से कटे पर्यावरण को औद्योगिक धूल, धुँए ने विषाक्त कर दिया।

वैज्ञानिक खोजो, आविष्कारो ने एक नयी औद्योगिक पूँजीवादी सभ्यता को विकसित किया, जिसमे मशीनीकरण से औद्योगिक नगरो का विकास सम्भव हो पाया। वैज्ञानिक मानववाद की चर्चा भी यही उठी परन्तु व्यक्ति की स्वतंत्र आत्मा पर प्रतिबन्ध लगने लगा। विज्ञान ने भौतिक पदार्थों के तत्वों और व्यवहारो का परीक्षण किया। उनकी गणना किया, उन्हे व्यवस्थित भी किया पर वह जीवन के महान् रागात्मक तत्वो, तथ्यो की तह तक पहुँचने मे असमर्थ था। विज्ञान का मानववाद प्राणी मे आकर्षण प्रतीत अवश्य हुआ पर उसने मनुष्य की महत्ता को नष्ट कर दिया। मनुष्य की स्वतंत्रता नष्ट हो गयी।

विज्ञान ने सत्य को घेरने, परीक्षित करने की जो पद्धति खोजी उससे सौन्दर्य और शिवतत्व भी प्रभावित होता ही गया। सौन्दर्य की चाह मानव की नैसर्गिक प्रवृत्ति है। उसे वह आदर मिश्रित भय, आश्चर्य, श्रद्धा तथा आनन्द के रूप मे देखता है. सत्य की ही भाँति सौन्दर्य भी आध्यात्मिक जगत् से सम्बद्ध है। उद्योगवादी सभ्यता ने कुरूपता को, औद्योगिक कचरे को, पर्यावरण की अशुद्धता को जन्म दिया। पाश्चात्य विचारको ने माना कि नैतिकता वह है जो उपयोगी है।

पुरानी पीढ़ी के कथाकारो की भावुकता, कल्पना, आदर्श ने आदमी को सच्चाई से, यथार्थ से अलग-अलग कर दिया था। कहानी और जीवन के यथार्थ मे आकाश, पाताल की दूसरी उभरने लगी थी। ***नयी कहानी*** के रचनाकारो ने जीते-जागते वास्तविक मनुष्य की रोजमर्रा की जिन्दगी के सरोकारो की खोटी, निखालिस तस्वीर रचने का साहस किया। वे नयी जमीन, नयी ताजगी, नयी भाषा, नये तेवर, नये मुहावरो को लोक मानस से जोड़कर रचने का उपक्रम कर रहे थे। वे एक नयी रचनाशीलता का आन्दोलन रच रहे थे। जिसमे बेबाकी थी, सच्चाई थी, अनुभव ईमानदारी थी, खुरदुरे पर सहज भाषा थी, लोक से, जन-जीवन से गहरे स्तर की संपृक्तता थी। पात्र से मानसिक जुड़ाव था। घटना के प्रति तटस्थ दृष्टि थी, वातावरण की सही समझ थी प्रभावान्वित की सहतर पहल थी और साथ ही था नया-दिखने, नया रचने, नया कहने का साहस भी था। नया साहित्य, नयी कहानी मे काल्पनिक यौन सम्बन्धो, विवाह-विच्छेदो, प्रणय-सम्बन्धो की विसंगतियो की चर्चा भी उठायी गयी जबकि वह न तो रचनाकार का भोगा

हुआ यथार्थ था न अनुभव का उसका अपना ससार ही।

वास्तव मे कोई भी साहित्यिक आन्दोलन सर्वथा स्वतत्र निरपेक्ष और स्वत स्फुरित नही होता *'नयी कहानी'* के स्वरूप का अन्दाज प्रेमचन्द की कहानी *'कफन'* अज्ञेय की *'रोज'* तथा रांगेय राघव की *'गदल'* जैसी कहानियो मे ही उभारने लगा था। ये कहानियाँ अपनी परम्परा का अतिक्रमण करते हुए आगे की सम्भावनाओ का सकेत करने वाली रचनाएँ थी। मोहभग की मुद्रा, सचाई के स्वीकार निर्मम यथार्थ की पकड़ी, व्यक्ति की कुठा, अकेलेपन और सत्रास के इजहार का प्रारभिक पता इन कहानियो ने सहज ही दे दिया। परिवेश की प्रमाणिकता की सही तलाश नयी कहानी मे जीते-जागते व्यक्ति को उसकी समग्रता के साथ प्रकट किया। नयी कहानी ने 'व्यक्ति को उसकी सामाजिक पीठिका और परिवेश मे रखकर देखा था और सामाजिक यथार्थ के बीच एक व्यक्ति को प्रतिष्ठित करने की कोशिश की थी।'[१]

समय के साथ-साथ केन्द्रीय स्थितियाँ तथा परिदृश्य भी बदलते रहते है। लेखक अपने समय से उद्भूत एक सामाजिक प्राणी है। अत बदलते परिदृश्य और स्थितियो का पूरा-पूरा प्रभाव उस पर पड़ता है। इस प्रभाव की अभिव्यक्ति ही साहित्य के रूप मे हमारे सामने आती है। इसलिए प्रत्येक कहानी अपने समय मे नयी होती है। इस नये का कोई स्थिर रूप या प्रतिमान नही होता कि इसे परिभाषित किया जा सके। *मनहर चौहान* ने इस नये शब्द को पारे की भाँति अस्थिर माना है।[२]

नयी कहानी प्रेमचन्द की परम्परा का फैलाव है तथा यह स्वातत्र्योत्तर भारतीय जीवन के यथार्थ की चेतना है। और यह चेतना कहानीकारो के अनुभव से जुडी होने के कारण अनेक रूप-रग धारण करती है। अर्थात् नयी कहानी की चेतना परिवेश से जुड़े हुए व्यक्ति मन की चेतना है। 'कथा साहित्य मे इस बदलते हुए आग्रह को नजरअन्दाज नही किया जा सकता है और यह बदला हुआ आग्रह ही वह बिन्दु जहाँ से कहानी मोड लेती है और यह मोड़ ही नयी कहानी के नाम से अभिहित किया गया।'

नयी कहानी के नामकरण से पूर्व *नयी कविता* का नाम प्रकाश मे आ गया था। 'नयी कहानी परम्परा और शीर्षक' निबन्ध मे दुष्यन्त कुमार ने सर्वप्रथम ने नयी कहानी नामकरण की ओर सकेत किया है। मारकण्डेय अमरकान्त, राजेन्द्र यादव, विद्या सागर नौटियाल, कमल जोशी, धर्मवीर भारती, आदि की कहानियो मे उन्हे नया धन और मौलिकता के चिह्न दिखाई पड़ते है जो पूर्ववर्ती कहानीकारो— जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, अश्क, यशपाल आदि की कहानियो मे नही है। इन्हे नयी कहानी नाम

१. कहानी स्वरूप और सवेदना राजेन्द्र यादव।

२ नयी कहानी दशा-दिशा सभावना-सम्पादक श्री सुरेन्द्र के नई कहानी धुधली स्थापना मनहर चौधरी के लेख से उद्धृत पृ० १०८।

का प्रथम प्रयोक्ता स्वीकार किया जाता है। लेकिन इन्होंने नामकरण की सार्थकता के संबंध में किसी प्रकार का तर्कसंगत विवेचन नही किया है।

नयी कहानी के नामकरण की आवश्यकता का प्रश्न सबसे पहले *डॉ० नामवर सिंह* ने १९५६ मे *आज की कहानी* लेख मे उठाया और इसका समर्थन किया। नयी कविता के सदर्भ में नयी कहानी के नामकरण का प्रश्न उठाते हुए उन्होंने कहा— 'मेरे मन मे यह सवाल उठता है कि *नयी कविता* की तरह नयी कहानी नाम की भी कोई चीज है क्या? नयी कहानी नाम से कोई आन्दोलन अभी तक नही चला है। इससे क्या समझा जाय? यह कि कहानी मे कुछ नयापन आया ही नही, अथवा कहानी में जो नयापन आया है, वह कविता की अपेक्षा बहुत कम है।

उन्हे नयी कहानी मे कथा का ह्रास, शिल्प के नये प्रयोग साभिप्राय घटना प्रसग तथा मजी हुई भाषा मे नवीनता दिखाई देती है। *डॉ० नामवर सिंह* नयी कविता मे साकेतिकता, सूक्ष्म वातावरण, सगीतात्मकता, कथा-विन्यास वास्तव के विविध आयाम, नवीन दृष्टि आदि को आधार मानकर उसका मूल्याकन करते रहे है। नयी कहानी के सबंध मे उनके विचार समय-समय पर विकसित होते रहे है। उन्हे यह नामकरण सायास नही लगता। वे कहते है— 'अनायास ही *'नयी कहानी'* शब्द चल पड़ा है और सुविधानुसार इसका प्रयोग कहानीकारो ने भी किया है और आलोचको ने भी।'[१]

मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव तथा कमलेश्वर ने नयी कहानी को नयी कविता के प्रभाव से मुक्त मानते हुए उसे एक स्वतत्र और स्थापित आन्दोलन के रूप मे स्वीकार करते है। ध्यातव्य है कि नयी कविता का नामकरण नयी कहानी से पहले हो चुका था इसलिये नयी कहानी का नामकरण नयी कविता के आधार पर हुआ हो तो अस्वाभाविक नही है। इससे नयी कहानी का महत्व घट नही जाता। नयी कहानी की मुख्य विशेषता उसकी नवीनता है जिसे कहानीकार, समीक्षक दोनो स्वीकार करते है। नयी कहानी की यह शक्ति और सार्थकता है कि धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, श्रीकान्त वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे प्रतिष्ठित कवि भी नयी कहानी लेखन मे प्रवृत्त हुए।

डॉ० नामवर सिंह ने १९५० के आस-पास की कहानियो के बारे मे विचार करते हुए इसे *'नयी कहानी'* की सज्ञा दी। राजेन्द्र यादव, रमेश बक्षी, मोहन राकेश ने भी इसे नई कहानी कहा था तथा अपने लेखो, समीक्षाओ, सम्पादकीयो में इसकी विधिवत चर्चा उठायी। रमेश बक्षी ने उसमे नये प्रयोगो की विशिष्ट क्षमता, राजेन्द्र यादव ने अभिव्यक्ति की नयी भाषा के तेवर, मोहन राकेश ने इसे स्थूल की ओर बढने वाली सचेतन यात्रा के रूप मे रखने की कोशिश की। डॉ० बच्चन सिंह ने इसे 'परम्परा का नया मोड़' कहा। उन्होंने लिखा है— छठे दशक मे यानी ५० से ६० तक की

१ *कहानी नयी कहानी डॉ० नामवर सिंह, पृ० ५४।*

कहानियो मे दो विरोधी स्वर सुनाई पड़ते है— मूल्यवादी और मूल्यो के परिवेश मे चीख, त्रास या बदले हुए रिश्ते के स्वर है।'[१] वे आगे लिखते हैं '६० के आसपास कुछ ऐसे कहानीकार दिखलाई पड़ते है जो नया बोध, आधुनिकता बोध को लेकर कहानी के क्षेत्र मे *प्रविष्ट हुए। इस दौर की कहानियो को* ***नयी कहानी*** *नाम देने का श्रेय* नामवर सिंह को है।'[२] डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'नई कहानी' के बारे मे लिखा है कि कहानी के क्षेत्र मे नयी कहानी आन्दोलन नयी कविता के सादृश्य पर १९५६ के आसपास आयोजित होता है। मुख्य रूप से तीन मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर एक आलोचक नामवर सिंह और कहानी पत्रिकाओं के एक सम्पादक भैरव प्रसाद गुप्त के रचनात्मक तथा वैचारिक सहयोग से कहानी के क्षेत्र मे नयी जागृति आती है।[३]

नयी कहानी की प्रथम कहानी कौन है तथा किस कहानी को नयी कहानी की प्रथम कहानी कहा जाय यह प्रश्न भी काफी विवादित है।

डॉ० नामवर सिंह ने सभवत पहली बार नयी कहानी की आवाज उठायी। इन्होने *कहानी की सफलता और सार्थकता से लेकर* ***परिन्दे*** *को नयी कहानी की* पहली कृति घोषित कर रचनाधर्मी कहानी की सश्लिष्टता ***तीसरी कसम*** का निरूपण करते हुए अच्छी और 'नयी कहानी' मे तफीज समझते और समझाते हुए इसके बारे मे यह भी कहते हुए कि ये बाते न समझने की न समझाने की है, अत ये कहानी का *तान* और शुरूआत पर तोड़ते है जिसे बदलकर नयी कहानी नया सन्दर्भ का नाम दिया गया।[४]

नयी कहानी ***परिन्दे*** को तथा नये कहानीकार का श्रेय राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, *तथा मोहन राकेश को जाता है।*

नयी कहानी: नगर एवं ग्राम बोध

नयी कहानी के आन्दोलन के साथ ही नगर एव ग्राम बोध का विवाद शुरू हुआ। ऐसे नये कहानीकार जो महानगरो मे रह रहे थे, उन्होने महानगरीय जीवन की ऊब, उदासी, यांत्रिकता और भीड़ को तथा इस जटिल जीवन के बीच बनते-परिवर्तित होते चरित्रो की मानसकिता को कथ्य का आधार बनाया। अपनी कहानी को इन्होने आधुनिकता बोध से सम्बद्ध माना तथा भोगे हुए यथार्थ के अभिव्यक्ति की घोषणा की। इस दौर के कथाकारो मे मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्वदा आदि ऐसे कथाकार है जिनकी कहानियो को नगरबोध से सम्बद्ध कहानियाँ कहा जा सकता

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ० बच्चन सिंह, पृ० ३६१।

२ आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ० बच्चन सिंह, पृ० ३६१।

२ हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास-डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ० २९५।

३. कहानी नयी कहानी-नामवर सिंह, पृ० १।

है। जब नयी कहानी नगरबोध का पर्याय बनने लगी तो ग्राम बोध से सम्बद्ध रचनाकारो ने, विशेषकर शिव प्रसाद सिंह ने यह प्रश्न उठाया। इस विषय मे मधुरेश का यह कथन— *'नयी कहानी के बिल्कुल प्रारंभिक दौर में ही दो समानान्तर पीढ़ियाँ जो शहरी* और ग्रामीण परिवेश की कहानियो को लेकर सैन्य सचालन और आपसी द्वन्द्व मे व्यस्त दिखायी देती है। वह एक महत्वपूर्ण आन्दोलन को बहुत नाजुक दौर मे अपने निजी स्वार्थों के लिये झटका देने का बड़ा करुण उदाहरण है।

शिव प्रसाद सिंह तथा मारकण्डेय ने विशेष प्रकार से यह सवाल उठाया है कि क्या ग्रामीण जीवन मे परिवर्तन नही हुए जहाँ देश का बहुत बड़ा भाग गाँवो मे रहता है, वहाँ केवल नगरबोध की कहानियो को ही कहानी मानना जो कहानियाँ कुंठा, संत्राम, विकृति और पतन की कहानियाँ है। क्या ये कहानियाँ भारतीय मानस का प्रतिबिम्ब बन सकती है।

इस विवाद को देखकर जो सर्वमान्य निष्कर्ष निकाले गये वे यही थे कि इस दौर की कहानियाँ चाहे नगरबोध से संबधित हो जो जीवन के नये यथार्थ को प्रतिबिम्बित कर रही है। ये मिश्रित रूप मे नयी कहानी के अन्दर विश्लेषित होगी। मार्कण्डेय, रेणु, शिव प्रसाद सिंह आदि ने मुख्य रूप मे ग्रामजीवन को ही अपनी कहानी का आधार बनाया। इसके अतिरिक्त धर्मवीर भारती, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, मन्नू भण्डारी आदि कथाकारो की कई अच्छी कहानियाँ है जिनके चरित्र कस्बा अथवा ग्रामांचल से लिये गये है।

कहानियों का प्रभाव– हिन्दी के नये कहानीकारो की एक लम्बी फेहरिस्त होती गयी है। नये कहानीकारो का मन, वचन और कर्म उन सामाजिक रीति-रिवाजों, आदतो तथा संस्कारो से बनता है जिसमे वह जन्म लेता है जाति, संयुक्त परिवार, विवाह, संस्कार तथा परिवेश से उपजा है यह कथाकार ये लोक-जीवन, कस्बाई संस्कृति, नगरीय कुंठा तथा विदेशी परिवेश के प्रभाव के साथ रचना क्षेत्र मे आये है। हिन्दी का अधिकांश लेखक सवर्ण है या द्विज है। राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी भी मध्यवर्ग की रचनाकार है। वह अपने वर्ण तथा योनि मे आज भी कैद है अन्यथा लेखक, लेखिका, महिला कथाकार जैसी सज्ञाये प्रचलित नही हो पाती। नये कथाकारो की भगिमा जरूर ही बदली पर उसका मूलचित्तवंश, जाति, परिवार, संस्कार रूढ़ि से सर्वथा मुक्त नही है।

इस कालावधि मे धर्मवीर भारती की कहानी ***गुलकी, बन्नो*** कमलेश्वर का ***राजा निरबंसिया*** तथा निर्मल वर्मा की ***परिन्दे*** प्रकाश मे आयी। जिन्होंने कहानी के पुराने फार्म, पुरानी भाषा को तोड़ कर नयी पहल की। ***परिन्दे*** प्रभाव की दृष्टि एक गंभीर रचना मानी गयी। वह उपरी सतह को बेधती है तथा सूनेपन, अकेलेपन की अनुभूति

को उभारती है। उषा प्रियम्वदा की कहानी 'वापसी' ने जड़ता को तोडकर एक वृद्ध सेवानिवृत्त व्यक्ति की हताशा को, उसकी नियति को उसकी विरक्ति को उभारने का उपक्रम किया। उसमे न भाव था, न सवेग, न प्रणय की चर्चा थी, न आत्मोत्सर्ग का भाव-बोध। एक घटनाहीन जीवन की रोजमर्रा की जिन्दगी की चर्चा मे मानव-मन की दरकी हुई परछाई उभरती है। उसमे। *परिन्दे* की लतिका अतीत के बोझ से बराबर दबी रहती है, प्रेमी की मृत्यु ने उसे तोड़ दिया है। वह एक फीकेमन, एक घुटन, एक ऊब से उबरना नही चाहती पर एक जिजीविषा उसमे आद्यन्त बनी रहती है। इस प्रकार लतिका जिस स्थिति मे रहती है उसे उन्ही स्थितियो के साथ रूपायित किया गया है। जिस अकेलेपन भय और मुक्ति की इच्छा को वह महसूस करती है वह पूरे परिवेश के रूप मे कहानी मे प्रकट हुई है।

वापसी कहानी के पिता गजाधर बाबू जिन्दगी भर की नौकरी के बाद अपने ही घर मे बेगाने हो जाते हैं। अपने जीवन मे निरन्तर सघर्ष कर जो आशाएँ आकांक्षाएँ उन्होने उम्र भर से संजोकर रखी थी वे अपने ही परिवार के व्यवहार से पूरी तरह बिखर जाती है।

जिन्दगी और गुलाब के फूल (उषा प्रियवदा) मे भाई-बहन के सम्बन्धो और परिवार मे उनकी बदली हुई स्थिति का कारण बहन की नौकरी है। परिवार मे भाई-बहन की बदली हुई यह स्थिति समस्त भारतीय परिवार मे नारी की स्थिति को लेकर आते हुए परिवर्तन को भी उजागर करती है। *चीफ की दावत, भीष्म साहनी* मे माँ-बेटे के सम्बन्धो मे एक जड़ता व्याप्त है। *तलवार पंच हजारी* मे राजेन्द्र यादव, बेटा बाप के प्रति एक और स्तर पर विरोध करता है। 'पिता' रविन्द्र कालिया, 'सम्बन्ध' राजेन्द्र यादव, 'पिता दर पिता' रमेश बक्षी, आदि कहानियो मे पिता की बेचारगी और सम्बन्धो की व्यर्थता का यथार्थ अकन है। शायद इसलिये राजेन्द्र यादव ने नयी कहानी को 'सम्बन्धो' के टूटने की कहानियाँ कहा था।

यथार्थ के प्रति नयी दृष्टि ही नयी कहानी की आधार भूमि है। यथार्थ को व्यक्तिवादी दृष्टि से देखने का परिणाम यह हुआ है कि बदली हुई परिस्थितियो मे हमारे पारिवारिक सम्बन्ध, रिश्ते-नाते, रहन-सहन जिस रूप मे बदल रहे थे उन सबका सूक्ष्म अकन नयी कहानी मे हुआ है। बदले हुए सामाजिक आर्थिक परिवेश मे परम्पराएँ पारिवारिक सम्बन्धो की उष्मा धीरे-धीरे समाप्त होकर इन सम्बन्धो को ठडा बना रही थी। सम्बन्धो का यह बदलाव परिवार मे माँ-बाप, सन्तान, भाई-भाई, पति-पत्नी आदि विविध स्तरो पर स्पष्ट देखा जा सकता है।

सैद्धान्तिक सबधो का टूटना स्त्री-पुरुष सम्बन्धो के चित्रण मे अधिक दिखाई देता

है। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध चाहे पति-पत्नी का हो या प्रेमी-प्रेमिका का उसका जो स्वरूप नयी कहानी मे उभरा है वह पूर्ववर्ती कहानियों मे उभरे स्त्री-पुरुष के सम्बन्धो मे नितान्त भिन्न है। स्त्री और पुरुष दोनों स्वतत्र व्यक्तित्व चाहते है। नयी कहानी का कहानीकार स्त्री-पुरुष के सम्बन्धो का पूरी ईमानदारी के साथ उकेरता है। चित्रण की ईमानदारी के कारण ही स्त्री महज ही मानवीय होकर उभरी है। वह कोई स्वर्ग लोक मे उतरी हुई देवी नही जो दया, ममता, करुणा आदि गुणो की भण्डार, हो महना जिसकी नियति है। वह भी हाड़-माम की मानव है। राजा निरबसिया 'कमलेश्वर' की नारी 'चन्दा किस प्रकार आर्थिक मजबूरियो मे टूटती हुई पति से दूर 'बच्चन सिंह' कम्पाउडर के साथ मे चली जाती है। उसे कहानीकार ईमानदारी से स्वीकार करता है। 'एक और जिन्दगी' (मोहन राकेश) की टूटी हुई महिला पति से अलग रहती है इसका यथार्थ चित्रण कहानीकार करता है। यही सच है। (मन्नू भण्डारी), मछलियाँ, (उषा प्रियवदा), टूटना (राजेन्द्र यादव), तलाश (कमलेश्वर) आदि मे स्त्री-पुरुष सम्बन्धो को बड़ी ईमानदारी के साथ चित्रण किया गया है। स्त्री-पुरुष के बीच यौनशुचिता की धारणा बदल गयी है। जिससे कामसम्बन्धों के प्रति एक पाप-बोध और निषेध की भावना समाप्त हो गयी है। पुरुष कहानीकारो की अपेक्षा नारी कहानीकारो ने स्त्री-पुरुष के संबध को अधिक स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है। यही कारण है कि मछलियाँ (उषा प्रियंवदा) तथा यही सच है (मन्नू भण्डारी) कहानियो मे नारी मन की स्त्री-पुरुष सम्बन्धो की एक खुली विवृत्ति और आत्मीयता है, जो महज ही अपने ईमानदार चित्रण मे बांधती है। राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' मोहन राकेश की 'मिसपाल', निर्मल वर्मा की 'लवर्स', नरेश मेहता की 'चाँदनी' आदि कहानियों मे स्त्री-पुरुष के काम-सम्बन्धो को प्रकृत रूप मे स्वीकार किया गया है।

इन कहानियो के माध्यम से विवाह और प्रेम संबंधी एक नयी दृष्टि विकसित होती दिखायी देती है। जो मर्यादाओ और नैतिक ' मानदण्डो को तोड़ कर रख देती है। बदली हुई दृष्टि कितनी स्वस्थ है या अस्वस्थ यह अलग प्रश्न है। लेकिन भारतीय परिवेश मे जो नया समाज रूप ले रहा है उसका परिचय इन कहानियो मे मिल जाता है।

नयी कहानी पात्रो की नयी परिस्थिति के यथार्थ को उजागर करने वाली कहानी बनी। कहानी अब कला मूल्यो के लिये नही वरन जीवन मूल्यो के लिये लिखी जाने लगी। अन्त मे मार्कण्डेय ने लिखा— 'नयी कहानी से हमारा मतलब उन कहानियो से जो सच्चे अर्थों में कलात्मक निर्माण है, जो जीवन के लिये उपयोगी और महत्वपूर्ण होने के साथ ही उसके नये पहलू पर आधारित है।

नयी कहानी ने अपने समय, अपने काल, अपनी परिस्थिति मे सीधा-सम्बन्ध

जोड़ने का भरसक प्रयास किया, स्वाधीन भारत की हलचलों, समस्याओं, रूढ़ियों, विघटनों, समाज की ऊहा-पोह, प्रेम-विवाह, विसंगति में जो नये सवाल उठे उभरे, व्यक्ति के जीवन की जो कठिनाई थी, उसकी संवेदना को महानुभूतिपरक विस्तार दिया नयी कहानी ने। राजनीतिक स्तर पर जनता के सामने एक आशावाद था जो धीरे-धीरे समाप्त होने लगा था। नयी कहानी में परिवेश का बदला हुआ रुख दिखाई पड़ता है। सन् ६० के बाद की कहानियों में परिवेश का यह बदला रूप अधिक स्पष्ट हो गया है। डॉ० नामवर सिंह के अनुसार— 'सन् ६० के आसपास जिस निराशा, भ्रष्टाचार मूल्यहीनता और दिशाहीनता ने देश को भ्रष्ट किया है वही उसके अनुभव की पूँजी है। उसने वह सब नहीं भोगा जो छठवें दशक के लेखकों ने भोगा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नयी कहानी में समय के साक्षात्कार की उत्कट बेचैनी एवं अकुलाहट आरंभ से ही रही है और इस कारण नयी कहानी की विकसित चेतना में रचनात्मक शक्ति की प्रौढ़ता एवं गंभीरता आ गयी है। स्वातन्त्र्योत्तर सदर्भों के विभिन्न पक्षों को नयी कहानी के परिप्रेक्ष्य में देखें तो प्रतीत होगा कि नयी कहानी अपने समय को मापती हुई तथा सन्दर्भों का व्याख्यायित करती हुई चलती है। परिवेश के आन्तरिक स्पर्श की स्पष्टता एवं सार्थकता व्यजना की प्रक्रिया से गुजरती हुई नयी कहानी युग बोध को मूर्त रूप देती है। अमरकान्त की कहानी *डिप्टी कलक्टरी* में पीड़ा भरी प्रतिक्षा को सामयिक परिवेश के जीवन्त के रूप में रूपायित किया गया है। आजादी के पश्चात मध्यवर्ग में जिन महत्वकाक्षाओं और अन्तर्विरोधों का जन्म हुआ, उसका अर्थपूर्ण चित्रण इस कहानी में है। वह मानव स्वभाव को तह-दर-तह उकेरने वाला रचनाशिल्प है। अस्तित्ववाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, बिम्बवाद, प्रतीकवाद का गद्यात्मक सश्लेषण इन नयी कहानियों में मुखर हुआ है। नयी कहानी में आगे चलकर *'अकहानी'* की चर्चा भी उभरी जिसका मूल स्वर था, स्वीकृत मूल्यों का निषेध।

नयी कहानी की वैचारिकता पर विदेशों से आयातित विचार-दर्शनों, अस्तित्ववाद आधुनिकतावाद, मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद आदि का भी प्रभाव पड़ा है। निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, श्रीकान्त वर्मा आदि की कहानियों में इसका व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। निर्मल वर्मा की 'लन्दन की एक रात' में परिवेशगत आधुनिकता है। जिसका फलक अन्तर्राष्ट्रीय है। 'मिस पाल' (मोहन राकेश), 'परिन्दे' (निर्मल वर्मा), 'एक समर्पित महिला' (नरेश मेहता) आदि कहानियों में अस्तित्ववादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है, जिसमें अकेलापन, विसंगति बोध, मुक्तिबोध, कुंठा आदि भाव उभरकर अभिव्यक्त हुआ है। भैरव प्रसाद गुप्त, यशपाल अमृतराय आदि पर मार्क्सवाद का प्रभाव है। वस्तुत नयी कहानी अपने परिवेश के प्रति अत्यन्त जागरूक दृष्टि लेकर आयी

थी। रघुवीर सहाय ने ***सेब, बेल*** तथा ***लड़के*** आदि अत्यन्त लघुरूपीय कहानियाँ लिखी है। इस तरह से वे एक नयी परम्परा का सूत्रपात करते हैं। साधारण-सी घटना भी अर्थपूर्ण हो सकती है, इस प्रकार अर्थवत्ता तथा प्रभावान्विति नयी कहानी की एक अलग विशिष्टता मानी जा सकती है। ***टच*** और ***इफेक्टस*** देना, पैदा करना नयी कहानी को अलग पहचान देता है। नयी कहानी रूढ़ि तथा नुस्खेबाजी से अलग एक सहज, सार्थक पहल है जो सोचने को विवश करती है। प्रसिद्ध बंगला समीक्षक ***श्री बुद्धदेव बसु*** ने कहानी को वक्तव्य निर्भर और प्लाट निर्भर दो स्थूल भागों मे बांटा है। उनका यह विभाजन सामान्यत यांत्रिक विभाजन है। कहानी को सम्पूर्णता मे ही समझा जा सकता है उसे खण्ड-खण्ड तोड़कर देखने पर शिल्प की सावधानता तो देखी जा सकती है, पर प्लाट तथा वक्तव्य के विरुद्ध कोई सर्वमान्य निर्धारक रेखा खीच पाना आसान नही है।

नयी हिन्दी कहानी तथा उसके प्रमुख कहानीकार

नयी कहानी का धरातल

स्वतत्रता के पूर्व जो नये राष्ट्र, नये मनुष्य के सम्बन्ध मे एक आदर्शवादी सोच उभरी थी, स्वतत्रता प्राप्ति के बाद उस सोच और ललक मे भारी परिवर्तन दिखायी देने लगा था। सारी कल्पना, सारा संयोजन और सम्पूर्ण काल्पनिक आकांक्षाएँ खण्डित होने लगी। मध्यवर्ग ने जो आशा, जो विश्वास और जो आकाक्षा संजो रखी थी वह बिखर गयी। नये मूल्यों, मान्यताओ और जीवन के बारे मे जो कुछ अभिलाषाएँ आदमी ने उस ऐतिहासिक सघर्ष के दौरान सयोजी थी उसकी परिणति विघटन, अनास्था और मूल्यहीनता के रूप मे नवभारत के नव विहान की बेला मे ही दिखायी देने लगी। देश के बँटवारे का भयकर त्रासद परिणाम आम आदमी की चेतना को झकझोर कर बेचैन कर रहा था। सारा परिवेश विषाद और खिन्नता से बोझिल हो उठा। मोहभग तथा घोर निराशा की इस बेला ने मध्यमवर्गीय चिन्तको को नये सिरे से सोचने, समझने तथा कुछ नया सिरजने के लिये तत्पर किया। यह नयी सोच उनके अनुभव की, पीड़ा, दर्द एव छटपटाहट की सीधी-सीधी, बेलाग, बेलौस, तस्वीर थी, जो उन्हे प्रत्यक्ष समाज से मिली थी, जिसके वे भोक्ता एवं प्रयोक्ता दोनो थे।

नया समाज द्वन्द्व ग्रस्त, द्विधामानसिकता, विरक्ति एव विलाप के दश झेल रहा था। वह व्यग्र तथा विषाद से ग्रस्त था। इस काल खण्ड मे वस्तुओ, परिवेश और परिणाम को देखने-समझने का नजरिया बदलने लगा था। समाज और कृतिकार दोनो मे चिन्तन तथा चिन्तन का नया ज्वार उभरा। नया रचनाकार कर्म के सबध मे चिन्तित, द्विधाग्रस्त और शंकालु होता गया। वह कर्म, अकर्म का लेखा-जोखा करने लगा। नये साहित्यकार की आस्था विचलित होने लगी, आशा का उन्माद शिथिल हो गया। प्रशासकीय नियत्रण ने परोक्ष सत्तात्मक स्वरूप ग्रहण कर लिया। पूरे समाज मे अतीत का मोहक वातावरण वर्तमान के अभावात्मक परिवेश मे विच्छिन्न हो उठा। यत्र-युग का वैज्ञानिक संस्कार हमे बौद्धिक चेतना देने मे असमर्थ और पगु रहा, मात्र यात्रिकता के पाश मे पूरा समाज आबद्ध होकर लाचार बनता गया।

वर्तमान की आशका, अनिश्चित और यात्रिकता के कारण भविष्य की आशा समाज

को आस्थावान बनाने में विफल रह गयी। समाज के लिए स्वतंत्रता, नव्यता का उन्मेष न होकर विगत का विस्तार मात्र सिद्ध हुयी। द्विधाग्रस्त भारतीय की सामाजिक आत्मा का अभिषेक निष्ठा के मगल घट से न हो सका। पूरे समाज की चेतना सहमी हुई वैयक्तिकता कुंठा, हताशा, एकाकीपन सत्रास पीड़ा मे तिलमिला उठी। भौतिक जीवन मे समाज ने पश्चिम का अन्धुकरण करना प्रारम कर दिया। कांग्रेस न देश की सीमा को उलझा दिया, भाषावार प्रान्तो का विभाजन करके एक नयी समस्या को उभार दिया, देश की भाषा को राष्ट्रभाषा पद पर सिद्धान्तत मानकर भी अंग्रेजी के व्यावहारिक वर्चस्व को स्वीकार लिया। अतएव राजनीतिक स्वतंत्रता, मानसिक मुक्ति की प्रतीक बनने में असमर्थ रह गयी।

समाज का मध्यवर्ग चिन्ता कातर हो उठा। सत्रास, कुंठा, मूल्यहीनता का नया मनुष्य नये तौर तरीको से सोचने के लिये धीरे-धीरे मज्बूर हो गया। अभाव की पीड़ा ने सयुक्त परिवारो को तोड़ दिया। सुधारवादी आन्दोलनो ने बाह्याचार, आडम्बर तथा सस्कार के पूरे विधान को ही प्रश्नो से घेर दिया। आदमी विज्ञान-दर्शन, परम्परा और नव्यता के द्वन्द्व से सत्रस्त हो उठा। आदर्श से यथार्थ की प्रवृत्ति पहले ही उभर गयी थी। पूरी दुनियाँ मे होने वाले भौतिक, मशीनी तथा बाह्य परिवर्तनो ने भारतीय समाज के मध्यवर्ग की मानसिकता को बदलने का उपक्रम किया। इन्ही अपरिहार्य परिस्थितियो मे छायावादी, प्रयोगवादी, आदर्शवादी, यथार्थवादी मनोविश्लेषणात्मकता की छानबीन के बीच से नयी कविता, नयी कहानी के सवादी स्वर उभरने लगे जो गोष्ठियो, चर्चा-परिचर्चाओं से होते हुए पत्र-पत्रिकाओं मे आये और फिर वक्तव्यो तथा स्थापनाओ के रूप मे स्थापित होने लगे।

नयी कहानी के स्वरूप को समझने के लिये नये समाज को, नये व्यक्ति को जानना-समझना जरूरी है। नव स्वतंत्रता ने ग्रामीण युवको को महत्वाकांक्षा मे भर दिया, वे रोजी-रोटी की तलाश मे गाँवो मे शहरो की ओर प्रयाण करने लगे। बाईस्कोप, बोलता सिनेमा, नाटक, नौटंकी का शौक, शहरी जीवन की चकाचौंध ने भी किसानो, कामगारो, मजदूरो को आकृष्ट किया। कलकत्ता मुम्बई, सूरत, नागपुर, कानपुर जैसे व्यापारिक, व्यावसायिक शहरो मे नयी मिलो, नये रोजगार के नये अवसर उभरने लगे थे। हिन्दी-प्रदेशो के लोगो मे कमाने घर बनाने का शौक उभरा और युवा पीढ़ी शहरो की ओर पलायन करने लगी। शहर मे इतनी बड़ी आबादी को सहेजने-समेटने की क्षमता थी नही अतएव झुग्गी, झोपड़ियो का एक नया, गदा और बेतरतीब शहर, शहर के भीतर से ही उगने और उभरने लगा। नयी कहानी का रचनाकार समाज को खुली आँखो देख रहा था और उसमे होने वाले परिवर्तनो को जाँच तथा परख रहा था। समाज के बदलते हुए स्वरूपो एवं सबधो का अत्यन्त प्रामाणिक निरूपण नयी कहानी मे हो पाया

है। नये कहानीकारो ने जीवन की जटिलता एव सबधो की कटु अनुभूति करते हुए नयी कहानी को नयी भाव-भूमि, नयी भाषा तथा नयीशैली देने मे जुट गया।

सामाजिक यथार्थ के विविधपक्ष नयी कहानी मे उभग्ने लगे। नवीन भावबोध एव कलात्मक रचनाएँ इस कहानी को अपनी पूर्ववर्ती कहानियो से भिन्न एव इतर पृष्ठभूमि पर खड़ा कर दिया। नयी कहानी परिवेश तथा भोगे हुए क्षणो को शब्द-सदर्भ देने लगी। **डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव** ने हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया पर अपना विचार रखते हुए लिखा है— 'इसके कथानक मे रूढ़ि का परित्याग है। इसके कथा सन्दर्भ असम्बद्ध तथा अनिश्चित से है। इसके चरित्र-चित्रण मे जटिलता का साक्षात्कार है, चरित्र कहानी के भाव-बोध का वाहक यत्र नही है। उसमे सवेदना का आधुनिक धरालत है। आधुनिकता नयी कहानी का प्रक्रिया भी है और उसका जीवन मूल्य भी।

नयी कहानी पर विदेशी प्रभाव, अमूर्तता, अश्लीलता, आश्चर्य बोध, वैयक्तिकता, स्वाधीनता के नाम पर कुठा, अयातित सत्रास, अजनबीपन, विघटन, नीरसता, शुष्कता, खण्डित व्यक्ति-चित्रण आदि आरोप लगाये गये हैं पर इन आरोपो के लिये जो आधार, जो दृष्टान्त लिये गये है वे पर्याप्त नही है। समाज मे व्यक्ति की घुटन, परिवार की टूटन और सस्कारो की समाप्ति की जो स्थिति बनती जा रही थी उसने प्रेम, विवाह, तलाक, हत्या, विच्छेद, इतर सम्बन्ध, दहेज हत्या, बाल-मजदूरी, शोषण को नये आयाम दिये। किसानी टूट रही थी, विभाजन, जनसख्या के दबाव से धरती खण्डित हुई, जोत बटी और उपज को बढाने के लिये नये कृषि यत्रो, उर्वरको, चकबन्दी, हकबन्दी, ग्राम-समाज, चरागाह राह, बाट की पैमाइश, नया बन्दोबस्त उभरा, जिसमे स्वार्थ की टकराहट बढ़ी, गाव के अलावा, गाव की बैठक, मजलिस, बिरहा, चौपाल, सब बिखरने लगे। स्वार्थ, आपाधापी, मामले-मुकदमे, गलाकाट प्रतिस्पर्धाएं, हत्या, लूट, खसोट, खूटा-भरवना, सहन, बगीचे पर वर्चस्व की लड़ाई उभरकर सतह पर आयी। छोटे कस्बो मे व्यापार-वाणिज्य का प्रसार हुआ। सामान आये। सरकारी अमला आया। नये बाट, माप के यत्र, औजार आये। ब्लाक बने, प्रौढ़-शिक्षा, सतत शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य के केन्द्र बने पर इनके साथ ही आयी स्वार्थी अलकारो की फौज, लूट-खसोट घूसखोरी के नये तौर-तरीके, मिलावट की नयी तकनीक। आवागमन के साधन बढ़े, रेल, मोटर, ट्रक, टैक्सी आयी और आया एक नया वर्ग ड्राईवर, कन्डक्टर, खलासी, मिस्री, मजदूर, ठीकेदार, जमादार, रिक्सेवाला, ठेलेवाला, चौकीदार जिसने अपने को अलग स्वतंत्र तथा समाज के विधि निषेधो से अपने को मुक्त माना। समाज मे गाजा, भांग, अफीम, चरस, पान, सिगरेट, ताड़ी, शराब, विदेशी मदिरा का जोर बढने लगा। खान-पान मे भी आदमी स्वतंत्र हो गया। मास, मदिरा, मत्स्य का चलन बढा। समाज का सम्पूर्ण ढाँचा ही प्रभावित हो गया जिसकी परिणति साहित्य मे होनी ही थी। नयी

कहानी को एक प्रकार मे हिन्दी कहानी के चौथे दौर का आन्दोलन कह मकते है। इस चौथे और पाँचवे दौर ४७-५०, तक की अवधि के बीच अनेक महत्वपूर्ण रचनाकारो का जन्म हुआ। जिसमे गजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, अमरकान्त, मारकण्डेय, शिव प्रसाद सिंह, उषा प्रियंवदा, मनु भण्डारी का नाम उल्लेखनीय है।

नयी कहानी के रचनाकारो ने स्वतंत्र भारत के बदलते हुए परिवेश के बदलाव मे सम्मिलित व्यक्तियो, परिवारो एवं संस्थाओ के चरित्र को भीतर-बाहर से व्यक्त करने वाली कहानियाँ लिखी है। इनका दौर संक्रमणकालीन भारत का दौर था जिसमे प्रतिगामी एवं प्रगतिशील मूल्यो की द्वन्द्वात्मकता का स्वरूप बहुत जटिल था। प्रत्येक वस्तु का अभिप्राय केवल उसके भीतर उतर कर नही देखा जा सकता था। सम्बन्धो, अर्न्तसम्बन्धो का नया गणित और नये व्याकरण बन रहे थे। नगरो-महानगरो के जीवन मे उभरते पूँजीवादी प्रभाव, मशीनो, लालफीताशाही और बदलते राजनीतिक दाँव-पेंच आदि के कारण परिवर्तन आ रहा था। तो गांवो मे भी यह प्रभाव अधिक विकट रूप मे आ रहा था। भावो के जीवन मे रूढियो, परम्पराओ एवं जाति विशेष, मे प्रचलित विश्वासो की महत्वपूर्ण स्थिति माना जाती है। मानवीय सम्बन्धो को लेकर एक विशेष प्रकार की संवेदनशीलता गांवो मे दूर तक बनी रही किन्तु नये भारत के नये और किसी सीमा तक अपरिचित रूप के प्रभाव के कारण गाँव भी अछूते नही रहे। फलस्वरूप वहाँ अन्तर्विरोधो, असंगतियो, असहमतियो ने एक अनूठा रूप धारण किया।

यह अवश्य है कि नयी कहानी ने प्रामाणिक गाथा लिखने के तर्क से स्वयं को व्यक्तिगत सचाइयो, अर्न्तद्वन्द्वो और मध्यवर्गीय जीवन की त्रासदियो को लिखने के प्रति अधिक प्रतिबद्ध साबित किया है तथा समय का चरित्र रूपायित करने वाले पात्रो की कथा लिखने के प्रति भी उनकी निष्ठा रही है। इसके साथ ही ग्रामबोध के कथाकारो ने ग्रामीण जीवन की विडम्बनाओ, संघर्षो को पूरी वस्तुपरकता मे व्यक्त करने का सर्जनात्मक प्रयास किया है। इनके प्रयासो से ही नयी कहानी की दुनिया बड़ी और विविध होती दिखायी देती है। आधुनिक पाश्चात्य झुकाव वाली संस्कृति, अवसरवादियो की इच्छा से प्रेरित, राजनीति, आर्थिक दबाव आदि तत्वो के प्रभाव से समाज के ये क्रमशः आते परिवर्तनो को इन लेखको ने पूरी गहराई से देखा-परखा है और अभिव्यक्त किया है।

नयी कहानी का नामकरण

स्वाधीनता के बाद हमारा साहित्य नये संदर्भ मे आ पड़ा। समय के साथ-साथ केन्द्रीय स्थितियाँ और परिदृश्य भी बदलते रहते है। चूँकि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। अतः बदलते परिदृश्य और स्थितियो का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस प्रभाव

की अभिव्यक्ति ही साहित्य के रूप मे हमारे सामने आती है। हर कहानी अपने समय के वातावरण मे नयी होती है। इसका कोई स्थिर रूप या प्रतिमान नही होता है कि जिसे परिभाषित किया जा सके।

हिन्दी कहानी की नयी पीढ़ी पुरानी कथा-रूढ़ियो से सर्वथा मुक्त होकर वास्तविक व यथार्थ जीवन से पुन जुड़ने के लिए आकुल थी। नयी कहानी प्रेमचन्द की परम्परा का फैलाव है— यह कहानी जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, अश्क के बाद लिखी गयी।

नयी कहानी और पिछली कहानी के बीच कुछ सम्बन्ध सूत्र होने के बावजूद नयी कहानी का सफर अपने आप मे महत्वपूर्ण है। नयी कहानी की चेतना परिप्रेक्ष्य से जुड़ी होने के कारण अनेक रूप-रंग धारण करती है, नयी कहानी की चेतना परिवेश से जुड़े हुए व्यक्ति मन की चेतना है। यद्यपि प्रेमचन्द ने अपने सामाजिक परिवेश को बहुत विविधता से उभारा था किन्तु उनकी कहानियाँ उस परिवेश के खुलेपन का जितना अहसास जताती है, उतना उसके घनत्व और जटिलता का नही। नयी कहानी सामूहिक रूप से अनुभूति के स्तर पर बदले हुए सामाजिक जीवन के पहचान की कहानी है। कुछ लोगो ने कहानियो को *'नयी कहानी'* इसलिये कहा कि इन कहानियो मे दृश्यबन्ध बदले हुए है।

कमलेश्वर के अनुसार– *'प्रारम्भ मे ग्राम कथाओ को ही नयी कहानी कहा गया,* जबकि ग्रामीण जीवन की स्थितियो पर लिखी गयी कहानियो मे भी वही फार्मूलाबद्धता थी जो पिछली कहानियो मे थी हमारे नये कथाकारो की ग्रामाचली नयी कहानियो मे बहुत कुछ पुन प्रस्तुतिकरण से पीड़ित थी।'[1]

नयी कहानी मे *नयापन कमलेश्वर और रमेश बक्षी के अनुसार दृष्टि सापेक्षता मे* है, ममता कालिया मानती हैं नये ढग से प्रस्तुत करने की क्षमता, श्री सुरेन्द्र ने कहा 'नयी कहानी एक साथ ही मूल्य भग तथा मूल्य निर्माण की कहानी है। नयी कहानी की आवाज वस्तुत एक रचनात्मक सम्भावना को देखकर उठी थी जो आज भी नयी पीढ़ी के कहानीकारो की पहली कृतियो मे साफ झलकती है। सीधी-साधी, साफ-सुथरी कहानी की शुरुआत हुई जो यथार्थ को पकड़े हुए थी। राजेन्द्र यादव की 'खेल-खिलौने' इस संदर्भ मे देखी जा सकती है।

नयी कहानी के इस आन्दोलन के पीछे कोई सैद्धान्तिक आग्रह नही था। वरन् वह व्यक्तियो की निजी कुण्ठाओ और महत्वाकाक्षाओ का परिणाम था। कहानीकार एक नये जीवन्त अनुभव को तराशकर कहानी का आकार दे रहा था।

नामवर सिंह लिखते है– 'कहानी कथा मे अनायास ही 'नयी कहानी' शब्द चल पड़ा है और सुविधानुसार *इसका प्रयोग कहानीकारो ने भी किया है और*

---

1 *नयी कहानी की भूमिका-कमलेश्वर, पृ० २८।*

आलोचको न भी।' तो यह एक वास्तविकता का एहसास होता है क्योंकि हम नयी कहानी को आग्रहों की कहानी न कहकर प्रवृत्तियो की विविधता की कहानी कह सकते हैं।

अब यह सवाल रह जाता है कि हिन्दी नयी कहानी की पहली कहानी किसे माने डॉ० नामवर सिंह ने पहली बार नयी कहानी की आवाज उठायी जिसे लेकर काफी वाद-विवाद हुआ। निर्मल वर्मा की ***परिन्दे*** को नयी कहानी की पहली कहानी घोषित किया। यह कहना कठिन है कि नयी कहानी का कौन प्रथम कहानीकार है। इनका श्रेय कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव मोहन राकेश तीनो को जाता है।

नयी हिन्दी कहानी के प्रमुख कथाकार

मोहन राकेश मोहन राकेश एक लोकप्रिय उपन्यासकार एवं नाटककार होने के साथ ही, समर्थ कहानीकार के रूप म प्रतिष्ठित है। मोहन राकेश ने रचना ने रचना के अन्तर्गत व्यक्ति के अस्तित्व को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। इनका वह व्यक्ति जीवन के ***आधे-अधूरे*** बोध मे उद्भूत होने के कारण संघर्षरत है, और इसी सघर्ष की प्रक्रिया मे वह अपना विश्वास, मूल्य, धारणाएँ सभी कुछ खो रहा है जिससे उसके अन्तर्गत इसी असतुलित व्यक्तित्व की पहचान को प्रतिष्ठत किया है। दूधनाथ सिंह मोहन राकेश की लोकप्रियता के बारे मे लिखते हैं— 'हिन्दी के कहानीकारो मे मोहन राकेश शायद सबसे अधिक लोकप्रिय कहानीकार हैं।'

मोहन राकेश के कई सग्रह प्रकाश मे आए हैं जैसे— 'इंसान के खण्डहर', 'नये बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और जिन्दगी', 'पहचान', फौलाद का आकाश', 'रोएँ और रेशे' 'आज के साए', 'एक दुनिया' और 'मिले जुले चेहरे' आदि मोहन राकेश की लोकप्रिय कहानियो के अन्तर्गत मलबे का मालिक, परमात्मा का कुत्ता, फौलाद का आकाश, आदर्श, एक ठहरा हुआ चाकू, आदमी और दीवार, चौगान, जंगली, पहचान, सेफ्टिपिन, आखिरी सामान, उसकी रोटी, जख्म, आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

इनकी कहानियो मे पर्यायपरक सामाजिक दृष्टिकोण उभरा है जो किसी एक व्यक्ति का न होकर पूरे समय का है। जो इनकी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि, सजगता एवं सामाजिक दायित्व के निर्वाह की भावना से पूरित है। 'इंसान के खण्डहर' कहानी मे अन्धविश्वास, पाखण्ड, धर्माडम्बरो पर बड़ा प्रहार मे करते हैं। शोषित, पीड़ित और श्रमिको के प्रति अधिक सहृदय अधिक दयालु दिखायी पड़ते हैं। वस्तुत: संस्कारिक परिवार और आदर्शों के सहारे जीने वाले परिवार और समाज के प्रति जो विद्रोह भाव इनके मन

१ कहानी नयी कहानी-नामवर सिंह, पृ० ५४।

मे था जो कटुता थी उसकी ही अभिव्यक्ति इस सग्रह की कहानियो मे हुई है। 'नये बादल' कहानी स्त्री-पुरुष के बदलते सम्बन्धो की कहानी है। 'मलबे' का मालिक मे आदर्शवादी दृष्टिकोण है जबकि परिवर्ति परिस्थितियो मे ये जीवन के कटु यथार्थ की झलक देते है। *'मलबे का मालिक'* देश के विभाजन को विभिषिका से उत्पन्न मानवीय ट्रेजडी को चित्रित करती है।

जानवर और जानवर *कहानी सग्रह की कहानी* ***परमात्मा का कुत्ता*** मे लेखक ने सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, घूसखोरी तथा अन्याय से ग्रस्त वातावरण और उसे तोड़ने के लिए तडपते हुए, चीखते हुए उपेक्षित आम आदमी का बड़ा ही व्यगात्मक चित्रण किया है। लेखक भोगने को नियति के स्तर पर ही नही छोड़ देता, उनमे से *विद्रोह का अर्थ* और एक *उपलब्धि भी प्राप्त करता है अर्थात्* भौकने की व्यवस्था जड़ता तोड़ती है, बेहयाई से बरकत हासिल होती है।[1]

'एक और जिन्दगी' नारी-पुरुष के वैवाहिक जीवन की समस्याओ से जूझते दम्पति की सशक्त कहानी है। बीना से सबध विच्छेद होने के बाद प्रकाश अपने मित्र की बहन निर्मला से विवाह करता है लेकिन वह अर्धविक्षिप्त निकलती है। अत वह निराश होकर पहाड़ पर चला जाता है, वहाँ बीना और पुत्र पलास से भेट होती है। पलास के प्रति स्नेह उसे बाध लेता है और वह एकदम बेचैन हो उठता है। 'अतीत सम्बन्धो के तनावो के भीतर एक नया रागात्मकक अनुभव जन्म लेता है लेकिन वह भीतर ही भीतर स्पदित होकर रह जाता है। *बाहरी तनाव व चुप्पी से स्पदित होती हुई मौन तरलता की टकराहट* कहानी की संवेदना को बहुत सश्लिष्टता एव आन्तरिकता प्रदान करती है।[2] क्योकि अजनबीपन और दूरी के बावजूद मानवीय राग को कही न कही छू जाता है।

'एक ठहरा हुआ चाकू' बदला की स्थिति की ओर सकेत कर लिखी गयी कहानी जिसमे *आदमी पर वार होता है। जब शिनाख्त के लिए पुलिस आती है तो* कोई गवाह बनने के लिये तैयार नही है। अत इस कहानी मे गुण्डो द्वारा आतकित और सत्रस्त परिवेश का जीवन्त चित्र खीचा गया है।

उपर्युक्त सभी कहानियो मे मध्यवर्गीय मानसिकता का सकेत मिलता है। लेकिन ये *मध्यवर्गीय पात्र समाज के सामान्य पात्र नही। मोहन राकेश की कहानियो की* आलोचना करते हुए *डा. नामवर सिंह* लिखते है— 'अपने आसपास के वातावरण मे उड़ती हुई कहानियो को पकड़कर नि सदेह मोहन राकेश ने उन्हे उतनी ही तेजी के साथ व्यक्त किया है जो मन मे एक फ्लैश को तरह कौध जाती है। लेकिन लगता

---

1 *हिन्दी कहानी अन्तरग पहचान, रामदरश मिश्र, पृ० १२५।*

2 *हिन्दी की पहचान, रामदरश मिश्र।*

है उन्होंने अभी बिजली की कौंध ही पकड़ी है। बिजली की वह शक्ति नही पकड़ी जिसका उपयोग हम अपनी सीमा मे उष्णता तथा आलोक के लिये कर सके, जो मनुष्योचित सामर्थ्य का प्रतीक है।'

'इन्द्रनाथ मदान' इस कथन को सरलीकरण का परिणाम मानते है और केवल कुछ कहानियो को उपर्युक्त प्रवृत्ति का प्रतिफलन स्वीकार करते है।[1] 'परमात्मा का कुत्ता' नामक कहानी के अन्तर्गत मनुष्योचित सामर्थ्य का अवबोध अवश्य कराया गया है। प्रस्तुत कहानी का पात्र सशक्त चरित्र के रूप मे उभरता है जिसमे सामाजिक विसगतियो से लड़ने की सामर्थ्य है और वह उस मानवीय सामर्थ्य का बल लेकर चुनौती प्रस्तुत करता हुआ व्यक्ति सत्ता का आवाहन करता है। मोहन राकेश की कहानियो मे ऐसे पात्र बहुत कम आये है जिन्होने ऐसी बुलन्द आवाज उठायी हो— 'चूहो की तरह बिटर-बिटर देखने से कुछ नही होता भौको, भौको, सबके सब भौको अपने-आप सालो के कान फट जायेगे भौको, कुत्तो भौको।[3]

कतिपय अपवादो के अतिरिक्त मोहन राकेश की प्राय सभी कहानियाँ परिवेश के नकारात्मक दबाव के टूटते-घुटते स्त्री-पुरुष की कथाएँ है। आधुनिकता बोध के कारण मूल्यो एव विश्वासो का क्षरण हो रहा है, इस तथ्य को मोहन राकेश की कहानियो मे प्रतीकात्मक रूप मे अभिव्यक्ति हुई है। जहाँ तक शिल्प चेतना का प्रश्न है, इनकी कहानियो का रचाव महज साकेतिक है। सवेदना से घुली-मिली इनकी एक अपनी भाषा है। अन्त मे मदान के शब्दो मे 'मोहन राकेश' प्रेमचन्द की तरह पाठक और कहानी के बीच डटकर खड़े तो नही होते भी लेकिन उनके बीच से गुजर अवश्य जाते है जिससे कहानी की मशालिष्टता को खरोच भी लग जाती है।[4]

भाषा मे ताजगी, साफगोई, सपाटबयानी है। मिली-जुली, गंगा-जमुनी जुबान का प्रयोग वे धड़ल्ले से करते है। अग्रेजी के अर्थ सक्षम शब्दो का सार्थक संयोजन भी वे करने मे समर्थ है। परिवेश की सघनता के लिये वे शब्दो का द्वित्व प्रयोग करते है तथा पूरे वाक्य विन्यास को कलात्मक मोड देते है।

कमलेश्वर– कमलेश्वर उस दौर के प्रमुख कहानीकार है। अपनी कहानियो के सम्बन्ध मे इन्होने मेरी प्रिय कहानियाँ की भूमिका मे कहा कि मेरी कथायात्रा के तीन दौर है।

कमलेश्वर के अनुसार– 'कहानियो का पहला दौर १९५२ में शुरु हो जाता है और १९५८ मे समाप्त। इस दौर मे युवक कमलेश्वर पुरानी कहानी और नयी जिंदगी

१. *कहानी नयी कहानी-नामवर सिह, पृ० २८।*
२. *वही।*
३. *परमात्मा का कुत्ता-विजयपाल सिह (सपादक), कथा एकादशी-मोहन राकेश, पृ० १५७।*
४ *हिन्दी कहानी अपनी जुबानी-डॉ० मदान, पृ० २७-२८।*

में संगति बैठाने का प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु जिंदगी के और निकट आने पर उन्हें ऐसा महसूस होने लगा कि पुरानी कहानी जिन्दगी के संदर्भ बेइमानी और आदर्शवादी है। कहानी के सौन्दर्यवादी, साहित्यशास्त्रीय इकाई होने में मेरा विश्वास नही समाता।[1]

इसी वजह से नये लेखकों को यथार्थ से जूझना पड़ा इसके साथ संघर्ष करते हुए अभिव्यक्ति के खतरे को स्वीकार करना पड़ा है। रूमानी और संयोग से परिपूर्ण कहानियाँ लिखना अपने व्यक्तित्व को ही झुठलाना था। यह यथार्थ दृष्टि उनके पास अचानक नही आयी।

'यथार्थ के प्रति यह दृष्टि नये कथाकार के पास इलहाम की तरह नही उतरी उसे इसके लिए बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। निहायत ही उबड़-खाबड़ धरती से गुजरना पड़ा है और न जाने कितने बाहरी भीतरी प्रभावों, रूढ़ियों परम्पराओं के संस्कारों से जूझना पड़ा है।[2]

कमलेश्वर भी अपनी रचना के अन्तर्गत ऐसे चरित्र उपस्थित करते हैं जो अपने परिवेश से तटस्थ होकर जीवन जीने के लिये अभिशप्त हैं, जिनकी दिशाएँ खोयी हुई हैं। कमलेश्वर की कहानियों की मूल संवेदना कस्बों से उभरी है। कथाकार के सामने प्रमुख समस्या कस्बों से उजड़ने की समस्या है— कस्बों से व्यक्ति महानगर मे आ रहा है। महानगर के भीड़-भाड़ भरे परिवेश मे आकर वह खो जाता है, इस प्रकार कस्बे के जीवन मूल्यो का क्षय हो रहा है। यही वह व्यक्ति टूट रहा है, और उसकी इसी त्रास को कमलेश्वर ने कहानी की मूल संवेदना के रूप मे ग्रहण किया है। इनके प्रमुख संग्रह— 'राजा निरबंसिया, कस्बे का आदमी, खोयी हुई दिशाएँ, मांस का दरिया, बयान आदि है, जिनमे प्रमुख एवं बहुचर्चित कहानियाँ 'नागमणि, तलाश, झील, बदनाम बस्ती, उपर उठता हुआ मकान, दिल्ली मे एक मौत जोखिम, बयान, रातें, लड़ाई, दुनिया बहुत बड़ी है, युद्ध तलाश, मांस का दरिया, नीली झील एवं खोयी हुई दिशाएँ आदि है।

आस-पास का सारा परिवेश बड़ी तेजी के साथ परिवर्तित हो रहा था और यह आज भी निरन्तर जारी है, जिन्दगी के किसी भी क्षेत्र मे ऐसा कुछ भी नही जो स्थिर हो, बौद्धिकता से पीड़ित इस युग मे सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक क्षेत्रो मे रोज नित-नूतन परिवर्तन हो रहे है। इन परिवर्तनो के फलस्वरूप व्यक्ति को अपने निर्णय बदलने पड़ रहे है। ऐसे समय कहानी अगर किन्ही स्थिर मूल्यो का ही आग्रह कर रही हो तो वह निश्चित ही बेइमानी लगने लगती है। इस कारण कमलेश्वर के लिये 'कहानी निरन्तर परिवर्तन होते रहने वाली एक निर्णय केन्द्रित प्रक्रिया है।'

इस युग की कहानी कथ्य की धुरी पर टिकी हुई है, इस कारण कथात्मकता

---

१ मेरी प्रिय कहानियाँ भूमिका, कमलेश्वर, पृ० ८।

२ मेरी प्रिय कहानियाँ भूमिका, कमलेश्वर, पृ० ९।

का अंश अधिक है। 'राजा निरबंसिया, कस्बे का आदमी, नीली झील इसका प्रमाण है। इन कहानियों में एक विशिष्ट मन स्थिति के चित्रण की अपेक्षा सम्पूर्ण जीवन को पकड़ने का प्रयत्न किया गया है। इस कारण इन कहानियों का कथ्य उपन्यास के निकट आते है। 'राजा निरबंसिया' के जगपति की अथवा 'नीली झील' के महेश पाण्डेय की जिन्दगी का एक बहुत बड़ा हिस्सा इन कहानियां में लिया गया है, इन दोनों की युवावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक की दीर्घ अवधि की मानसिकता का चित्रण किया गया है। 'दिल्ली की एक मौत' अथवा 'खोयी हुई दिशाएँ' की तरह इन कहानियों की मानसिकता क्षणों अथवा घण्टों की नहीं है परिस्थितियाँ मनुष्य जीवन को कितना परेशान कर रहीं हैं। उसे बदलने के लिये किस प्रकार मजबूर कर रही हैं। इसका चित्रण इन कहानियों में हुआ है। इस काल की सभी कहानियाँ आधुनिक युग की विसंगति, खोखलेपन और निरर्थकता को व्यक्त कर रही हैं। प्रभाव राजा निरबंसियाँ, देवी की माँ, कस्बे का आदमी, गर्मियों के दिन इत्यादि हैं।

'नीली झील' में कहानीकार यथार्थ के घेरे से हटकर रुमानियत, कल्पना और तरलता का सहारा लेता है जिसके कारण प्रगतिशील दृष्टिकोण का अभाव-सा लगाता है। 'कस्बे का आदमी में लेखक कस्बाई जीवन की आस्था, विश्वास एवं संस्कारों को स्वर दिया है। *नीली झील* में अशिक्षित परन्तु सूक्ष्म सौन्दर्यबोध से प्रेरित महेश पांडे है। इसमें मनुष्य की सूक्ष्म सौन्दर्यवृत्ति को उद्घाटित किया गया है। शिल्प की दृष्टि से भी इस काल की कहानियों में विविधता है 'राजा निरबंसियाँ' में पुरानी और नयी कहानी को समानान्तर रखते हुए एक नये अर्थवान शिल्प की खोज की गयी है।

इन कहानियों के विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि इस कथा दौर में कमलेश्वर के कहानीकार ने रूप में और शिल्प में पुरानी कहानी के फार्म को तोड़ते हुये अपने परिवेश के जीवन को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है।' यही उनकी विशिष्टतम उपलब्धि है।

इनकी कहानियों का दूसरा दौर सन् १९५९ से शुरू होता है तथा १९६६ तक चलता है कमलेश्वर अपने कस्बे को छोड़कर १९५९ में दिल्ली आए। कस्बाई व्यक्तित्व और संस्कारों को लेकर जब कोई युवक शहर में चला आता है तो कई दिनों तक वह खुद को उस बदली हुई परिस्थिति से एडजस्ट नहीं कर पाता। इस युवक के पास कई स्वप्न हैं, जीवन मूल्यों के प्रति श्रद्धा है, परन्तु शहर में आने के बाद से श्रद्धाएँ टूटने लगती हैं, धीरे-धीरे वह भीड़ का अंग बन जाता है। जिन्दगी की प्रत्येक घटना को शहरी आदमी एक ही पद्धति से स्वीकार करता है। उसको यह संवेदन शून्यता कस्बाई व्यक्ति के लिये भयानक लगती है। शहरों का न केवल यांत्रिकरण हो रहा है

१. *कहानी का शिल्प वैशिष्ट्य-पुष्पराज सिंह कमलेश्वर, पृ० ३५।*

अमानवीयता की प्रक्रिया भी यहाँ घटित हो रही है। इस स्थिति का उत्श्रेष्ठ दाहरण प्रस्तुत करती है।

कमलेश्वर के पहले दौर मे कथास्रोतो की पहचान और उसमें जीने की कोशिश थी। लेकिन दूसरे दौर मे इस परिवेश की विसगति को और व्यक्ति के व्यवहार को समय के परिप्रेक्ष्य मे जानने का प्रयत्न। 'दिल्ली मे एक मौत' एक व्यस्त एव आत्मकेन्द्रित जिन्दगी का चित्रण करती है जिसमे एक शहरी व्यक्ति किसी की मौत मे महज औपचारिकतावश ही शामिल हो पाता है। वह कितना निर्लिप्त तटस्थ और प्रदर्शनकारी बन जाता है। इसे यहाँ देखा जा सकता है। *मांस का दरिया* मे वेश्या जीवन की असलियत, उसकी ढलती जिन्दगी की बेबसी और मजबूरियो का अत्यन्त सफल एवं मार्मिक चित्रण हुआ है। *तलाश* मे लेखक ने एक विधवा माँ के अर्न्तद्वन्द्व का चित्रण किया है। इस वैज्ञानिक युग मे सबध बिखेरते जा रहे है। मूल्य टूट रहे है। मूल्यहीन वातावरण मे मूल्यो की तलाश की जा रही है। प्रस्तुत कहानी मे शारीरिक सुख के अधीन होकर मम्मी सूमी के चले जाने के बाद यह अनुभव करती है तलाश निरर्थक है। क्योकि इन भौतिक सुखो के बाद एक भयकर सन्नाटा अनुभव होने लगता है। असहाय एवं भयानक है सुख अथवा आनन्द, मातृत्व एव वात्सल्य को स्वीकारने मे है, उससे अलग होकर जीने मे नही। इसमे कटु यथार्थ से टूटने के दर्द को अंकित किया गया है।

सन् १९६६ से ७२ तक की लिखी गयी कहानियाँ तीसरे दौर मे आती है। जब कमलेश्वर बम्बई आ जाते है जहाँ उनको महानगरीय सभ्यता और सस्कृति को अधिकाधिक निकट से जानने का मौका मिला। इस दौर की कहानियो के सबन्ध मे कमलेश्वर ने लिखा है। 'यातनाओ के जगल से गुजरते मनुष्य की इस महायात्रा का जो सहयात्री है वही आज का लेखक है सह और समानान्तर जीने वाला सामान्य आदमी के साथ।'[१]

'नागमणि' कहानी मूल्यहीन सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ चित्र सामने रखती है, जिसमे सारे आदर्शों तथा ध्येयो का प्रतीक है विश्वनाथ, जिसके माध्यम से एक व्यक्ति का ही नही वरन् मूल्यो के बिखराव को ही व्यक्त कर दिया गया है। *बयान* इनकी एक सशक्त कहानी है जिसमें भारतीय न्यायतत्र के खोखलेपन की सफल अभिव्यक्ति है। *आसक्ति* एक बेकार युवक की मन स्थिति की बड़ी यर्थाथपरक एव सूक्ष्म कहानी है। बढ़ती हुई बेकारी मे युवको की स्थिति कितनी भयावह है। इसका प्रमाण यह कहानी है। 'उस रात मुझे ब्रीच कैण्डी पर मिली' इस कहानी ने वातावरण के माध्यम से बम्बई की सवेदनशून्य और आश्चर्यचकित करने वाली मन स्थिति का सहज चित्रण किया गया है। इस सम्पूर्ण कहानी मे वातावरण को अधिक महत्व दिया गया है। 'उपर उठता

१. मेरी प्रिय कहानियाँ भूमिका, कमलेश्वर, पृ० ६।

हुआ मकान', 'फालतू आदमी' आदि कहानियाँ व्यग्य शैली के आधार पर मध्यमवर्ग के जीवनगत वैषम्य, वर्जनाओ का चित्रण सवेदनशीलता के माथ किया गया है।

'राजा निरबसिया' मे लेकर 'वह मुझे ब्रीच कैण्डी पर मिली थी' तक की कहानी यात्रा से कथ्य के सदर्भ मे स्पष्ट होता है कि घोर कथात्मकता से अकथात्मकता तक वे कहानियाँ विकसित होती गयी है।

'घोर आत्मरपकता, कुठा, घुटन एव पलायनवादी प्रवृत्तियो के घने जाल से' हिन्दी कहानी को खुली वायु मे लाकर नया अर्थदेने का श्रेय बहुत अशो मे कमलेश्वर को है।

कमलेश्वर की भाषा मे रूमानीपन और फन्तामी शिल्प का अत्यधिक प्रभाव देखने मे आता है। जिमके कारण नयी कहानी के मूलस्वर अनुभूति की प्रामाणिकता मे लेखक दूर होता जा रहा है। कमलेश्वर की अधिकतर कहानियो का स्वरूप प्रतीकात्मक है। कतिपय कहानियो मे विम्व रचना की प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है। भाषिक विधान की भी दृष्टि से कमलेश्वर सहज होते हुए भी विशिष्ट है। कमलेश्वर की कहानियाँ जिन्दगी से जुड़ी है। जिन्दगी से हटकर कहानियाँ लिखना वे वेमानी मानते है। नयी कहानी के आन्दोलन के पूर्व कहानी जीवन को छोड़कर दूसरे राह पर चल रही थी। इस खुले वातावरण मे लाकर नया अर्थ दिया कमलेश्वर ने। सक्षम व समर्थ बना दिया।

राजेन्द्र यादव– मोहन राकेश और कमलेश्वर के माथ ही राजेन्द्र यादव का नाम नयी कथा की फेहरिश्त मे जुड़ा हुआ है। राजेन्द्र यादव ने उखड़े हुए लोग जैसी कृति की रचना के द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि कहानी के अन्तर्गत इनके पात्र उखड़े हुए लोग है, इस प्रकार राजेन्द्र यादव ने उखड़े हुए लोगो के संत्रास को कथ्य का आधार बनाया है तथा इन्ही के जीवन-चरित्र को चित्रित करने का प्रयास किया है। शिल्प की दृष्टि से इनकी कहानियाँ अधिकाधिक सम्पन्न है। रचना के स्तर पर राजेन्द्र यादव अधिक सजग और शिल्पग्रही कथाकार माने जाते है। राजेन्द्र यादव के प्रमुख कहानी संग्रह खेल-खिलौने, जहाँ लक्ष्मी कैद है, अभिमन्यु की आत्मकथा, छोटे-छोटे ताजमहल, किनारे से किनारे तक, प्रतीक्षा, देवताओ की मूर्तियाँ टूटना और अन्य कहानियाँ है।

नयी कहानी के चर्चित कथा कारत्रयी के भीतर राजेन्द्र यादव मबसे ज्यादा प्रयोगशील और लगभग *रिश्क* लेने वाले रचनाकार के रूप मे दिखाई पड़ते है। आजाद भारत के भीतरी-बाहरी बदलाव के प्रति सर्वाधिक सवेदनशीलता के चलते वे लगातार ऐसे सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों की खोज मे लगे दिखाई देते है। राजेन्द्र संवेदना को अधिक घनत्व देने के लिये कथामूत्र कई जगह से उठाते है। जिनके असम्बद्ध हो जाने का खतरा बराबर बना रहता किन्तु विम्बो का मंयोजन कर रचनाकार कथावृत्त को एक धागे मे बांध लेता है।

राजेन्द्र के बिम्ब चरित्रो की मुखर अभिव्यक्ति देने मे भी पूर्ण समर्थ है। चाहे वह चरित्र पुरुष का हो या नारी काव्य खासतौर से नारी मनोविज्ञान या उसकी व्यवहारिकता सोच-समझ पर लेखक की पकड़ बड़ी अचूक लगती है। उनकी नारियाँ 'अबला जीवन' नही जीती। उनमे आत्मविश्वास ही नही एक सयत विद्रोही भाव और बोल्डनेस दिखाई देता है। वे *यथास्थिति की नही गति की पक्षधर है तथा वे समय की अनुरूपता मे* बदलना जानती है। मगर समाज उनकी राह मे रोड़े अटकाता है। 'तीन पत्र और आलपीन' मे घर से पलायन कर गये पति को पत्नी के पत्र का यह हिस्सा उसके समर्पित भाव की *अभिव्यक्ति तो है लेकिन वर्गीय* चेतना से कही अधिक उसमे स्त्रीत्व मुखर है।

कहानीकार के लिए कथाशाधन सब कुछ है। तभी तो वह कहते है— मेरे लिये लिखना सिर्फ यातना है, एक सजा है, शायद आजन्म का समाधिश्रय कारावास जैसा, *जिसे लेकर मन मे सन्तोष भले ही न हो परन्तु अफसोस भी नही है।*[1] अपने लेखन से वह कभी सन्तुष्ट नही होते। इसी तथ्य की ओर सकेत करते हुए मोहन राकेश ने कहा है—

'हमेशा नये-नये प्रयोग करने की उसकी कामना ही इस बात की गवाह है कि वह जो कुछ भी वह लिख देता है उससे कभी सन्तुष्ट नही होता।'[2]

'एक कमजोर लड़की की कहानी' एक ओर पति के प्रति सामाजिक नैतिकता को निभाना है तो दूसरी ओर प्रेमी को भी, यही अजीब उलझन है। अत आज की नारी भी ऐसी ही परिस्थितियो मे उलझी हुई है। यद्यपि कहानी के बीच-बीच मे सूक्ष्म दरारे भी दिखाई पड़ती है, तथापि विवाहित सविता को जहर देने के प्रस्ताव के बाद की मानसिक स्थिति का वर्णन इतना सफल एवं वास्तविक लगता है उसे आसानी से भुलाया नही जा सकता।

जहां लक्ष्मी कैद है, इस कहानी मे लक्ष्मी के पिता धार्मिक रूढ़ियो के चक्कर मे पड़कर लड़की की शादी नही करते। उनको विश्वास है उनके सम्पत्ति, धन-धान्य बढ़ने का एकमात्र कारण उनकी पुत्री है। अत लड़की की उद्दाम आकाक्षा, प्रलाप और उन्माद के रूप मे फूटती है— 'ले मुझे भोग'[3]

'अपने पार' इनकी एक विशिष्ट कहानी, जिसमे उच्च एव सम्राट वर्ग की कहानी है। इसमे यौनाचार की स्वच्छन्दता के कारण पारिवारिक मूल सम्बन्धो की परिभाषाएँ खो गयी है और उसका स्थान एक अजनबीपन ने ले लिया है।

'छोटे-छोटे ताजमहल और *अभिमन्यु की आत्महत्या* नामक कहानियो मे शिल्प

---

१ *आइने के सामने, पृ० १४९।*

२ *मेरा हमदम मेरा दोस्त-कमलेश्वर, पृ० २१।*

१ *राजेन्द्र यादव श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ० ९५।*

का वह आग्रह देखने को मिलता है जिसके बोझ तले कहानी का वास्तविक तथ्य दब कर रह जाता है। लेकिन नयेपन का बोध बराबर बना रहता है। इन्होंने अधिकतर ऐतिहासिक प्रतीकों को आधार के रूप में ग्रहण किया है। लेकिन इनको नये दृष्टिबोध के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

'टूटना' वर्ग-विशेष के स्वर को सम्प्रेषित करती है जहाँ पाश्चात्य संस्कृति के प्रतिकार को मध्यवर्ग चेतन के स्तर पर स्वीकार करना है लेकिन अचेतन में उसी प्रकार का जीवन-जीने में अभिशप्त है। अतएव वह इस सामूहिक विसंगति को जड़ से उखाड़ने में सक्षम नही हो पा रहा है, बल्कि स्वयं इसका अंग बनता जा रहा है। यह प्रवृत्ति सुविधावादी समाज का नियामक तत्व है।

'खेल-खिलौने' में मध्यमवर्गीय सामाजिक, धार्मिक रूढ़ियों को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। मध्यमवर्गीय नारी इन रूढ़ियों और विसंगतियों को ढोने के लिये बाध्य है। मध्यवर्ग की प्रेमजनित कुण्ठाएँ भी इनकी कहानियों का आधार बनी, यही कारण है कि 'खेल-खेलौने' में एकपक्षीय प्रेम के आधार पर नारी का विवाह कर देने पर उसके व्यक्तित्व के विकास की सभी संभावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और वह बालक के द्वारा खिलौने के तोड़ दिये जाने के समान आत्महत्या कर लेती है।

इस प्रकार राजेन्द्र यादव एक प्रगतिशील कहानीकार के रूप में आते हैं। लेखक त्रयी-राकेश, कमलेश्वर यादव में वे निश्चय ही सर्वाधिक सशक्त प्रगतिशील लेखक हैं।

निर्मल वर्मा- निर्मल वर्मा इन कथाकारों के साथ सर्वाधिक लोकप्रिय कहानीकार हैं। निर्मल अपने नाम के अनुरूप निर्मल व्यक्तित्व के स्वामी हैं भारत में जन्मे किन्तु विदेशी परिवेश से प्रभावित निर्मल एक प्रगतिशील प्रतिभाशाली कलाकार है। इनका जन्म ३ अप्रैल १९२९ में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा शिमला में हुई, ***संत स्टीफन्स से*** इतिहास में एम० ए० किया। वामपन्थी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बने। फिर त्यागपत्र देकर कुछ वर्षों के बाद स्वतंत्र लेखन में जुट गये। डॉ० सुरेश सिन्हा निर्मल के विषय में लिखते हैं— निर्मल उन कहानीकारों में से हैं जिनके लिये मानव-सम्बन्धो का उद्घाटन करना मानवीय संवेदनशीलता का चित्रण करना एवं आज के युगबोध एवं भावबोध का अंकन करना उतना महत्वपूर्ण नही है। जितना कि तथाकथित आधुनिकता के तत्वों की रक्षा करना। अनास्था एवं निष्क्रियता का स्वर उद्घोषित करना, पलायनवाद का प्रचार करना और प्रतिक्रियावादी तत्वों को प्रश्रय देना। ***डॉ० नामवर सिंह-*** निर्मल को प्रगतिशील कहानीकार मानते हैं। निर्मल के साथ आधुनिक शब्द जुड़ा है। वे सही अर्थो में आधुनिक कथाकार हैं संवेदना में भी और शिल्प में भी।'

१. *कहानी नयी कहानी-नामवर सिंह, पृ० ७११*

निर्मल कहानी को अंधेरे मे एक चीख मानते है। यही उनके शिल्प के आधुनिकता की पहचान है। *उनकी कहानियो से स्पष्ट होता है कि अपनी कहानियो मे कला का* उत्कर्ष, जीवन से असम्पृक्त होकर दिखाया है। कला सधि मे इनकी प्रससा करते हुए नामवर सिह ने कहा— 'निर्मल ने अपनी रचना द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि जो सबका *अतिक्रमण करने की क्षमता रखता है वही सबको सजीव चित्रो मे उसे अकेले* की शक्ति भी रखता है।'

इनकी बहुचर्चित कहानी ***परिन्दे*** को ***डा० नामवर सिंह*** ने प्रथम नयी कहानी होने का *श्रेय दिया है।* अतएव ***परिन्दे*** व्यापक चर्चा-परिचर्चा के दायरे मे घिरी कहानी है। इनकी कहानियो की भाषा प्रतीकात्मक, काव्यात्मक एव लयात्मक गुणो से सम्पन्न है। गद्य के क्षेत्र मे काव्यात्मकता का पुट सर्वप्रथम निर्मल वर्मा के परिन्दे मे दिखायी पड़ता है। ***परिन्दे*** मे पात्रो के माध्यम से व्यापक मानवीय प्रश्नो को उठाया गया है। निर्मल वर्मा की भाषा पाश्चात्य प्रभाव मे रगी हुई दिखायी देती है।

डा० नामवर सिंह ने निर्मल वर्मा की कहानियो मे अर्न्तनिहित अनुभूति की सजगता एवं शिल्प चेतना के विषय मे सकेत करते हुए लिखा है— 'निर्मल की कहानियो के पीछे जीवन की गहरी समझ एव कला का कठोर अनुशासन है। बारीकियाँ दिखायी नही पड़ती तो प्रभाव के तीव्रता के कारण अथवा कला के सघन रचाव के कारण निर्मल ने स्थूल यथार्थ की सीमा पार करने की कोशिश की है। यहाँ तक कि शब्द की अभेद्य दीवार को लॉघकर शब्द के पहले *'मौन जगत्'* मे प्रवेश करने का भी प्रयत्न किया है और वहाँ जाकर प्रत्यक्ष इन्द्रियबोध के द्वारा वस्तुओ के मूलरूप को पकड़ने का साहस दिखलाया है।

परिन्दे, लन्दन की रात, जलती झाड़ी, अन्तर, दहलीज, अंधेरे मे, माया दर्पण, माया का मर्म, लवर्स, पराये शहर मे, डेढ़ इच उपर, पहाड, पिछली गर्मियो के दिन आदि निर्मल वर्मा की लोकप्रिय कहानियॉ है। निर्मल वर्मा मे कथ्यगत विदेशी प्रभाव *पारम्परिक कथाकारो से अलग करता है। प्रेम के क्षेत्र मे बौद्धिकता,* ऊब, मोहभग, देहात्मबोध, उनमुक्त मिलन आदि स्थितियाँ विदेशी प्रभाव को स्पष्ट करती हैं।

निर्मल वर्मा के सम्पूर्ण कहानियो के अन्तर्गत दो स्थितियाँ देखी जा सकती है। ......एक वह *जो किसी दिशा की सार्थकता की ओर सकेत करती है* तथा दूसरी वे जो आधुनिकता और बौद्धिकता की दृष्टि से प्रासगिक मूल्यो का सृष्टि करती है। यह कहना उचित प्रतीत होता है कि वे व्यक्ति चेतना के नही वरन् समष्टि चेतना के कथाकार है। इनके चिन्तन *मे प्रगतिशीलता है जो कथाकार की जागरुकता* का परिचायक है। सवेदनशीलता एवं कला का वैशिष्ट्य चितन का अग बनकर उनकी रचना मे प्रस्तुत हुआ है।

परिन्दे इनकी एक जीवन्त कहानी है जिससे अकेलेपन, टूटते-जुड़ते मानवीय सम्बन्धों, अर्न्तव्यथा और मानवीय नियति को स्वर दिया गया है। वस्तुत *परिन्दे* के प्रतीक उन टूटे हुए प्रेमियों के जो अपनी अपनी जगहों से टूटकर इस पहाड़ी स्थान पर एकत्र हो गये है। लतिका, *डा. मुखर्जी, मिस्टर ह्यूवर्त* भी तो परिन्दे ही हैं। प्रेयक पात्र का कथन जैसे 'हम कह जायेंगे' व्यक्ति की समस्या है, जो विराट फलक पर उभरती है।

लवर्स परिवर्तित परिस्थिति से अनुकूल न कर पाने की स्थिति की सूचक है। ***माया दर्पण*** मे भी समय बोध के अभाव का स्थिति उत्पन्न होती है। जिसे रचनाकार ने कहानी के अन्तर्गत अन्य प्रकार मे प्रस्तुत किया है।

'माया दर्पण' मे विगत मान-गौरव मे जोंक की तरह चिपटे रहने की स्थित प्रस्तुत की गयी है, जो एक समस्या है। अर्थात् नये मूल्यों को स्वीकार न करना एवं रूढ़ियों को भी अस्वीकार न कर पाना ये दोनों स्थितियाँ जड़ता की सूचक है। ***जलती झाड़ी*** का वृद्ध महुआ उस पीढी का प्रतीक बनकर कहानी मे उपस्थित हुआ है जो अपने दायित्वो के निर्वाह मे असमर्थ अतीत पर दृष्टि लगाये और भावी के प्रति उदासीन है। इसी प्रकार ***तीसरा गवाह*** और ***पराये शहर में*** बहुचर्चित कहानियाँ है। ***दहलीज*** के अनकहे उस कहे का दर्द शेष रह जाता है। ***रूमी के कोमल मन में*** भी इसी कहे-अनकहे की पीड़ा निरन्तर उसे मथती रहती है। ***'पहाड़'*** मे नवदम्पति के सामने यही समस्या है, जिसके कारण उन्हे कुछ छूटता हुआ लगता है और वे किसी नये के आगमन का संकेत पाकर एक-दूसरे विश्वस्त से हो जाते है। यह नया वह बच्चा जो उनके लिये पहाड़ बन जाता है। 'अक्सर होता यह है कि बच्चे के आने पर पति-पत्नी अनायास एक दूसरे के प्रति कुछ थोड़ा-सा विरक्त हो जाते है। चाहते है एक-दूसरे को, लेकिन बच्चे के माध्यम से और यह शुरूआत होती है अन्त होने की। किन्तु इस दम्पति के संग ऐसा कुछ नही हुआ। वह बड़ा होता गया था— दोनो के बीच नही... बल्कि अपने' से अलग। ***डायरी का खेल*** और ***माया का मर्म*** ऐसी कहानियाँ है जो उथले मे अनास्था, कुण्ठा, घुटन को मुखर करती जान पड़ती है जबकि गहरे मे उनमे प्रबुद्ध जिजीविषा है। वस्तुत इन कहानियो की आत्मकेन्द्रीयता सिर्फ ऊपर से ही आत्मकेन्द्रीय जान पड़ती है। मूलत इनके भीतर सामाजिक चेतना का गम्भीर स्पन्दन है।

निर्मल वर्मा की रचनाओं के विश्लेषण के आधार पर कुछ आलोचक उन्हे मुक्तिबोध के बाद का समर्थ प्रगतिशील कहानीकार मानते है। संवेदना और शिल्प दोनों दृष्टियो से उनकी कहानियाँ अलग तेवर प्रस्तुत करती है। उनकी कहानियाँ परिवर्तन की चेतना जगाने मे बहुत हद तक समर्थ है। तमाम आलोचनाओं के बावजूद निर्मल वर्मा की कहानियो मे गहरी समझ है। उन पर कला का कठोर अनुशासन है।

१ परमानन्द श्रीवास्तव एवं गिरिश रस्तोगी (सम्पादक), कथान्तर-निर्मल वर्मा, पहाड़, पृ० १३७-३८।

कहानी मे मशक्तता मे उमग है पीढ़िया के अन्तर की पीड़ा ***मजबूरी*** कहानी में व्यक्त हुयी। पीढिया का अन्तर भी आधुनिक जीवन का एक यथार्थ है जिमे नयी कहानी मे बार-बार रूपायित किया गया है। ***मजबूरी*** कहानी इम मत्य मे माक्षात्कार कराती है।

यही सच है दो प्रेमिया को लेकर उपजे हुए नारी मन के द्वन्द्व की अभिव्यक्ति है। इन्दू अपने वर्तमान प्रेमी मजय के माथ कानपुर मे है और निशीथ उमका पहला प्रेमी है जो कलकत्ते मे है। इन्दु निशीथ की बेवफाई से नाराज है और मंजय के प्रति पूरी तन्मयता मे मर्मर्पित है। एक इन्टरव्यू के मिलमिले मे वह फिर कलकत्ते जाती है और निशीथ से भेंट होती है। निशीथ फिर इन्दू के मन मे छाने लगता है। वह निशीथ और मंजय के बीच बँट जाती है और एक गहरे द्वन्द्व मे फंम जाती है। मोचती है निशीथ मच है, कानपुर आती है तो मोचती है सजय मच है इसमे तीनो पात्रो को उनकी पूरी इयत्ता के माथ रूपायित कर इन्दु के मन के मघर्ष को चित्रित किया गया है।

'नयी नौकरी' मे मन्नू भंडारी ने पुरुष की भौतिकवादी दृष्टि और उसमे होम होती हुई स्त्री का इयत्ता का चित्रण किया है। ***ए खाने आकाश नाई*** मे गाँव के मध्यमवर्गीय परिवार की जिन्दगी चित्रित की गयी है।

मन्नू की अनेक कहानियाँ ऐमी है जो वृहत्तर मामाजिक अनुभवो और संकट की है जैसे ***खोटे सिक्के*** और ***सजा*** खोटे मिक्के मे होने वाले अत्याचार की कहानी है। इस अत्याचार के विरोध मे खत्रा साहब की रसिकता की स्थिति को रखकर उमके तनाव मे अत्याचार की विभीषिका और कुरूपता को और भी गहरा दिया गया है।

'यही सच है' मे पाठक के लिये यह निर्णय कर पाना कठिन ही लगता है कि वम्तुत. मच क्या है? अलग-अलग जीवन पद्धतियो मे अलग-अलग व्यवहार या निष्कर्ष होते है तो वैमे 'यही मच है' की मान्यता सबको छू मकेगी और किम भाँति कोई एक स्वर मे कथानत्व की मम्प्रेषित बात म्वीकार कर उमसे बीजक जीवन गहराई माप मकता है। कही कुछ न मिलकर इम प्रकार की कृतियो के एक मानसिक सन्तोष और मन्तुलन की ही कल्पना रहती है। अधिक मे अधिक एक अभाव मे ममझौता और क्या है?[1]

इम प्रकार मन्नू भण्डारी की कहानियाँ अपने परिवेश के विविध अनुभवो, मानवीय पीड़ा, मानवीय दृष्टि, अपने खुलेपन और अकृत्रिम भाषा के कारण सार्थक और प्रभावशाली कहानियाँ बन पड़ी है।[2]

१ कल्पना पत्रिका-सुरेन्द्रनाथ मिश्र, अप्रैल अक -४, १९७०, पृ० २८।

२. हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान-रामदरस मिश्र, पृ० १४६।

उषा प्रियम्वदा– आधुनिक युग की प्रगतिशील लेखिकाओं में इनका नाम महत्वपूर्ण है। उनकी चिंतन प्रक्रिया समष्टि में व्यष्टि की ओर उन्मुख है। उससे स्वतंत्रता मिली है, भारतीय नारी वर्ग मे अनेक परिवर्तन हुए, समाज में नारी को भी महत्व दिया जाने लगा। आधुनिक भारत की नारी प्राचीन मूल्यों को त्यागकर प्राचीन मूल्यों को धड़ल्ले से अपना रही है। दूसरी ओर मध्यमवर्गीय परिवार का भी चित्र खींचा है। अत: स्त्री-पुरुषो के सम्बन्धो, प्रेम के विविध पक्षो एवं परिवार की परिवर्तित व्यवस्था को लेकर जो कहानियाँ लिखी गयी है, उनमें विषय की मार्मिक व्यजना करने तथा अभिव्यक्ति को यथार्थता प्रदान करने मे उषा प्रियम्वदा को विशेष सफलता प्राप्त हुई।'[1]

लेखिका का व्यक्तित्व व उनकी सृजन प्रक्रिया उन्ही के शब्दो मे— 'मेरी पहली कहानी *लाल चूना* थी, उसके बाद के तीन साल की अवधि में मैंने तमाम कहानियाँ लिखी— मेरी कहानियो के पीछे एक बीज जरूर होता है एक विचार, एक इमेज, एक अनुभूति या अनुभव का चैलेन्ज मुझे उत्साहित करते हैं। डेड लाइन्स मुझे प्रेरित करती है। मेरी प्रिय कहानियो मे वे है जो एक फ्लैट मे जन्मी और मैंने उन्हे लिख डाला, सृजन प्रक्रिया मेरे अन्तर्मन मे बार-बार चलती रहती है। जो मैं कहती हूँ कि मैं आजकल कुछ नही लिख रही हूँ तो शायद मैं झूठ बोलती हूँ, हर दिन इन्तजार मे गुजरता है कि न जाने क्या मन को यूँ छू ले कि एक नयी कहानी की शुरूआत हो।'[2]

'जिन्दगी और गुलाब के फूल' मे व्यक्ति अपने जीवन को सुखी बनाने के लिये अनेक कल्पनाएँ करता है, जो गुलाब के फूल की भाँति सुन्दर और सरस होती है। किन्तु जीवन के यथार्थ की कठोर शिला से टकराकर ये चूर-चूर हो जाती है और व्यक्ति पीड़ा से सिसक कर रह जाता है।[3]

इस संग्रह की कहानियों मे कल्पना पर यथार्थ की विजय का दिग्दर्शन होता है।

'वापसी' कहानी बहुचर्चित कहानी है, जिसके विषय मे आलोचनाएँ-प्रत्यालोचनाएँ हुई। चाहे वो गलत हो या सही। डा शिव प्रसाद सिह *वापसी* को निर्गुण को एक शिल्पहीन कहानी से कम सशक्त एव यथार्थ मानते है।

'वापसी कहानी आज के परिवर्तित सामाजिक जीवन एव विशृंखलता का अत्यन्त यथार्थ परन्तु मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है। जिसमे गजाधर बाबू परिवर्तित जीवन मूल्यो के साथ समझौता न कर पाने के कारण परिवेशगत तनाव की अनुभूति से ग्रस्त हो

१ नई कहानी की मूल सवेदना-डॉ० सुरेश सिन्हा, पृ० १२१।
२ मेरी प्रिय कहानियाँ-उषा प्रियम्वदा, पृ० २२।
३ कांच का रास्ता, पृ० १।

जाते हैं। नूतन जीवन मूल्यो से पगा मारा का सारा माहौल उन्हे अपने मान्य स्वीकृत मूल्यो का क्रूर मजाक करते से दिखायी देते है, अत अपने को *मिसफिट* अनुभव करते हुए वे पुन. नौकरी पर जाने के लिये विवश हो उठते हैं। वे इतने एकाकी हो गये है कि उनकी पत्नी, जो कि स्वय को उस नये माहौल के अनुरूप ढाल चुकी है, उनके साथ जाने को तैयार नही होती है।

उषाजी की कहानियो मे जीवन की गहरी पकड़ है। इनकी भाषा विषयानुकूल, सरल और व्यावहारिक है। शैली रोचक एवं प्रभावपूर्ण है।

शिव प्रसाद सिंह– शिव प्रसाद सिंह ऐसे रचनाकार है जो गाँव की जिन्दगी से जुड़े हुए है। उन्होंने गाँव की पीड़ा को अपनी रचना मे उतारने का प्रयास किया है। शिव प्रसाद सिह की कहानियो का मुख्य विषय है–– स्वतत्रता के पश्चात ग्राम-जीवन मे मूल्यो का सक्रमण, गावो मे नगरीय सस्कृति की घुसपैठ, उसका जन-जीवन पर प्रभाव आदि, फिर भी ग्रामीण व्यक्ति का आस्था के साथ जीते रहना और टूटने से अपने आपको बचाना। उनकी कहानियो मे नारी पात्रो का चरित्र बड़े ही सशक्त रूप मे सामने आया है। शिव प्रसाद सिह को ग्राम बोध का कथाकार माना जाता है और उनकी *दादी माँ* नामक कहानी को प्रथम नयी कहानी के रूप मे स्वीकार किया जाता है। कुछ लोग शिव प्रसाद सिंह को नागार्जुन का पूरक मानते है। स्वतंत्रता के पश्चात जिस प्रकार नागार्जुन को 'बलचनमा' नामक उपन्यास से लोकप्रियता प्राप्त हुई है। वैसी ही लोकप्रियता शिवप्रसाद सिंह को 'दादी माँ से प्राप्त हुई है— ऐसी कुछ आलोचको की धारणा है। इस सदर्भ मे अग्रलिखित उद्धरण की अपेक्षा रखता है— *दादी माँ* कहानी को अब धीरे धीरे उसका ऐतिहासिक प्राप्य मिल रहा है। यानी अब मेरे नातिप्रीत आलोचक भी यह कहने लगे है कि नयी हिन्दी कहानी की शुरूआत *दादी माँ* से हुई।[1]

शिव प्रसाद सिंह के प्रमुख कहानी संग्रह 'आर-पार की माला', 'कर्मनाशा की हार', 'इन्हे भी इन्तजार है', 'मुरदा सराय' एवं 'एक यात्र सतह के नीचे' आदि है। इन्होंने अपनी कहानियो मे गावो मे व्याप्त जमीदारी प्रथा के अन्तर्गत क्रूर शोषण-चक्र मे पिसते उपेक्षित वर्ग, सामाजिक विसंगतियो, भ्रष्टाचार एवं बेरोजगारी आदि तत्वो का चित्रण किया है। इनकी कहानियो मे कतिपय पात्रो का चरित्र बहुत मुखर होकर सामने आया है। *दादी माँ* नामक कहानी मे दादी माँ का चरित्र देखा जा सकता है। पेशे से सूदखोर होते हुए भी उसमे कही न कही मानवीय सवेदना के बीज विद्यमान है जो फूटकर बाहर निकलते है और इसी कारण वह अपने चरित्र से बहुत उपर उठकर मानवीय मूल्यों को प्रकाशित करती है। एक स्त्री की पीड़ा एवं असमर्थता के कारण वह पिघल जाती है। इसी प्रकार *नन्हों* कहानी की मे नन्हो को लिया जा सकता है। नन्हो

१. *नामवर सिंह का निबध 'माया' जनवरी १९६५।*

बड़े सशक्त रूप मे सामने आयी है। दुर्भाग्यवश उसका विवाह मिसरी लाल नामक बेहद कुरूप और दुर्बल व्यक्ति से हो जाता है, जबकि मिसरी लाल के ममेरे भाई रामसुभग को ही देखकर उसके विवाह की बात पक्की की गयी थी। अतएव यह घटना उसे कांटे की तरह सालती रहती है, वह यह सब सिर्फ भाग्य के उपर छोड़ देती है परन्तु अन्दर ही अन्दर वह जरूर घुटती है लेकिन बाहर से कही भी टूटने का सकेत नही देती है, बल्कि कठोरतापूर्वक रामसुभग या सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देती है। रामसुभग के असगत व्यवहार से पीड़ित होकर नागिन की भाँति फुफकारती हुई उसके पुरुषत्व को चुनौती देती हुई कहती है *सरम नही आती तुम्हें...। बड़े मर्द थे तो सबके सामने बाँह पकड़ी होती, तब तो स्वाग किया था, दूसरे के एवज बने थे, सूरत दिखाकर ठगहारी की थी अब दूसरे की बहू का हाथ पकड़ते सरम नही आती ।*[1]

'एक यात्रा सतह के नीचे' के अन्तर्गत भी इस प्रकार का नारी स्वर मुखरित होता है। उपरी सतह पर यात्रा करने वाला बेकारी से अभिशप्त चरित्र अवधू का है, जो स्वय के प्रति परिवार की तीव्र हो रही उपेक्षा वृत्ति, तिरस्कार और आत्मग्लानि को झेलने को विवश है। पर सतह के नीचे की यात्रा उसकी पत्नी शोभा के पीड़ित मौन की है। जिसके कारण सहसा वह बिफर कर फूट पड़ती है। *जा तो रही हूँ। . दिन भर तो चूल्हा-चौका लगा ही है।*[2]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शिव प्रसाद सिह ने अपनी कहानियो के अन्तर्गत सशक्त नारी चरित्रो को प्रतिष्ठित किया है। चरित्र स्थापन उनका लक्ष्य रहा है इस तथ्य को ***मुरदा सराय*** सग्रह के आरंभ मे 'कुछ न कुछ होने का कुछ' के अन्तर्गत स्वीकार किया है। 'उनकी अधिकाश कहानियाँ चरित्र प्रधान है, क्योकि चरित्रो के कर्म उन्हे अपेक्षतया अधिक आकृष्ट करते है। अकर्मों की व्याख्या से वे प्रतिबद्ध है अत अधिकांश कहानियो मे 'मैं' पात्र कथा का सम्पादन करता है। कर्मों की कथा का सम्पादन इस ढग से करने की चेष्टा की गयी है कि चरित्र 'आइडिया या सूक्ष्म कथ्य' मे परिणित हो जाये।'[3] चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया मे 'कर्मनाशा की हार' के भैरो पाण्डेय का चरित्र देखा जा सकता है जो जीवन भर आवरण मूलक सत्यो मे जाने के पश्चात फुलमतियाँ की वेला से विगलित हो जाते है और सामाजिक विसगतियो को चुनौती देते हुए सभी को दोषी ठहराते है। नारी-शोषण भी इनका प्रमुख विषय है। चाहे वह ***'कर्मनाशा की हार'*** की फुलमतिया हो या 'इन्हे भी इन्तजार है' की कबरी डोमिन हो। निम्नवर्गीय समाज की स्त्रियो का अधिकाधिक शोषण हो रहा है— इस तथ्य को प्रकाशित करना भी कदाचित इनका लक्ष्य है।

---

१ *राजेन्द्र यादव (सपादक) एक दुनिया समानान्तर-शिवप्रसाद सिंह, नन्हो, पृ० ३५४।*

२ *एक यात्रा सतह के नीचे-शिव प्रसाद सिंह, पृ० २४।*

३ *मुरदासराय, कुछ न होने का कुछ, शिव प्रसाद सिंह, पृ० ११।*

इस प्रकार घटना, चरित्र और शिल्प सभी दृष्टियों से शिव प्रसाद सिंह की कहानियों में ग्राम-बोध को आधार बनाया गया है। इनकी कहानियों में जनवादी तेवर के तत्व व्यापक स्तर पर वर्तमान पाये जाते हैं और शिल्प की दृष्टि से नयी कहानियों की प्रवृत्ति। लोकगीतों, मुहावरों, लोकोक्तियों, ठेठ शब्दों का प्रयोग इनकी कहानियों में प्राय हुआ है इस प्रकार कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से शिव प्रसाद सिंह की कहानियों में अपेक्षित संतुलन एवं सामजस्य दिखायी पड़ता है। कहानियों का गौरव कथाकार की स्वस्थ जीवन दृष्टि है।

अमरकान्त- अमरकान्त एक सशक्त प्रगतिशील कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में निम्नवर्ग तथा मध्यमवर्ग का चित्रण मिलता है। अमरकान्त ही इस काल के ऐसे कहानीकार हैं जो प्रेमचन्द के सन्निकट हैं। इनमें आस्था, सकल्प एवं जीवन की गहरी पकड़ी है। प्रयासहीन शिल्प के साथ-साथ मानवीय संवेदनशीलता तथा सामाजिक दायित्व निर्वाह की भावना सबसे अधिक है। इनकी कहानियों के पात्रों में जिजीविषा के भाव है, वे परिस्थितियों से संघर्ष करते रहे हैं और अन्तत जीवन की विषमता के उपर उठकर आत्मविश्वास से ओत-प्रोत हो जाते हैं। वस्तुत 'वे चेखव के इस कथन को पूरे यथार्थता से रुपायित करते हैं कि यदि मैं समाज की सीमाओं में बंधा हुआ लेखक हूँ, तो मेरा यह दायित्व होता जाता है कि मैं अपने युग, समाज अपने आस-पास के लोगों और उनके जीवन का चित्रण करूँ। अमरकान्त में एक स्वस्थ जीवन दृष्टि है यथार्थ को पहचाने की समर्थता है और नये सामाजिक सन्दर्भों को विकसित कर नवीन मूल्यों की स्थापना, सत्यान्वेषण की सक्षमता है।

दोपहर का भोजन, डिप्टी कलक्टरी, जिन्दगी और जोक, इन्टरव्यू, देश के लोग, खलनायक, लाट और आदर्श आदि।

इन सभी कहानियों में अमरकान्त ने मानव-मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों और मनोवृत्तियों को उजागर किया है।

इन कहानियों के पात्र मुख्यत निम्न मध्यमवर्ग तथा मध्यवर्ग के हैं। भारतीय समाज का यही वर्ग सबसे उपेक्षित और अभिशप्त है। जिन्दगी और जोक, दोपहर का भोजन, निम्न मध्यमवर्ग की यथार्थ स्थिति को दिखाने वाली अत्यन्त सशक्त कहानियाँ है। इनकी कहानियों में उन विषमताओं, विसगतियों एवं सामाजिक असमानताओं का अत्यन्त सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्रण किया गया है। जो मानव जीवन के विकास में अवरोध उपस्थित करती है।

'डिप्टी कलक्टरी' को एक साधारण परिवार की असाधारण कहानी या झूठ पड़ जाने वाली आकांक्षा एवं निराशा की कहानी कहा जा सकता है। इसमें शकलदीप बाबू की तीव्र आकाक्षा को डोर पर टगी हुई विवशता को मानवीय करुणा के साथ जोड़कर

कई ऐसी प्रगादता लाने की चेष्टा की गयी है। 'डिप्टी कलक्टरी' तदर्थ कहानी न होकर एक विकासशील माने जाने वाले राष्ट्र के राष्ट्रकर्मी की सम्पूर्ण स्थिति का बोध कराने वाली कहानी लगने लगती है।

डिप्टी कलक्टरी की विशेषता यह है कि वह पाठ के दौरान हमें बरबस टीसती और झकझोरती रहती है। मामूली घटना एवं साधारण पात्रों के होने के बावजूद यह कहानी समूचे परिवेश और शकलदीप बाबू जैसे मध्यमवर्गीय जिम्मेदार, भाग्यवादी भारतीय वृद्ध की प्रतिक्रिया को बड़ी खूबी के साथ अपनी समग्रता मे अंकित करती है। जिसके नाते 'डिप्टी कलक्टरी' समूचे निम्न मध्यमवर्ग की सोच और मानसिकता की कहानी बन जाती है।

मार्कण्डेय- मार्कण्डेय मार्क्सवाद से प्रभावित थे लेकिन इनका उद्देश्य प्रचार न होकर भारतीय जीवन-पद्धतियो से सामजस्य स्थापित करना है। '*वर्ग वैषम्य के प्रति आक्रोश सामाजिक असमानता एवं शोषण के प्रति विरोध की पृष्ठभूमि पर आधारित* मारकण्डेय की कहानियाँ प्रगतिशील मान्यताएँ स्थापित करती है एवं नवीन मूल्यो को महत्त्व देती है।'[1]

ग्राम-बोध के कथाकारों मे मार्कण्डेय भी ऐसे रचनाकार है जिन्होंने ग्रामीणांचलो मे वर्तमान स्वस्थ जीवन मूल्यो को रचना के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस अभियान मे इन्होंने ठेठ ग्रामीण शब्दो का प्रयोग किया है। भाषा का मुहावरा और शब्द किसी रचनाकार की मानसिकता को उजागर करने के लिये पर्याप्त है। मार्कण्डेय ने ठेठ और खड़ी बोली दोनो का प्रयोग किया है। इनका कथ्य गाँव और नगर दोनो से जुड़ा है। कहानियो मे पर्याप्त प्रतीकात्मकता है। मार्कण्डेय नर-नारी के सम्बन्धो को मानवीय धरातल पर देखने के पक्षधर है।

मार्कण्डेय के प्रमुख कहानी संग्रह— हसा जाई अकेला, महुए का पेड़, पान-फूल, भूदान, तारो का गुच्छा और माही आदि। इन कहानियो मे रचनाकार ने प्राय जमींदारी प्रथा का अन्तर्विरोध, निर्धनता, भ्रष्टाचार, मोहभग, शोषण, अकाल, विकास योजनाओ का खोखलापन, सत्रास, पीड़ा, पाखण्डी प्रवृत्तियो एवं विडम्बनाओ का मिला जुला रूप, पारिवारिक आदर्शों को उदघाटित करने का सार्थक प्रयास किया है। स्वातंत्र्योत्तर ग्राम-जीवन मे भू-स्वामियो के दाँव-पेच के बीच निरर्थक साबित होती। ग्राम-विकास की योजनाओ की बहुत सच्ची पकड़ इन कहानियो मे देखी जा सकती है।

दोने की पत्तियाँ नामक कहानी मे पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत नहर तिवारी जी के खेत को नष्ट करने की बजाय भोला के खेत चौपट कर देती है। '*नहर आधे खेत तक पहुँच गयी है, पतले लम्बे खेत के ठीक बीचो-बीच। मजदूर कह रहे है*

1 *नयी कहानी की मूल संवेदना- सुरेश सिन्हा, पृ० ११७।*

'यह तो ठीक नही की नाप का खेत है।'[1]

इसी प्रकार 'धुन', 'चाँद का टुकड़ा' आदि अनेक कहानियो में शोषण की प्रक्रिया को सामने रखने का प्रयास किया गया है। मार्कण्डेय की कहानियो की इन्ही विशेषताओ का संकेत करते हुए डा नामवर सिंह ने लिखा है, 'मार्कण्डेय के किसान चरित्र-जीवन की जिन परिस्थितियों के सदर्भ मे चित्रित हुए हैं वे आधुनिक भूमि-सुधारों और विकास योजनाओं से सम्बद्ध है और इनकी भूमि समस्याएँ, नयी-जीवन-व्यवस्था तथा मानसिक व्यवस्था को व्यंजित करती हैं।[2]

इस प्रकार विकास के नाम पर कृषक वर्ग का भरपूर शोषण हो रहा है। शोषण की इन स्थितियो को रचनाकार ने वास्तविक ढग से स्पष्ट किया है। मार्कण्डेय की कहानियों में यथार्थबोध के रागात्मक स्वर की खरी और सच्ची अभिव्यंजना भी हुई है। उक्त राग-बोध पान-फूल, गुलरा के बाबा, सवरइया, चाद का टुकड़ा, मधुपुर के सिवान का एक कोना आदि अनेक कहानियो मे देखा जा सकता है। यह अवश्य है कि कभी-कभी मार्कण्डेय की कहानियो मे रागातिरेक भी खटकने लगता है। जिससे यथार्थ अपने वास्तविक स्वरूप से परे हो जाते हैं।

नेमिचन्द्र जैन कथाकार की इस कमजोरी की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं— 'आज का कहानीकार कोरी भावुकता से जिन्दगी को न तो अधिक करुण बनाकर दिखा सकता है और न अधिक मोहक ही, यथार्थ अपने आप मे ही बहुत करुण भी है और बहुत सम्मोहन पूर्ण भी।'[3]

रचनाकार की प्रगतिशील दृष्टि अन्य सामाजिक, धार्मिक, रूढ़ियों, कुरितियो, विसंगतियो एवं टूटते मूल्यो पर भी पड़ी है और इनका चित्रण करने के लिये उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया। *भूदान* और *सोहगइला* मे रूढ़ियो पर व्यंग्यपूर्ण प्रहार किया गया है।

मार्कण्डेय के शिल्प मे किस्सागोई का-सा प्रभाव देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रतीको और बिम्बो की रचना क्षमता इनकी विशेषता है। अधिकांश कहानियों में बिम्बो का प्रयोग कभी चरित्रो के आकार-प्रकार को उभारने के लिये तो कभी परिवेश का वर्णन करने के लिये किया गया है। मार्कण्डेय की भाषा में स्वयं को अभिव्यक्त करने की सहज सामर्थ्य है, तथा किसी प्रकार का दुराग्रह बोध नही है। इनकी शिल्प योजना अत्यन्त सहज है। तत्सम भाषा का प्रयोग भी आकर्षक ढंग से किया गया है।

फणीश्वरनाथ रेणु– एक आंचलिक कहानीकार हैं। *मैला आंचल* के माध्यम से

1. मारकण्डेय 'दाना-भूसा' तथा अन्य कहानियाँ 'दोने की पत्तियाँ', पृ० ९१।
2. कहानी, नयी कहानी-नामवर सिंह, पृ० ५५।
3. बदलते परिप्रेक्ष्य-नेमिचन्द्र जैन, पृ० १५१।

ख्याति प्राप्त कर रेणु ने कहानी के क्षेत्र मे भी यह आचलिकता उभारनी चाही। इनकी प्रथम कहानी *बट बाबा* १९४६ मे ही कलकत्ता के एक पत्रिका मे प्रकाशित हो चुकी थी। इस प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति का जन्म बिहार के पूर्णिया जिले के हिगना, औराई गाँव मे हुआ था। अपनी तरुणावस्था तक यह कहानीकार नेपाल को मुक्ति दिलाने मे लगा रहा। १९५२-५३ मे भारत वापिस आये पर इस समय अस्वस्थ थे। उसके बाद ही तीसरी कसम, रसप्रिया, लालपान की बेगम, जैसी कहानियो की रचना की। जिसमे गाँव की मिट्टी की गन्ध समायी हुई थी। 'यह कथाकार इसी रूप, रस और गन्ध के प्रति सजग है। यह कलाकार *रेणु* गाव मे आता है तो वह भूल जाता है कि वह लेखक भी है। उस समय न उसे अखबार से मतलब है न रेडियो से, गाँव उसका ससार है।[1]

वस्तुत रेणु ने गाव की मिट्टी के मोह को ही अपनी कला मे निरुपित किया है। 'रसप्रिया' और 'तीसरी कसम' उर्फ मारे गये गुलफाम, को उनकी कहानियो मे विशेष ख्याति मिली, क्योंकि ये कहानियाँ ग्राम परिवेश की बड़ी ताजगी लेकर आयी। इन कहानियो मे सेक्स की गहरी पीड़ा है और एक सामाजिक परिवेश की बड़ी जीवंतता और सघनता से उसके इर्द-गिर्द बुना गया है।

रेणु की अलग-अलग कहानियो को पढ़ने से लगता रहा कि उन्होने ग्राम-परिवेश और उसकी चेतना को गहरी अभिव्यक्ति दी है। अन्तत इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि *नयी कहानी* की अधिकाश कहानियों की तरह रेणु की कहानियो मे भी प्रेम या सेक्स है। वह चाहे *रसप्रिया* हो या *तीसरी कसम* रेणु ने 'मैला आचल', 'परती परिकथा' और 'जुलूस' मे ग्राम जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक चेतना की परस्पर लिपटी पर्तो का उद्घाटन कर एक सश्लिष्ट चित्र दिया था किन्तु कहानियो मे वे प्रमुखत सेक्स के ही इर्द-गिर्द चक्कर काटते रहे है और वही से वे हल्के-हल्के ढग से सामाजिक बदलाव की ओर यत्किंचित सकेत करते रहे है।

इनकी कहानियो के पात्र बदलते सन्दर्भ मे जीते है। 'लालपान की बेगम' मे बिरजू की मा इस गध की वाहक और ठेस मे सिरचन का सृजन भी इस धरातल पर हुआ है। सम्बन्धो के बदलते सन्दर्भ और गाँव के बदलते परिप्रेक्ष्य मे जब उसी हवेली मे उसे ठेस लगती है।

पंचलाइट पचायत जैसी सस्था की यथार्थ कार्य-पद्धति को अकित करती है। इनकी कहानियो मे केवल माटी की गध ही नही, बल्कि उनके सवादो मे उभारती हुई नाद-लहरी को भी पकड़ता है। नाद के प्रति यह आकर्षण 'ठुमरी' आदि कहानियो मे उभरा है।

१ ज्ञानोदय पत्रिका, अक्टूबर, ६८, फणीश्वर नाथ रेणु और उनके परिदृश्य से पृ० ५०।

एक स्तर पर यह कहानियाँ हैं— किस्सा गोई का नया संस्कार। दूसरे स्तर पर ये कहानियाँ कम, चित्र अधिक हैं और तीसरे स्तर पर सुमधुर स्वरों में बंधे जीवन राग।'[1]

रसप्रिया में मिरदंगिया, मोहना की माँ और मोहना के बीच तनी हुई कथा धीरे-धीरे वातावरण में घुलती रहती है। मोहना की माँ मिरदंगिया से नफरत करती है किन्तु कैसी विडम्बना है कि मोहना मिरदंगिया का ही लड़का है। यह प्रेमकथा अपने वातावरण में न केवल घुलती हुई व्याप्त होती रहती है वरन् सामाजिक वातावरण में नयेपन की ओर संकेत भी करती है।

तीसरी कसम ऊपर से सामान्य-सी लगने वाली कहानी है किन्तु भीतर ही भीतर यह बहुत गहरे प्रभाव से कसी हुई है। यह प्रभाव स्वीकार की मन स्थिति और अस्वीकार की नियति के द्वन्द्व से फूटा हुआ ट्रेजिक प्रभाव है। अस्वीकार की नियति शुरु में ही स्पष्ट है और स्वीकार की मन स्थिति भी प्रारम्भ में ही उभरने लगती है स्वीकार की मन स्थिति और अस्वीकार की नियति का यह द्वन्द्व पूरी कहानी में व्याप्त है।

रेणु ने अपनी कहानियों में आत्मसंवाद शैली का बड़ा ही सजीव प्रयोग किया है, लोकभाषा का सम्पर्श रेणु की कहानियों की भाषा को अतिरिक्त शक्ति देता है। लोककथाएँ तथा लोकगीतों का भी इन्होंने भरपूर प्रयोग किया है। भाषा के संदर्भ में इन्होंने नगरीय शब्द गाँव में किस प्रकार विकृत होकर पहुँच रहे हैं इनका बखूबी ध्यान रेणु ने दिया है। वे लोक जीवन, संस्कार, गीत और परम्परा को वे कथा में पिरोते चलते हैं। वे मंत्रवत मुहावरों एवं लोकोक्तियों को भी सजाते हैं पर उनकी भाषिक सर्जना ही उनकी शक्ति भी है तथा संवेदना व परिवेश की नियंत्रक भी।

धर्मवीर भारती– धर्मवीर भारती हिन्दी के बहुमुखी साहित्यकारों में प्रमुख हैं। कविता, आलोचना, कहानी, उपन्यास नाटक आदि सभी विधाओं में उन्होंने योगदान अपूर्व एवं विशिष्ट है। साहित्यशास्त्र के मूल्यांकन और नये मानदण्डों का निर्माण में उन्होंने सन्तुलित आलोचक के रूप में कार्य किया चेतना तथा बोध के नये आयामों को स्थापित किया। कथाकार के रूप में भारती का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में भारती ने कीर्तिमान स्थापित किया है। *'चांद और टूटे हुए लोग'* इनका प्रथम कहानी संग्रह है। इसमें हरिनाकुश और उसका बेटा, कुलटा, धुआँ कहानियाँ हैं।

इसके बाद भारती ने मुर्दों का गाँव, सगीज नम्बर सात, अगला अवतार आदि कहानियां रची हैं बहुचर्चित कहानी *'गुल की बन्नो'* सन् १९५५ की मानी जाती है। उनके लेखन पर मनोविज्ञान का भी असर देखा जा सकता है।

ये वस्तुत. सामाजिक परिधि की यथार्थता की अभिव्यक्ति देने वाले कहानीकार थे। क्योंकि इन्होंने समाज के कटु यथार्थ को बहुत निकट से देखा है।

१. *आलोचना। ३४, धनंजय वर्मा, पृ० १०६।*

वे प्रारम्भ में प्रगतिशील आन्दोलन के साथ रहे है और नयी कहानियों पर इसकी छाप देखी जा सकती है। इनकी कहानियो मे सामाजिक विकृतियो एव असगतिया के निराकरण और नये सामाजिक रूप विधान की स्थापना की अकुलाहट है, साथ ही व्यक्ति की गरिमा एवं उनके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की भावना भी है।

'गुलकी बन्नो' कहानी अनुभवा के भीतर आधुनिक है और सामान्य के भीतर विशिष्ट। 'गुलकी एक उपेक्षिता नारी' है। पति से उसका नारीत्व उपेक्षित है अन्य लोको से उसका व्यक्तित्व। अन्य लोगो मे होता हुआ, आदि है।

गुलकी की विदाई व जैसे मुहल्ले की बेटी की विदाई हो, इस भाव से सारा समाज और स्वार्थभरी ममता के आँसू बहाता हुआ गुलकी को अपनी स्वार्थ परिधि के बाहर ठेल रहा है किन्तु निमर्म सामाजिकता मे मानवीय स्वर मूल्य का एक स्पर्श दे जाती है और परिवेश की सारी क्रूरता मे एक नया मानवीय उठाकर सवेदना की ओर संक्रान्त बना देता है।[1] 'सावित्री नं दो' की मूल सवेदना एक लड़की के अभिशप्त जीवन की है, परन्तु इसमे भारती ने अभिशाप का एक नया स्तर उद्घाटित किया है। 'बद गली का आखिरी मकान' मे कथा के विस्तार के साथ साथ मुशी जी और बिरजा के पारस्परिक प्रेम-सम्बन्धो के अनेक बिदु उभरते रहते हैं।

अनेक सम्बन्धियो और हरदेई तथा दोनो पुत्रो की मन स्थितियो की तहे उभरती है और क्या सामाजिक दबाव की क्रूरता को झेलती हुई उससे पार पाती हुई व्यक्तिगत *और मनोवैज्ञानिक दबावो से निर्मित ट्रेजडी की ओर सरकती जाती है।* ***आश्रम कहानी*** मे आश्रम का जीवन अपने बाह्य परिवेश और आन्तरिक सगति-विसगति के साथ मूर्त होने के लिये प्रयत्नशील है। जहाँ लेखक की दृष्टि यथार्थ से हटकर रूमानीयत की ओर मुड़ती है। ***हिरनाकुल का बेटा, कुलटा अगला अवतार*** तथा ***मरीज नं. सात*** आदि कहानियो मे भारती की आस्था, विश्वास तथा जीवन से जूझने की जीजिविषा का सकेत मिलता है। इन कहानियों मे गहन मानवीय सवेदना और सजीव सामाजिक चेतना दृष्टिगत होती है। इनकी कहानियो के सबंध मे सुरेश सिन्हा की टिप्पणी द्रष्टव्य है।

'पात्रो एव कथा सूत्रों का अन्योन्याश्रित सबध सीमित करने मे पूर्णतया सफल रहते हैं। इस प्रक्रिया मे सूक्ष्म से सूक्ष्मतर जाने की प्रवृत्ति लक्षित होती है और उसमे संवेदनशीलता उत्पन्न करने और प्रत्येक भाव को स्वानुभूति के स्तर पर लाकर प्रस्तुत करने की प्रयत्नशीलता भी दृष्टिगत होती है, जिसमे एक ओर जहाँ कहानियो मे सश्लिष्ट गुणो का समावेश हुआ, सहज वही उनमे स्वाभाविकता की वृत्ति भी आयी है। इन कहानियो मे पूरे से एक को पालने और एक इकाई के माध्यम से पूरे परिवेश को

1. *हिन्दी कहानी अन्तरग पहचान-रामदरस मिश्र, पृ० ११९।*

खोजने और उसे इकाई मे सम्बद्ध करने की प्रवृति स्पष्टतया लक्षित होती है।'

भीष्म साहनी– भीष्म साहनी हिन्दी कथा के प्रगतिशील परम्परा के शक्तिशाली हस्ताक्षर है। इनके कथा मानस पर प्रेमचन्द एवं यशपाल की गहरी छाप है। भीष्म साहनी की रचना का यथार्थवाद एक तो सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं को प्रभावशाली रूप प्रदान करता है दूसरी ओर चेतना का सस्कार देता है। भीष्म साहनी को अपने कथा साहित्य मे दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ी है।

'भीष्म साहनी, मोहन राकेश तथा अमरकान्त की कहानियो मे नवीन आर्थिक परिस्थितियो का सामने करने वाले निम्न मध्यवर्गीय व्यक्तियो की लाचारी, पीड़ा आत्मप्रवंचना और जिजीविषा आदि मन स्थितियो का कलापूर्ण मार्मिक चित्रण मिलता है।

'भटकती राख' संग्रह की अधिकाश कहानियाँ ऐसी ही अनुभूतियाँ मन पर छोड़ती है जो जीवन की साधारण और रोजमर्रा की बातो को आधार बनाकर लिखी गयी है। साधारण और सामान्य की यह प्रतिष्ठा अपने मे मूल्यवान है लेकिन वह और भी प्रभावहीन एवं सार्थकता रहित हो सकती है। यदि वह अपने मे उद्देश्य एवं साध्य बनकर रह जाये। इसी संग्रह मे दोनो प्रकार की कहानियाँ हैय। जो साधारण के सार्थक और एकदम उसके उल्टे उपयोग को रेखाकित करती है।

भीष्म साहनी ने अपने कथा-साहित्य मे मध्यवर्ग के संस्कारो को बदलने का रचनात्मक प्रयास किया है। *चीफ की दावत* उनकी एक ऐसी कहानी है जिसमे जीवन के साथ छोटे से प्रसंग के माध्यम से व्यापक, क्राइसिस पकड़ने की कोशिश की है। जहाँ पर माँ को **आउट आफ डेट** माना जाता है। अब वह श्रद्धा व प्रेम की पात्र न रहकर उसके प्रति बेटे का दृष्टिकोण बदल जाता है। इसके बावजूद बेटे के प्रति माँ का दृष्टिकोण पूर्ववत स्नेह वात्सल्य भरा रहता है। डा. नामवर सिंह ने लिखा है कि गहराई मे जाकर देखने पर माँ केवल एक चरित्र ही नही, बल्कि प्रतीक भी है। प्रतीक सम्पूर्ण प्राचीन का।

कथाकार जीवन की छोटी-छोटी घटना मे अर्थ के स्तर उद्घाटित करता हुआ उसकी व्याप्ति को मानवीय सत्य की सीमा तक पहुँचा देता है। ऐसे अर्थ गर्भत्व को मै सार्थकता कहता हूँ।

भीष्म साहनी के कहानियो को पात्रो मे जीवन जीने की अदम्य आकांक्षा है। जिनका जीवन संघर्षमय है, विसंगतियों और विकृतियों से भरा हुआ है। फिर भी वे जीवन से मुख नही मोड़ते। जीवन की भयावहता से जूझते है। कहानियो का साधा सरल चित्र अपने आप मे बांधे रहता है।

इनकी कहानी को न तो व्यापक संकेत देने की चिन्ता है, न नये प्रयोग मे उलझने

१. हिन्दी कहानी उद्भव तथा विकास-सुरेश सिन्हा।

की चाहना ही, न बुझारत डालने का शौक है और न ही पहेलियाँ बुझाने का।[1]

शैलेष मटियानी– शैलेष मटियानी मुख्यत आचलिक कथाकार है उनकी कहानियो का संग्रह 'मेरी तैंतीस कहानियाँ' के नाम से प्रकाशित हुआ हैं। इनकी महत्वपूर्ण कहानियो मे 'एक योद्धा शत्रुधारी', 'दो दु खो का एक सुख', 'सुहागिनी बढती हुई खाई', 'माता', 'पोस्टमैन', 'भस्मासुर' आदि है।

लोक कथाओ आचार-व्यवहार तथा इनकी सभ्यता-सस्कृति, रीति-रिवाजो, परिवेश आदि से इनका सम्बन्ध बना रहा है। इन सबको आचलिक परिवेश मे अपनी कहानियो में बड़ी कलात्मकता एव यथार्थ से प्रस्तुत किया है। यहाँ इनकी पैनी दृष्टि का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इनकी कहानियो मे आचलिकता आरोपित न होकर कहानी की आत्मा बनकर उभरती है। कथा बड़ी सहजता व स्वाभाविकता के प्रस्तुत की गयी है। इसलिये यह प्रभावशाली लगती है।

निम्नवर्गीय लोगो को विषय बनाकर शैलेश जी ने जो कहानियाँ लिखी वे यथार्थबोध से युक्त होकर सुझ-बूझ का परिचय देती हैं, इस वर्ग के प्रति अपनी अगाध सहानुभूति प्रकट की है। इन्होने जीवन के अन्धकार पक्ष तथा आलोकमय पूर्ण पक्षो को देखा ही नही है, अपितु इसमे बुरी तरह डूबे हुए हैं। *आज भी इन ग्रामवासियो का नगराकर्षण* कम नही हुआ है ये गाँव छोड़ कर शहर की तरफ तेजी से उन्मुख हो रहे है।

सुहागिनी तथा अन्य कहानी संग्रह गाँवो पर आधारित है। जिसमे लोक कथात्मकता पौराणिकता की गन्ध मिलती है।

शिल्प के प्रति इनकी दृष्टि स्पष्ट रही है। इनकी कहानियो मे अनावश्यक विस्तार नही है। भाषा परिनिष्ठित एव परिमार्जित है। इनकी कहानियाँ जीवन से जुड़ी हुई हैं। इनमे उपेक्षितो, असहायो का जीवन परिलक्षित होता है। बड़े ही धीरे-धीरे दर्द भरे स्वर मे व्यक्त होता हैं। इनकी कहानियाँ सवेदनशील बन पड़ी हैं।

कृष्णा सोबती– नयी कहानी आन्दोलन मे कृष्णा सोबती अकेली कहानीकार है जिन्होने संख्या की दृष्टि से इनती कम कहानियाँ लिखी है। उनकी प्रतिनिधि कहानियो का एक सग्रह सन् ८० मे आया। उनकी एक लम्बी कहानी ***'मित्रो मरजानी'*** और दो कहानियो का एक सग्रह 'यारो के यार', 'तीन पहाड़' के नाम से प्रकाशित हुआ। नयी कहानी आन्दोलन मे अपने को स्थायित्व के एक विशेष पहचान की दृष्टि से कृष्णा सोबती एक महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय कहानीकार है। उनकी कहानियो के पहले और *एकमात्र प्रतिनिधि सग्रह* ***बादलों के घेरे*** मे अपनी लम्बी कथा-यात्रा को समेटती चौबीस कहानियाँ है। प्रेम और स्त्री पुरुष के सम्बन्धो के विषय मे बहुत सारी कहानियाँ लिखी गयी। कृष्णा सोबती की प्रेम सम्बन्धो वाली कहानियाँ, अपने सारे रोमानी, भावुक मिजाज

1 *हिन्दी कहानी अपनी जुबानी-इन्द्रनाथ मदान, पृ० ११४।*

के बावजूद इस तथ्य को उद्घाटित करने पर बल देती है तन का धर्म मन के धर्म से अलग नही होता। कृष्णा ने सोबती से अलग कुछ न कहकर रचनात्मक स्तर पर बहुत सयत ढग से इस विरोध को व्यक्त किया है। मनोवैज्ञानिक कहानियो मे पत्नी और प्रिया वाला स्थूल और समूचे जीवन को ढोग मे भर देने वाले विभाजन को वे अस्वीकार करती है। *'बादलों के घेरे'* ऊपरी तौर पर बेहद रोमानी-सी कहानी है। उसकी नायिका मन्नो तपेदिक की मरीज है जो अपने ही परिवार के लोगो की उदासीनता की शिकार भवाली के सिनेटोरियम मे पडी है।

कृष्णा सोबती स्त्री को उसके पूरे सामाजिक सन्दर्भो के बीच अकित करती है। कि दैहिक तथा लौकिक सुखो को छोटा करके देखने मे यकीन नही करती, खास तौर से किसी आध्यात्मिक और अमृत जीवन के नाम पर। 'बदली बरस गयी' की युवा होती कल्याणी अपनी साध्वी माँ का रास्ता छोड़ कर उसी घर मे वापस आने का निर्णय लेती है, दादी मा चाची, बुआ के घर मे फिर से जहाँ लोगो के दश और उत्पीड़न से भाग कर माँ आश्रम मे गयी है। इस वापसी मे ही उसे अपना भविष्य दिखायी देता है क्योंकि उसी मे कही उसके अपने घर की संभवनाएँ छिपी है। 'बहने', 'आजादी सम्मोजान की' और 'गुलाब जल गड़ेरिया' अलग ढंग से स्त्री की यातना के सामाजिक सदर्भो को उद्घाटित करती है। 'ऐ लड़की', माँ-बेटी के बीच संवाद के रूप मे लिखित कहानी है, लेकिन यह संवाद दो पीढियो के बीच न होकर दो मूल्य-दृष्टियो के बीच होता संवाद है। कहानी मे जो स्थितियाँ है, एक बूढी माँ और दुनियाँ जहान से कही एक अविवाहित प्रौढा जिसे बेटी वे आसानी से उसे अस्तित्ववादी मुहावरा दे सकती थी।

स्त्री की अस्मिता और मुक्ति का सवाल शुरु से ही कृष्णा सोबती का मुख्य रचनात्मक विषय रहा है।

❖❖❖

5

नयी कहानी के वस्तुतत्व का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

नयी कहानी और उसके रचनाकारो विशेषत चर्चित एव प्रमुख रचनाकारो की रचनाओ के अनुशीलन से उनमे वर्णित वस्तुतत्त्व का साक्षात्कार हमे होता है परन्तु इसके पहले की हम वस्तुतत्व की सम्यक् जाँच-परख की ओर अग्रसर हो जरूरी है कि हम तत्कालीन सामाजिक/राजनीतिक परिवेश से परिचित हो। इस दिशा मे हम कतिपय समर्थ समीक्षको, चिन्तको की सोच से अपनी बात को स्पष्ट करने और एक स्पष्ट सोच को विकसित करने की भरसक कोशिश करना चाहेगे। समीक्षक *डॉ० बच्चन सिंह* ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास मे *लिखा है कि '५० के बाद क्रमश वैयक्तिकता का दबाव बढ़ता गया। कुछ देर के लिये स्वतत्रता प्राप्ति का उल्लास आचलिक कहानियो* के अभिव्यक्त हुआ। पर वह कहानी के विकास का अस्थायी पक्ष था। स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाले सुख के प्रति रोमानी मोह टूट गया। व्यक्ति एक तरह के कटाव या अलगाव के कटघरे मे खड़ा हो गया। छठे दशक मे जो तनाव या अलगाव आया वह मूल्यो से पूर्णत विच्छिन्न नही हुआ था। किन्तु ६२ के चीन-भारत युद्ध के समय रोमेंटिक सरकार ने हमे अतिम रूप से मोहमुक्त कर दिया। मार्क्स और फ्रायड के प्रभावो से आगे बढ़ कर अस्तित्ववादी दर्शन ने मनुष्य के बुनियादी सवालो की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। उस दर्शन के कारण हम नये यथार्थ को पहचानने की कोशिश करने लगे।'[१]

समर्थ समीक्षक *डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी* ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दी साहित्य *और सेवदना का विकास मे कहा है कि नयी कहानी के पुरस्कर्ताओ का बल बराबर इस पर रहा कि कहानी के अन्तर्गत अपनी बात को सीधे-सीधे कहा जाय।*'[२] यह सही है कि नयी कहानी अनुभव की प्रत्यक्षता पर बल देती है *तथा सपाटबयानी* को अपील भी करती है और आज वह उपभोक्ता सभ्यता का अग भी होती गयी है, इसी से इसकी सामाजिक सोद्देश्यना भी जाहिर होती है। *डॉ. विजयपाल सिंह* के अनुसार—

'स्वतत्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय मानस मे व्यक्ति स्वातत्र्य, नये राष्ट्र और नये मनुष्य से सम्बन्ध जो भावाकुल, आदर्शवादी और कल्पनाप्रवण आकाक्षाएँ और अभिलाषाएँ

---

१ *आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ० बच्चन सिंह, पृ० ३५८।*

२ *हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास-डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी।*

थी, नये मूल्यो एवं प्रतिमानो के निर्माण की जो ललक थी, वह स्वातत्र्योत्तर काल मे मूल्यहीनता अनास्था और विघटन के रूप मे हमारे समक्ष आयी। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् उसमे विषादमय परिवेश का निर्माण होता हुआ दीख पड़ा।'

डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव ने नयी कहानी के वैशिष्ट्य का उल्लेख करते हुए लिखा है— 'इसके कथानक मे रुढि का परित्याग है, इसके कथा-सदर्भ असम्बद्ध तथा अनिश्चित से है। इसके चरित्र-चित्रण मे जटिलता का साक्षात्कार है, चरित्र कहानी के भाव-बोध का वाहक यंत्र नही है। उसमे सवेदना का आधुनिक धरातल है जहाँ रचनाकार दिखने के बजाय अनुभव किया जाता है। इसमे वास्तविकता का चित्रण या यथार्थबोध की अभिव्यक्ति उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ मे होती है। इसलिये व्यक्ति को एक सामाजिक संदर्भ मे चित्रित करने का प्रयास आज की कहानी मे उपलब्ध है। यही कारण है कि रचना-प्रक्रिया के प्रति इतनी सी चेतनता विकसित हुई है। आज की कहानी मे आधुनिक मनुष्य के अन्वेषण की समस्या है आधुनिक कहानी के कथानक, चरित्र कौतूहल आदि के रूढ नियमो को तोड़कर जिस ऋजु एवं सूक्ष्म शिल्प का आविष्कार किया है, उसके द्वारा आधुनिक कहानीकार युग की संश्लिष्ट जटिलता और उसके प्रति अपना अनुभूति-प्रक्रिया को अपेक्षित तीव्रता के साथ व्यक्त कर सका है।'[२]

जीवन की व्यापक दृष्टि और सघन मानवीय संवेदना से रची जाती हुई नयी कहानी मे व्यक्ति के अहं, सामाजिक संघर्ष और विविध स्तरीय अर्न्तविरोधो को व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता हमे दिखायी देती है। यथार्थ परिवेश और भोगे हुए यथार्थ का चित्रण उसे अतिरिक्त बनाता है। यथार्थ परिवेश के प्रति सजगता तथा अनुभूति की गहन प्रगाढता ने नयी कहानी को जीवन एवं समाज की विषम परिस्थितियो से जोड़ा जिससे इन कहानियो मे समाज की आशा-निराशा, विश्वास-आकांक्षा की रचनात्मक अभिव्यक्ति सम्भव हो पायी। प्रेमचन्द युगीन ग्रामोन्मुखता यहाँ व्यापक जनचेतना, आम आदमी की सहजता मे उभरी परन्तु घटना की प्रमुखता यहाँ नही है। यहाँ संघर्ष, संवेदना, द्वन्द्व और घुटन संत्रास, एकाकीपन का बोध, कुठा, हताशा,तथा निरुपायता, अलगाव का दंभ मुखर हो गया है। यहाँ व्यक्ति का व्यथित अन्तर्मन विविध रूपो, सन्दर्भो मे उभरने लगा है। यहाँ अमानवीय होती हुई परम्परा और रुढ़ि से छटपटाहट का बोध तीव्रतर हो जाता है। यहाँ सम्बन्धो के उपर के बाहर मुलम्मे टूट जाते हैं प्रतीक, बिम्ब, अलंकार पीछे रह जाते है। बेलाग, बेलौस, कथन-सीधी सपाटबयानी यहाँ उभरती है पर भाषिक संवेदना का यह इकहरापन सोच को गहरा होने नही देता। कहानी सूचनापरक होने लगती है। तथा यह आधुनिकता के शोर-शराबे, मूल्यो के विघटन और बेचारगी

१ *कथा एकादशी की भूमिका-डॉ० विजयपाल सिंह, पृ० १८*

२. *हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया-डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव, पृ० ३६।*

की ओर बढ़ते हुए मानव को केन्द्र मे रखकर भी व्यावसायिक, सूचनात्मक, संचार माध्यमो जैसी होती जाती है। जीवनानुभूति की यह सशक्त माध्यम पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से प्रसार पाती गयी है। आज की युवापीढ़ी का पाठक परिवेश की जटिलता का सन्दर्भ तो उसमे पाता है परन्तु उद्देश्य की परिणति की शुभेच्छा के सकेत उसे खुद, खोजने, समझने पड़ते है। उसे कहानी मे निजता को महसूस करने का आभास तो मिलता है पर समाज को जोड़ने, सत्रास से मुक्ति पाने, अजनबीपन से मुक्त हो जाने, अकेलेपन से विमुक्त होकर धारा मे जुड़ने का अन्दाज उसे मिल नही पाता। यथार्थ के नाम पर नगी सचाई को उकेरते जाने, उसे जानने-पहचानने भर से साहित्य का प्रयोजन सम्पूर्णता नही पाता। अतएव आज के परिवेश मे यथार्थ को स्वीकारने का जीवट और परिवर्तन की पहल भी नयी कहानी को करनी ही होगी।

नयी कहानी ने परम्परा और एकरसता तो तोड़ा तथा चुप्पी को नया स्वर देने का उपक्रम किया। मानवीय अनुभवो, यथार्थ के विविध आयामो और समकालीन विसगतियो से साक्षात्कार एवं टकराव करती है नयी कहानी। इसके बावजूद भी नयी कहानी का दायरा सीमित ही रहा। पश्चिम के सास्कृतिक दबाव ने भारतीय समाज की पहचान को धुधला कर दिया।

नये कथाकारो ने मध्यमवर्ग के ही जीवन को भरसक चुनने का उपक्रम किया पर उसे भी पूरी समग्रता से वे व्यक्त नही कर पाये। जो लोग परम्परवादी थे परन्तु समाज के बदलते तेवर, विश्वासो के सन्निकट रहकर गावो मे जी रहे थे नयी कहानी ने उनकी बेचैनी और सघर्ष की जनसख्या विस्फोट से उपजी बेरोजगारी, चकबदी दलालो, बिचौलियो के उपर नयी कहानी ने कम ही प्रश्न उठाये। नयी कहानी के यशस्वी रचनाकारो ने प्रामाणिक यथार्थ की खोज को सर्वोपरि माना। जिससे उन्होने नवीन मानव मूल्यो और युगीन यथार्थ को विरचित किया। पर यह दायरा सीमित ही रह गया। नयी कहानी के फलितार्थ और विस्तार को रेखाकित करते हुए राकेश वत्स ने मच-७८ के अक मे लिखा है कि 'यह आदमी के चेतना, उर्जा एव जीवन्तता की कहानी है। उस समझ, एहसास और बोध की कहानी है जो आदमी को बेबसी, वैचारिक, निहत्थेपन और नपुसकता से निजात दिलाकर पहले स्वयं अपने अन्दर की कमजोरियो के खिलाफ खड़ा होने के लिये तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेते है। जो साहित्य की सार्थकता के प्रति समर्पित है कि साहित्य सकल्प और प्रयत्न के बीच की दरार को पाटने का एक जरिया है। विचार एव व्यवहार के बीच का एक पुल है। यदि वह पुल जनता के बीच पहुँचकर, उसे सचेत और सक्रिय करने की भूमिका नही निभाता तो उसका होना या न होना एक बराबर है।'[1]

1 मच-७८, राकेश वत्स, पृ० ३७।

साहित्य और समाजशास्त्र के बीच एक प्रगाढ और विशाल गटबधन है परन्तु सामाजिक यथार्थ को देखने के तरीके साहित्य और समाजशास्त्र के भिन्न-भिन्न है। दोनो मे मनुष्य परिवार, संस्था, समाज रूपायित होता है। परन्तु साहित्य वाह्य मे अन्तर की ओर प्रस्थान है। जबकि समाजशास्त्र वाह्य रूपाकारो मे होने वाले परिवर्तन, परिवर्धन को परिस्थिति काल के विशेष परिप्रेक्ष्य मे जाँचने-परखने का उपक्रम करता है। वैयक्तिक रचनाशीलता और निजी बोध अपनी रचना मे परिवेश की सचाई मे समाज को चेताकर उसे रूपायित करने की पहले है। जबकि समाजशास्त्रीय समीक्ष परिणामो से कारणो का खोज की ओर उन्मुख होती हुई एक विशष प्रक्रिया है। साहित्यकार की कल्पना एक खास ढग से किसी समाज की छानबीन करके उसके विभिन्न पहलुओ के बारे मे नवीन जानकारी, सुबोध कल्पना के माध्यम से सम्प्रेषित करती है, जो समाज की जानकारी मे एक विशेष प्रकार की समझ को उत्प्रेरित करती है। कुछ नया जोड़ती है। अनुभूति से तथ्य को सम्पन्न करती है।

नये कहानीकारो ने प्रेमचन्द की सामान्य, सहज-सरल, सपाटबयानी वाली भाषा का उपयोग करने की कोशिश की है पर कथा-पटल परिवेश के अनुसार भाषा मे भी परिवर्तन होता रहा है। समाज की इकहरी भाषा का प्रयोग साहित्य मे आकर लाक्षणिता, व्यंग्य और वक्रोक्ति से अपना रूप बदलने लगता है। मात्र घरेलू, गँवई भाषा का प्रयोग जनभाषा नही है। साफगोई, सहजता जनभाषा की पहचान है परन्तु यह भाषा सीधी, सम्प्रेषणीय एवं स्पष्ट होनी ही चाहिये। जनभाषा मे कथा को नया तेवर देने का उपक्रम करने वाले नये कथाकार बोल-चाल की आम-फहम भाषा का उपयोग करके अपनी सामाजिकता और जनपक्षधरता के सरोपकारो से जुड़ते रहे है। सघर्ष के दिनो की भाषा, सामान्य अवसरो की भाषा, पीड़ा, दर्द, करुणा को अभिव्यक्त करने की भाषा मे परिवर्तन होता चलता है। और यह परिवर्तन सामाजिक सोद्देश्यता को प्रवर्तित भी करता है। सकेनित भी करता है। जनता का आदमी ही जनभाषा का सम्यक् प्रयोग कर सकता है। अनुभव का ताप और जनपक्षधरता ही भाषिक विधान की सम्यक् प्रस्तुति कर सकती है।

भाषा चूँकि केन्द्रीय माध्यम है। वह अनुभव और सम्प्रेपण दोनो का माध्यम होती है। एक तरफ भाषा से ही अनुभव एवं सवेदना को जाना, समझा, पकड़ा जा सकता है और दूसरी तरफ भाषा ही वह माध्यम भी है जिससे परिवेश, विसंगति, घुटन और संत्रास को अभिव्यक्त भी किया जा सकता है। इस प्रकार नये कहानीकारो ने भाषा के रचनात्मक परन्तु सीधे स्वरूप को न केवल ग्रहण ही किया वरन् उसमे अपने अनुभव संसार को पुष्ट करके भाषा को और अर्थसक्षम बनाते हुए, उसी तीक्ष्णतर होते जाते औजार के माध्यम से अपनी रचनाओ को तरासने का भी काम बखूबी करने का सत्प्रयास भी किया।

नयी कहानी का परिवेशगत यथार्थ

नयी कहानी मे अपने परिवेश की स्थिति को गहराई के साथ अनुभव किया है क्योंकि बदलते परिवेश को रेखांकित करने वाली नयी पीढ़ी ने इस पूरे सक्रमण को भोगा था तथा उसे जीवन्त सन्दर्भों मे रूपायित करने वाली सवेदना के साथ अभिव्यक्त किया था। इसलिये नयी कहानी मे परिवेश मे परिवेश या यथार्थ की जितनी जागरुकता और संवेदनशीलता है उतनी पुरानी कहानी मे नही थी। परिवेश की प्रामाणिकता की सही तलाश ने नयी कहानी मे जीते-जागते व्यक्ति को उसकी समग्रता के साथ प्रकट किया। रचनात्मक स्तर पर नयी कहानी ने व्यक्ति के माध्यम से परिवेश की व्यापकता को पकड़ने की कोशिश की है तथा व्यक्ति को अपने समय के परिप्रेक्ष्य मे देखा। इस प्रकार नयी कहानी मे 'व्यक्ति को उसकी सामाजिक पीठिका और परिवेश मे रखकर देखा था। और सामाजिक यथार्थ के बीच एक व्यक्ति को प्रतिष्ठित करने की कोशिश की थी।'[1]

नयी कहानी मे जिस परिवेश का चित्रण हुआ है वहाँ किसी प्रकार का लेखकीय आरोपण प्रतीत नही होता, अपितु परिवेश की सचाई प्रकट होती है।

मोहन राकेश की कहानी *'मलबे का मालिक'* मे विभाजन से उत्पन्न विभीषिका का यथार्थपरक चित्रण है जिससे तत्कालीन परिवेश हमारे सामने उपस्थित हो गया है। *'मलबे का मालिक'* मे बुड्ढे मुशतुमानगनी को उसके समग्र परिवेश मे अभिव्यक्त किया गया है। अपने मकान को देखने के लिये एक बार लाहौर से कुछ लोग अमृतसर आए उनमे गनी *मियाँ भी थी, जो अपने उस घर की सूरत देखना चाहते थे जहाँ* उनके लड़के चिरागदीन और उसके बीबी-बच्चो को मौत के घाट उतार दिया गया था। *सात वर्ष बाद भी गनी मियाँ के मन मे उस मकान के प्रति मोह बना हुआ था। गनी मियां* अमृतसर आकार मनारी से कहता है—

'हाँ बेटे। मैं तुम लोगो का गनी मिया हूँ, चिराग और उसके बीबी-बच्चे तो नही मिल सकते मगर मैने कहा कि एक बार मकान की सूरत ही देख लूँ।' और उन्हे टोपी उतार कर सिर पर हाथ फेरते हुए आँसुओ को बहने से रोक लिया।[2] गनी अपने उस मकान तक जाता है जो मलबे के रूप मे बदल गया है। *और जिसका मालिक* रक्खा पहलवान बना हुआ है। गनी कहता है— भरा-पूरा घर छोड़ कर गया था और आज यहाँ मिट्टी देखने आया हूँ। बसे हुए घर की यही निशानी रह गई है। तू सच पूछे रक्खे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़ कर जाने को जो नही करता।[3]

१ कहानी स्वरूप एव सेवदना-राजेन्द्र यादव, पृ० ४३।

२ नये बादल-मोहन राकेश, पृ० ४४।

३ वही, पृ० ५३।

इस प्रकार गनी मियाँ विभाजन के आतंक में पीड़ित मानसिक वेदना को लिये हुए अपने यथार्थ रूप में प्रकट हुआ है तथा विभाजन की क्रूरता और अमानवीयता की कहानी को साकार करता है। *विभाजन के समय पूरा परिवार विच्छिन्न हो गया,* पूरा परिवार ही तहस-नहस हो गया। व्यक्ति और परिवेश को जीवन्त रूप देने वाली इन पंक्तियों में कितनी प्रमाणिकता है—

'अब साढे सात साल में उनमें से कई इमारते तो फिर से खड़ी हो गयी, मगर जगह-जगह मलवे के ढेर अब भी मौजूद थे। नयी इमारत के बीच-बीच में मलवे के ढेर अजीब ही वातावरण प्रस्तुत करते थे।'

गजेन्द्र यादव की कहानी ***'बिरादरी बाहर'*** में पारस बाबू एक पिता के रूप में परम्परागत मूल्यों से चिपक हुए प्रतीत होते हैं। उनकी लड़की मालती ने गैर जाति के लड़के शादी कर ली थी। *पारस बाबू को यह पसन्द नहीं था। शादी को रोकने के लिये प्रयत्न किये गये लेकिन शादी हर्षोल्लास से अपने नियत समय पर ही हुई।* इन सब बातों से पारस बाबू के मन में बड़ी खीझ उत्पन्न उत्पन्न हो गयी थी। वे कह रहे हैं—

'कुछ नहीं' कोई नहीं कोई किसी का नहीं ही है, न किसी को प्रतिष्ठा की चिन्ता है। न माँ-बाप की लड़के अपनी बहुओं में, बच्चों में मस्त हैं.....लड़कियाँ अपने-अपने घर को देखती हैं।'[२] पारस बाबू अपने परिवार में धीरे-धीरे अकेले होते जा रहे थे। परिवार के दूसरे सदस्य उनकी परवाह नहीं करते थे। अतः उन्हें क्रोध आता था। एक रोज जब वे खाना खा रहे थे तो उनकी थाली में पूरियाँ खत्म हो गईं तो किसी ने ध्यान नहीं दिया। उपर शोरगुल हो रहा था। संजय, मालती आदि खाना खा रहे थे। पारस बाबू से न रहा गया वे उपर आकर गुर्राकर बोले— 'किसी को ध्यान नहीं कि यहाँ भी कोई बैठा है . सब के कान फूट गये हैं।'[३]

इस प्रकार इस कहानी में ***पारस बाबू*** को अपने समग्र परिवेश में उपस्थित किया गया है। वे परम्परागत मूल्यों का समर्थन करने के कारण अपने को बिरादरी बाहर अनुभव करते हैं। उनके परम्परावादी विचार, नयी पीढ़ी द्वारा उनकी उपेक्षा और पारस बाबू का एक बाप की हैसियत से निकला हुआ आक्रोश उन्हें साकार रूप से चित्रित करता है। पर पारस बाबू की ही नहीं पूरी पुरानी पीढ़ी की यही नियति है जो अब तक पुराने मूल्यों के प्रति आज भी मोहग्रस्त है।

उषा प्रियम्वदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में सुबोध की दो स्थितियों

१ *नये बादल-मोहन राकेश, पृ० ४५।*

२ *किनारे से किनारे तक-राजेन्द्र यादव, पृ० १३३।*

३. *किनारे से किनारे तक-राजेन्द्र यादव, पृ० १३५।*

को चित्रित किया गया है। एक उस समय की जब वह नौकरी करता था और दूसरी जब वह बेकार होकर घर बैठ गया था। जब तक सुबोध नौकरी करता था तो घर *का वातावरण ही दूसरे ढंग का था। माँ खाने के लिये इन्तजार करती थी, उसे सभी* सुविधाएँ दी गयी थी लेकिन जबसे उसने नौकरी छोड़ी है तबसे घर का रवैया ही बदल गया है। ऐसा लगता है जिन्दगी ने उसे गुलाब के फूल दिये थे, लेकिन उसने स्वय उन्हे ठुकरा दिया था और अब शोभा भी [1] उसने वह परिवर्तन स्वय देखा। उसके कमरे की सभी चीजे वृदा के कमरे मे चली गयी। अब न उसका खाने के लिए *इन्तजार होता था और न उसके किसी बात को महत्व ही दिया जाता था।* इससे अनुभव होता है कि अपने ही घर मे उसके साथ नौकरो जैसा व्यवहार किया जाता है। वह क्रोधित होकर घर से निकल पड़ता है। बाहर एक साइकिल मे टकराने के कारण उसे चोट लग जाती है। वह शाम तक पास वाले पार्क मे पड़ा रहता है। लेकिन घर वाले उसका पता नही लगाते। जब वह लौटता है तो देखता है— दरवाजा खुला था, बरामदे *मे धीमी रोशनी थी। चौके में अँधेरा। वह अपने कमरे मे आया, कोने मे मैले कपड़े* का ढेर था। ढीली चारपाई, गन्दा बिस्तर, तिपाई पर खाना ढंका हुआ रखा था।'[2] इस प्रकार बेकारी के कारण घर वालो का बदलता दृष्टिकोण इस कहानी मे दिखाया गया है। जो स्वाभाविक एव यथार्थवादी है। सुबोध की मन स्थिति एव उसके क्रियाकलापो की कहानी लेखिका ने पूरे परिवेश के साथ प्रस्तुत किया जो बेरोजगारी से पीड़ित आज *के युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।*

निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' मे लतिका अपने अतीत से मुक्ति के लिए बेचैन है। वह स्कूल मे अध्यापिका है और गर्मियो की छुट्टियो मे भी वही रहती हैं। जब लड़कियाँ पूछती हैं— 'आप इस साल भी छुट्टियो मे यही रहेगी तो लतिका को बहुत कुछ याद आ जाता है। वह बोल नही पाती है। उसका अकेलापन और उसकी विवशता उसे झकझोर देती है। उसे लगता है, कही दूर बर्फ की चोटियो से परिन्दो के झुण्ड नीचे अनजाने देशो की ओर उड़े जा रहे है। इन दिनों अक्सर उसने अपने कमरे की खिड़की से उन्हे देखा है— 'धागे मे बंधे चमकीले लट्टुओ की तरह वे एक लम्बी, टेढी, मेढ़ी कतार मे उड़ जाते है' पहाड़ो की सुनसान नीरवता से परे उन विचित्र शहरो की ओर जहाँ शायद वह कभी नहीं जायेगी।[3] लतिका अपनी स्थिति को जान नही पाती है उसका दिल कही भी टिक नही पाता है, भटकता रहता है। इस प्रकार लतिका जिस स्थिति मे रहती है उसे उन्ही स्थितियो के साथ रूपायित किया गया है।

१ *जिन्दगी और गुलाब के फूल-उषा प्रियम्वदा, पृ० १६५१*

२ *वही, पृ० १६७।*

३ *परिन्दे-निर्मल वर्मा, पृ० १२९।*

जिस अकेलेपन, भय और मुक्ति की इच्छा को वह महसूस करती है, वह पूरे परिवेश के रूप मे कहानी मे प्रकट हुई है।

रविन्द्र कालिया की कहानी 'बड़े शहर का आदमी' मे बड़े शहर मे रहने वाले व्यक्ति की मानसिक दशाओं को चित्रित किया गया है। सुबह उठते दफ्तर की बाते, जेब मे स्लिपिग पिल्सा रखना, बाए के व्यक्तित्व की चर्चा करना, आत्महत्या के बारे मे सोचना आदि परिवेश मे कहानी के जिस नायक को प्रस्तुत किया है, वह सचमुच महानगरीय बोध से पीड़ित व्यक्ति है और रविन्द्र कालिया ने इसे तटस्थ रूप मे रखा है। ***पी० के०*** कहता है— अब तुम भागमभाग बाथरूप मे घुस जाओगे। वक्त पर दफ्तर पहुँच जाओगे तो सोचोगे जीवन सार्थक हो गया। किसी मजाक पर हंस पड़ोगे। किसी दुर्घटना पर उदास हो जाओगे, दफ्तर मे छूटकर लौटोगे तो अटैची से प्रेमिकाओ के खत निकाल कर पढ़ने लगोगे।[1] पी० के० का इस प्रकार बदलना शहरी यथार्थ का सही अकन है। बड़े शहर के आदमी की जिन्दी मशीनी हो गयी है और वह उसी रफ्तार से सोचता भी है।

इस प्रकार नयी कहानी मे व्यक्ति को उसके परिवेश मे ही अकित किया गया है। तथा नयी कहानी का व्यक्ति अपनी असलियत के साथ हमारे सामने आता है। अतः नयी कहानी परिवेश के माध्यम से व्यक्ति और व्यक्ति के माध्यम से परिवेश को पाने की प्रक्रिया है।[2]

उपर्युक्त कहानियो के अतिरिक्त अपने परिवेश के समग्रता के साथ उपस्थित होने वाले पात्रो मे ***गुलरा के बाबा*** 'मारकण्डेय के', 'तीसरी कसम रेणु का', 'हीरामन', 'वापसी', 'उषा प्रियम्वदा' के गजाधर बाबू आदि है। नयी कहानी की यह महत्वपूर्ण उपलब्धि थी कि उसने प्रामाणिक परिवेश के आधार पर कहानी की रचना-प्रक्रिया को ही बदल दिया जिसके फलस्वरूप कहानी मे आस-पास के व्यक्तियो की भीड़ नजर आने लगी। इन कहानियो मे कही भी आरोपित व्यक्तित्व की छाप नही है। पूरा परिवेश व्यक्ति से सम्पृक्त है।

नयी कहानी से पूर्व कहानी मे परिवेश की तलाश काल्पनिक एवं कलात्मक थी। वहाँ परिवेश का निर्माण किया जाता था, अतः उसकी प्रामाणिकता का प्रश्न ही नही उठता। लेकिन नयी कहानी ने रचनात्मक स्तर पर परिवेश की सही पहचान को तलाश करना आरंभ कर लिया था। ताकि कहानी के परिवेश मे समाया हुआ झूठापन धुल जाय और कहानी अपनी संवेदना को जीवन की वस्तुस्थिति से सम्पृक्त कर सके। नयी कहानी मे समय के साक्षात्कार की उत्कट बेचैनी एवं अकुलाहट आरंभ से ही रही

---

१ साठ के बाद की कहानियाँ-स० विजयमोहन सिंह, पृ० २५२।

२. कहानी-स्वरूप और संवेदना-राजेन्द्र यादव, पृ० ४४।

है और इस कारण नयी कहानी की विकसित चेतना मे रचनात्मक शक्ति की प्रौढता एवं गंभीरता आ गयी है। स्वातंत्र्योत्तर सन्दर्भों के विभिन्न पक्षो को नयी कहानी के परिपेक्ष्य मे देखे तो प्रतीत होगा कि नयी कहानी अपने समय को मापती हुई तथा सन्दर्भों को *व्याख्यायित करती हुई चलती है।* परिवेश के *आन्तरिक स्पर्श* को *स्पष्टता* एव सार्थक व्यजना की प्रक्रिया से गुजरती हुई नयी कहानी शुभ-बोध को मूर्तरूप देती है। ***अमरकान्त*** की कहानी 'डिप्टी कलक्टरी' मे पीड़ा भरी प्रतिभा को सामयिक परिवेश के जीवन्त रूप मे रूपायित किया गया है। आजादी के पश्चात मध्यमवर्ग मे जिन महात्वाकांक्षाओ और अन्तर्विरोधो का जन्म हुआ उसका अर्थपूर्ण चित्रण इस कहानी मे है।

आधुनिक जीवन के परिवर्तित परिवेश की प्रमाणिकता को ***कमलेश्वर*** की कहानी 'खोई हुई दिशाएँ' प्रस्तुत करती है। चन्दर इलाहाबाद से दिल्ली आता है। देश की राजधानी मे लगभग तीस वर्ष रहने के पश्चात उसे लगता है कि सब कुछ होते हुए भी देश अपना नही है। उनके लिये सब अपरिचित है और वह उस महानगर मे रहकर अकेलापन महसूस करता है— *'तीन साल मे ऐसा कुछ भी नही हुआ, जो उसका अपना हो, जिसकी कचोट अभी तक हो, खुशी या दर्द अब भी मौजूद हो, रेगिस्तान की तरह फैली तनहाई है, अनजान सागर तटो की खामोशी और सूनापन है और पछाड़ खाती दिनभर की थकान के बाद वह लौटता है तो वह अपनी पत्नी को भी खोई-खोई नजर से देखता है अपितु वह बदहवासी मे बहता हुआ, डरी हुई आवाज मे अपनी पत्नी निर्मला से पूछता है— मुझे पहचानती हो? मुझे पहचानती हो निर्मल'?*[१]

इस प्रकार की कहानी मे आधुनिक *जीवन से उत्पन्न विसगतियो को यथार्थ रूप* मे प्रस्तुत *किया गया है। हमारी जिन्दगी मे, हमारे आस-पास के परिवेश मे, सम्बन्धो* मे कितना बदलाव आ गया है तथा व्यक्ति के बीच कितना अकेलापन, घुटन और निराशा की स्थिति पैदा हो गयी है। इन सबको यह कहानी सशक्त ढग से अभिव्यक्त करती है।

नयी कहानी का परिवेश सामाजिक चेतना से जुड़ा है। यद्यपि पारिवारिक सबधो का प्रभाव सामाजिक जीवन पर भी पड़ता है लेकिन व्यापक रूप से समाज जीवन के सभी पहलुओ से सबद्ध *रहता है।* राजनैतिक, आर्थिक और सास्कृतिक स्तर पर होने वाले विभिन्न परिवर्तनो से समाज *का गहरा सम्बद्ध रहता है। नयी कहानी ने परिवेश* को व्यापक रूप देने के लिये समाजगत यथार्थ का विभिन्न कोणो से स्पर्श किया है। आजादी के पश्चात परम्परागत सामाजिक मूल्यो का विघटन हुआ है। विघटित जीवन मूल्यो के परिणामस्वरूप परम्परागत स्थापनाओ एव आदर्शो का खण्डन हुआ है। यह प्रक्रिया परिस्थितिगत यथार्थ का परिणाम है *और नयी कहानी* ने इसे जीवन्त रूप मे

१ *खोई हुई दिशाएँ-कमलेश्वर, पृ० ३४।*

रेखांकित किया है।

नयी कहानी के परिवेशगत यथार्थ का मूल्यांकन करने पर निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता का भाव नयी कहानी में ही उत्पन्न हुआ है। पुरानी कहानी में परिवेश के प्रति जागरुकता नहीं है वहाँ परिवेश कथाकारों द्वारा निर्मित था। पुरानी कहानी में वातावरण का अवश्य चित्रण हुआ है लेकिन वह पृष्ठभूमि के रूप में है। इसके साथ ही कहानियों में कल्पना, अलंकारिकता और आरोपित विचार-दर्शन के कारण वे परिवेश से असम्पृक्त रही। आजादी के पश्चात देश नये सन्दर्भों में जुड़ गया था और नयी कहानी इन्हीं परिवर्तित जीवन सन्दर्भों की उनके परिवेश में तलाश की है। अतः नयी कहानी का परिवेश मूल रूप में अपने समय से साक्षात्कार का है। नयी कहानी में आज के वातावरण में साँस लेने वाले व्यक्ति की तस्वीर है। परिवेश के प्रति ऐसी निर्ममता पुरानी कहानी में दृष्टिगोचर नहीं होती। नयी कहानी में व्यक्ति के माध्यम से परिवेश और परिवेश के माध्यम से व्यक्ति को खोजा गया है, प्रामाणिकता के साथ। नयी कहानी में व्यक्ति अपने समग्र परिवेश में उपस्थित हुआ है। नयी कहानी ने ग्राम, शहर और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जिन कहानियों का सृजन किया है। उससे नयी कहानी के परिवेश की विविधता स्पष्ट होती है। परिवेश के प्रति जागरुकता, ईमानदारी एवं प्रमाणिकता ही नहीं कहानी की उपलब्धि है। नई कहानी बदलते समय, सामाजिक सन्दर्भों का आइना बनती है और मध्यमवर्ग की जिन्दगी का पारदर्शी स्वरूप दिखाती है। परिवर्तन को देखती, भोगती समझती है तथा नये अन्दाज में रचनाशील होती है।

नयी कहानी की चेतना और व्यक्ति-मन की उलझन

नयी कहानी की चेतना समकालीन भारतीय मध्यमवर्ग की उसके जीवन की यथार्थ चेतना है। यह चेतना रचनाकार के अनुभव से जुड़ी हुई है। यह चेतना जीवन-परिवेश के दबाव, परिवर्तन, रिश्तों, मूल्यों, संवेदनाओं से निर्मित होती है। पूर्ववर्ती कथाकारों ने भी परिवेश के आधार पर कथा-सृजन किया था। उनके सृजन में परिवेश का खुलापन दिखायी देता है, परन्तु घनत्व और जटिलता को उभारने में वे पीछे ही रह गये हैं। प्रेमचन्द में परिवेश का घनत्व उनकी परवर्ती कथाओं पूस की रात, कफन तथा शतरंज के खिलाड़ी, में दृष्टिगत होता है। *'अज्ञेय' इलाचन्द्र जोशी* तथा *जैनेन्द्र* की कथाओं में घनत्व तो है पर वह घनत्व व्यक्ति-मन में सामाजिक जीवन की पहचान करा पाने में सक्षम नहीं हो पाता। उपेन्द्र नाथ अश्क में यह घनत्व व्यक्ति-मन को समाज से जोड़ता है। यशपाल केवल परिवेश को पूरक रूप में ही उभारने का उपक्रम करते प्रतीत होते हैं। परिवेशगत यथार्थ और अनुभूति की गहराई से ही नयी कहानी अपनी अलग पहचान बना पाती है। नयी कहानी सामाजिक जीवन की पहचान व्यक्ति-मन से उठाती है और उसे परिवेश द्वारा सम्पूर्ण करती हुई-सी प्रतीत होती है। यहाँ विरोध, सोच में

समझ में भी है और उसकी अभिव्यक्ति के स्तरों में भी। नयी कहानी स्वतत्रता के बाद के भारतीय मध्यमवर्ग के जीवन की कहानी है, जो अपने रचनाकारों के वैयक्तिक अनुभवों से जुड़कर अनेक रूपों, अनेक रगों में अपना कलेवर बुनती है। 'नयी कहानी की चेतना परिवेश से जुड़े हुए व्यक्ति-मन की चेतना है। इसलिये वह न तो बाहरी यथार्थ की अनुभूतिहीन, फारमूलाबद्ध कथन कहती है और न बाहरी परिवेश से विच्छिन्न होकर या बाहरी परिवेश को अवचेतन की दुनियाँ से सदर्भित कर मात्र व्यक्ति-मन का चित्रण करती है। वह जीवन परिवेश के दबाव में बनते, बिगड़ते मानवीय रिश्तों, मूल्यों, सवेदनओं की अभिव्यक्ति है।'[1]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रख्यात प्राध्यापिका और नयी कहानी की मर्मज्ञा में गहरी रूचि तथा पैठ रखने वाली समर्थ मर्मज्ञ डॉ० रामकली सराफ ने 'नयी कहानी विघटन एव विसगति' के तीसरे अध्याय में स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—'नया कहानीकार परिवेश के प्रति ईमानदार एव प्रतिबद्धता के साथ 'भोगे हुए यथार्थ' को प्रस्तुत करता है, जिसमे कहानियाँ नये युगबोध के रग में रगी यथार्थ में लिखी गयी है।'[2]

मध्यमवर्ग की हताशा, विघटन, विखण्डन, कुठा, एकाकीपन, सत्रास से उभरती है नयी कहानी। इसी समय नगरबोध, ग्रामबोध तथा अचल विशेष से जुड कर नयी कहानी की सामाजिकता, सर्वकालिता नये रूप में उभरी।

वर्तमान के सश्लिष्ट यथार्थ, स्थिति के प्रति जागृत विवेक से नयी कहानी गढ़ी गयी है। इन कहानियों में व्यापक जीवनदृष्टि हमें दिखायी देती है। नयी कहानी व्यक्ति के अहं को पूरी शिद्दत के साथ उभारती है। *फणीश्वरनाथ रेणु* की कहानी 'रस प्रिया' के कलाकार पचकौड़ी मिरदगिया के मन की कचोट उभरती है। यह कहानी कला और कलाकार तथा विद्यापति की रसप्रिया का मूल्याकन करने में असमर्थ समाज के प्रबुद्ध कहे जाने वाले लोगों पर तीखा व्यग्य है। सगीत और नृत्य को आधुनिक मध्यमवर्ग का आदमी कितना तुच्छ उपेक्षित समझने लगा है यह टीस भी यहाँ उभरती है।

मोहन राकेश की कहानियाँ आस्था, सकल्प एव जीवन मर्म की चेतना को उठाती हैं। 'परमात्मा का कुत्ता' शीर्षक कहानी में काहिली, अकर्मण्यता के विरुद्ध सक्रिय विरोध-प्रतिरोध की स्वस्थ मानसिकता की सफलता को रचने, सहेजने का प्रयास किया गया है।

आज की लोकतात्रिक व्यवस्था में कार्यालयी जीवन, कर्मचारी कितना सवेदनशून्य, कायर, कामचोर हो गया है तथा कर्मनिष्ठा कितनी विलुप्त हुई है। बेहयायी किस सीमा

---

१ हिन्दी कहानी अतरग पहचान डॉ० रामदरश मिश्र पृ० ५७।

२ नयी कहानी विघटन एव विसगति डॉ० रामकली सराफ पृ० ७९।

तक उभर आयी है इस स्थिति को, परिवेश को, व्यक्ति की चेतना को यहाँ इस कथा संरचना मे व्यवस्थित तरीके से समझा जा सकता है। 'खेल' शीर्षक *राजेन्द्र यादव* की कहानी मे कुवारी 'लेखा' की लक्ष्यहीनता, रिक्तता, व्यक्ति-मन के खालीपन के एहसास को निकटता और दूरी को, 'खेल' के रूप मे ही उभारा गया है। कुंठा तथा सम्बन्धों की व्यर्थता का यह खेल कैसे-कैसे व्यक्ति खेल रहा है। नारी मन की व्यथा क्या है? उसकी अपनी पहचान कहां खो गयी है यह बोध अविवाहित प्राध्यापिका लेखा के इस सहज कथा विस्तार मे ठीक से समझा जा सकता है। यह अन्तर्कथा है भीतरी कसक है।

उषा प्रियम्वदा की 'वापसी' कहानी के गजाधर बाबू का अकेलापन युग के प्रत्येक व्यक्ति का अकेलापन है। 'वापसी' के सन्दर्भ मे *डॉ० नामवर सिंह* का कथन है—'इस रिटायर्ड आदमी का अकेलापन जैसे अपरिहार्य है। अकेलेपन से निकलना चाहते हुए भी वह फिर उसी अकेलेपन मे वापस जाने के लिये लाचार है। और क्या यह अकेलापन एक गजाधर बाबू का ही है? क्या ऐसा नही लगता है कि यह अकेलापन बहुत व्यापक है? ऐसा अकेलापन जो कही-न-कही आज सबके अन्दर मौजूद है परन्तु जिसका सहयोगी कोई निकटतर से निकटतर व्यक्ति भी नही हो सकता।'[1]

परिवेश तथा यथार्थ की गहरी स्थितियों को 'वापसी' मे देखा जा सकता है। समाज परिवार तथा व्यक्ति के परिवर्तित होते हुए पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्यो को उषा प्रियम्वदा ने पूरी शिद्दत से उभारने का उपक्रम किया है। पारिवारिक विघटन, सम्बन्धों की व्यर्थता, ऊब, घुटन, अजनबीपन एवं विशृंखलता की सहज पहचान कराती है यह कथा। गजाधर बाबू अपने ही घर मे अजनबी हो गये है। उनकी चारपाई की स्थिति उनकी स्थिति के परिवर्तन की सूचना देती है। उनकी व्यथा को उनकी सहधर्मिणी पत्नी भी समझ नहीं पाती है। अकेलेपन की व्यथा को भोगते हुए, उससे भागने की कोशिश करते हुए भी *गजाधर* बाबू अकेले पड़ जाते है। इसी प्रकार *डॉ. शिव प्रसाद सिंह* की कहानी 'हत्या और आत्महत्या' के बीच जो 'भेड़िए' सकलन की एक विशिष्ट कहानी है— मे परिवेश की विद्रूपता को चित्रित किया गया है। एक छोटी घटना जो रामनाथपुर *स्टेशन के पास घटती है। मरी हुई शोभा बुआ की मुट्ठी में बन्द कागज उसे आत्महत्या* घोषित करता है पर यह सकेत कि ऐसी आत्महत्याएँ चरित्र की व्यक्ति की, निराशा अवसाद की ये घटनाये समाज मे निरन्तर हो रही है, होती रही है। यह कहानी इन्सान के संघर्ष की गाथा है जो एक खुरदुरे जीवन्त यथार्थ से पाठक को अवगत कराती है। *अमरकान्त* की कहानी 'दोपहर का भोजन', 'भूख', 'हत्यारे' के साथ ही 'जिन्दगी और जोंक' मे भी व्यक्ति मन की छटपटाहट, कोंच और चुभन को उभार

---

१. एक दुनिया समानान्तर-सम्पादक राजेन्द्र यादव, पृ० १६०।

गया है। पर उनकी कहानी 'डिप्टी कलेक्टरी' जो 'कहानी' पत्रिका के विशेषाक मे प्रकाशित की गयी थी एक साधारण परिवार की असाधारण कहानी है। इसमे भी 'शकलदीप' बाबू की आकाक्षा, विवशता, टीस और पराजय का रेखाकन है। एक आदमी के मन की कई-कई परतो को यहाँ उभारा गया है।

'निर्मल वर्मा' नगरीय बोध के नगर-जीवन की सच्चाइयो, तल्खियो एव टूटते जुड़ते सम्बन्धो के रचनाकार है। उनकी कहानियो मे अकेलेपन का सत्रास, तनाव तथा यातना अनुभव की सम्पूर्ण सच्चाई के साथ उभारता है। परन्तु *निर्मल वर्मा अभिजात्य* कहे जाने वाले वर्ग को ही उठाते है। वे समस्त नगर-जीवन के सत्यो को सहेजने मे रुचि भी नही रखते अतएव नगर-जीवन विभिन्न प्रसगो मे उभर भी नही पाते। ***श्रीकान्त वर्मा*** की कहानी 'घर' मे जो सन्दर्भ प्रस्तुत किया गया है वह बहुत ही सतही प्रतीत होता है। नगर मे केवल सोसायटी गर्ल्स ही नही होती, टूटे मन, बिखरे स्वप्नो, उजड़े सन्दर्भों और जीवन, रोजी-रोटी घर के लिये जुगाड करने वाले, गरीब, असहाय लोग भी हैं तथा सवर्ग भी। आज की कहानी भटकी हुई आत्मा की तरह रास्ता ही नही खोज रही है वरन् इस खोज मे, इस सघर्ष मे वह पूरी तरह सायुज्य भी है। नयी कहानी मे कथ्य की सूक्ष्मता एव साकेतिकता पूरी तरह से उभरती है।

डॉ० नामवर सिंह ने अपनी समीक्षात्मक पुस्तक 'कहानी नयी कहानी' मे निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' सग्रह की कहानियो को नयी कहानी का पहला सग्रह माना है। उनकी दृष्टि मे निर्मल वर्मा ने 'आज के मनुष्य की गहन आन्तरिक समस्या को *उठाया है*।[1] 'परिन्दे' कहानी की 'लतिका' मे- हम कहाँ जायेगे। वाक्य सारी कहानी पर अर्थगम्भीर विषाद की तरह छाया रहता है। 'परिन्दे' की लतिका की समस्या सामान्यत मुक्ति की समस्या है परन्तु अतीत से मुक्ति, स्मृति से मुक्ति की अभिव्यजना यहाँ देर तक पाठक को सोचने पर मजबूर करती है।

डॉ० नामवर सिंह ने जोर देकर प्रभावान्विति को परम्परित एव महत्वपूर्ण उपलब्धि मानने का एक सही आग्रह दुहराया है। वे लिखते है— 'यह आकस्मिक नही है कि कहानी के माध्यम से मानव मुक्ति का प्रश्न उठाने के साथ ही 'निर्मल' ने अपनी कहानियो को भी हिन्दी कहानी का परिपाटी से मुक्त करने का प्रयत्न किया है।'[2]

व्यक्ति मन की व्यथा मे निर्मल वर्मा की कहानियाँ के पात्र बहुधा मौन या खामोश रहते है। यह खामोशी उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अग है जैसे- 'अंधेरे' का 'छोटा लड़का' *'डायरी के खेल' का बिट्टो, मे जीवन जीने की खामोश लालसा, 'माया का मर्म' का* बेरोजगार युवक की खामोश अभिलाषा आदि।

1 *कहानी नयी कहानी-डॉ० नामवर सिंह, पृ० ५२।*

2. *कहानी नयी कहानी-डॉ० नामवर सिंह, पृ० ५३।*

नौकरी पेशा नारी की स्थिति

शिक्षा ने स्त्रियो को नौकरी करने के लिये प्रेरित किया। नौकरी करने पर नारी आर्थिक रूप से स्वावलम्बी तो बनी, साथ ही अनेक परेशानियाँ भी खड़ी हो गयी। मानसिक द्वन्द्वों की भी असह्य यातना भी झेलनी पड़ी। एक तरफ ये नारियाँ नौकरी करती तो दूसरी तरफ घर भी सम्भालना था फलत पारिवारिक भूमिका को निभाने मे दोहरा भार उठाना पड़ा। इस भार को ढोने मे असमर्थ होनी नारी को बिगड़ते पारिवारिक दाम्पत्य सम्बन्धो से उत्पन्न तनाव अकेलेपन की यत्रणा को झेलना पड़ा।

नये सामाजिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप भारतीय नारी-पुराने परिवेश से अलग एक नये परिवेश मे प्रवृत्त हुई जिसमें एक नयी व्यक्तिवादी दृष्टि का उदय हुआ और उसे सापेक्षिक स्वतत्रता मिली। लेकिन यह सामाजिक परिवर्तन व्यापक पैमाने पर एक क्रान्तिकारी परिवर्तन का परिणाम न होकर एक हद तक आरोपित रहा। इसलिये इसके कमोबेस अधिकार ही दृष्टिगोचर हुए 'वही' मे उस अकेलेपन और एकाकी यत्रणा का आरभ भी हुआ जो नये परिवेश मे परिवार या निकट आत्मीय सम्बन्धो से कटकर रहने मे निहित रहता है। सम्बन्धो की तलाश मे, या सम्बन्धो से कटकर तथा सम्बन्धो के परिणामो को भोगती हुई नारी अपने आप मे नितान्त अकेली पड़ती गयी है।[1]

मोहन राकेश की कई कहानियाँ टूटे हुए पुरषो और बिखरी हुई नारियो के अकेलेपन, व्यर्थता बोध और यंत्रणा बोध को उजागर करती है जिनमे 'मिसपाल' प्रसिद्ध कहानी है।

कार्यालय मे लोगो के ओछे व्यवहार, परम्परित हुए धारणा तथा आश्चर्य शका की मिश्रित प्रतिक्रिया के कारण मिसपाल नौकरी छोड देती है। एक छोटे गाव 'मनाली' मे अकेले जिन्दगी बिताने चली जाती है। वहाँ भी ऊब और अकेलापन उसका साथ नही छोड़ते। नारी को अपनी समदक्षता प्रदान करने का ढोग रचने वाला पुरुष भी भावना के स्तर पर आज की प्रतिस्पर्द्धा की भावना से मुक्त नही है। नारी के मानसिक एवं शारीरिक शोषण की इच्छा आज भी उसके अन्दर विद्यमान है। पूरी कहानी मे मिसपाल को अभिशप्त नियति, उदासी, ऊब, अकेलेपन का गहरा बोध उसके पीड़ित, आत्मपीड़ित और समस्त जीवन को ही प्रमाणित करता है। 'मिसपाल' की तनाव तथा कुंठा को यह वाक्य और अधिक गहरा देता है— 'मै बहुत बदकिस्मत हूँ रणजीत। हर लिहाज से मैं सोचती हूँ रणजीत कि मेरे जीने का कोई अर्थ नही है।'[2]

श्रीमती विजय चौहान ने इसके सन्दर्भ मे लिखा है कि 'मिसपाल' के लिये शिक्षित नारी की उस पीढी को लिजिए जो आर्थिक रूप से स्वतंत्र होते हुए भी परतत्र है। वे

१. आधुनिक हिन्दी कहानी- समाजशास्त्रीय दृष्टि-डॉ० रघुवीर सिन्हा, पृ० ४१।
२ क्वार्टर- मोहन राकेश, पृ० ३०।

जिन दफ्तरों मे काम करती है, उनकी फर्नीचर तो आधुनिक जरूर टैरीलान की बुशर्ट और डेक्रोन की पतलून तक ही सीमित है। उनके संस्कार अभी तक सामन्ती है जिनकी अभिव्यक्ति अनेक स्तरो पर कुंठा और कटुता पैदा करती है। जहाँ पुरुष वर्ग इन शिक्षित नारियों को ईर्ष्या और शंका की दृष्टि से देखता था अब वह शिक्षित नारियों का आर्थिक शोषण भी करने लगा है।[1]

कमलेश्वर की 'तलाश' कहानी की सुमी और ममी दोनो ही स्वावलम्बी है पर दोनो त्रस्त है अकेलेपन की पीड़ा को भुगत रही है। ममी विधवा है पर स्वावलम्बी होने के कारण वह जिन्दगी की यथार्थता से बौद्धिक स्तर पर जुड़ने के आग्रह को लिये हुए है। कारण भी स्पष्ट है वह पुरुषो के बीच कार्य करती है, शहर का वातावरण भी संयम के अनुकूल नही है। इसलिये वह पुरुष की आवश्यकता महसूस करती है पर घर पर सुमी की उपस्थिति उसे बाधा लगती है। सुमी भी परिस्थितियो के प्रति जागरूक होने के कारण हास्टल में जाने का निर्णय ले लेती है। फलत परिस्थितिवश दोनो की मानसिकता मे परिवर्तन होने लगता है और यह परिवर्तन एक ऐसे स्तर पर चला जाता है जहाँ दोनो अकेलेपन की जिन्दगी जीने के लिए मजबूर होती है। ममी के भीतर काम और वात्सल्य के भाव को लेकर अर्न्तद्वन्द उत्पन्न होता है। काम-भाव की क्षणिकता उसे वात्सल्य भाव की श्रेष्ठता का अनुभव कराती है। अत नैतिक पारिवारिक सम्बन्धो के पूरे मूल्यबोध को नकार कर नये युगबोध मे जीती माँ-बेटी के अकेलेपन, घुटन की नियति को सजीवता से इस कहानी मे उभारा गया है।

मन्नू भण्डारी भण्डारी की 'बन्द दराजों के साथ' की नायिका मंजरी प्राध्यापिका है। पत्नी-पत्नी कई कारणो से सम्बन्ध विच्छेद कर लेते है और तनाव को झेलते हुए जीते है। मंजरी को प्रत्येक काम बोझ हो जाता है। उसका मन शून्य की गहराई मे भटकने लगता है। पुस्तको की पक्तियां उसकी आँखो से गुजरती हैं किन्तु अर्थ के पहचान वह खो चुकी है। नौकरीपेशा नारी जीवन की इस तीक्ष्ण स्थितियो से गुजरती हुई पर्याप्त टूटी है।

निर्मला वर्मा की 'परिन्दे' कहानी की लतिका 'मिस वुड' डॉ० सुमी अपने प्रेम मे टूटे हुए, अकेले-अकेले पहाड़ पर ठहरे हुए है। परिन्दे तो जाड़ो मे नीचे मैदान की ओर जायेंगे पर वे छुट्टियो मे कहा जाये? केन्द्र में लतिका है जिसके अकेलेपन की पीड़ा आदर्शवादी होते हुए भी जीवन की मर्यादा से अलग नही है। उषा प्रियम्वदा की 'पूर्ति' कहानी की तारा अध्यापिका है। आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी, स्वतन्त्र व्यक्तित्व सम्पन्न होते हुए भी पति के अभाव मे आँधी-पानी की रातो मे हृदय मे हूक उठती है। नौकरी पेशा ऐसी नारियाँ कुछ क्षणो के लिये किसी इच्छित पुरुष का सुखद स्पर्श

१ नियी कहानी दशा, दिशा, सम्भावना-सम्पादक श्री सुरेन्द्र, पृ० २२४।

पाकर सदैव के लिये संतुष्ट होने का प्रयास करती है। आजीवन उन्हीं की स्मृतियों की छाया की कल्पना करती हुई वे पर्याप्त टूटती हैं।' मन्नू भण्डारी की 'जीती बाजी की हार' और गजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा', 'टूटना', 'आकाश के आइने', उषा प्रियम्वदा की 'नींद', 'झूठा दर्पण' निर्मल वर्मा की 'धागे' मार्कण्डेय की 'एक दिन की डायरी' कहानियों में नौकरीपेशा नारी का विभिन्न कोणों से चित्रण हुआ है।

विधवाओं की सामाजिक स्थिति

विधवाओं की ओर देखने के दृष्टिकोण में इधर काफी अन्तर आ गया है। अब विधवाएँ, विधवा की अपेक्षा एक स्त्री रूप में जीने लगी हैं। सम्पूर्ण परम्पराओं को नकारती हुई, शारीरिक पवित्रता के आग्रह को तोड़ती हुई, वह जिन्दगी के यथार्थ से जुड़ना चाहती है। विशेषत: ऐसी स्त्रियाँ जब आर्थिक दृष्टि से पूर्णत: स्वावलम्बी होती है, तब एक अलग ही रूप उभरता है। दूसरों के सहारे जीने वाली विधवा, अपने ही पैरों पर खड़ी विधवा इन दोनों के व्यवहारों में काफी अन्तर दिखाई देने लगा है।

कमलेश्वर की 'तलाश' कहानी में मुमी की माँ विधवा ममी अपनी कामनापूर्ति के लिए पर पुरुष का संसर्ग करती है। ममी की स्थिति जानने के बाद पुत्री स्वयं उसके मार्ग से हटकर हास्टल में रहने का निश्चय करती है। शिव प्रसाद सिंह ने लिखा है— 'एक से बंधकर रहने वाले पुराने आदर्श को खोखला समझने के कारण ये नये जमाने की बेटियाँ यदि अपनी माताओं की बेबसी या किसी अन्य के प्रति उनके झुकावों को बड़ी उदारता और सहानुभूति से समझना चाहती है, तो उसे बुरा क्यों माना जाये।

अब परम्परित व्यवस्था को झटकती हुई विधवा नारी आदर्श से अलग होकर यथार्थ की भूमि पर खड़ी है। वह भावुक कम बुद्धिवादी अधिक है। ये नौकरी के कारण आर्थिक स्वालम्बन भी प्राप्त कर लेती है।

श्री सविता जैन ने अपने एक निबंध— 'समकालीन हिन्दी और मूल्य संघर्ष की दिशा' में गंभीरता से विचार किया है— उनके अनुसार 'इस कहानी की नायिका ममी अपने खोये हुए व्यक्तित्व में लुप्त हो गयी है। वह माँ होने के साथ ही एक नारी भी है जो अपने पति के मृत्यु की साथ ही नारी-सुलभ भावनाओं को दफना नहीं देती अपितु उन्हें जीवित रखना चाहती है।[२]

वेश्याओं की सामाजिक स्थिति

नारी का वेश्या रूप विकसित और वैज्ञानिक मानवीय मूल्यों की दृष्टि में काफी शर्मनाक और चिन्तनीय है। सवाल है औरत के वेश्या होने में कौन-सी सामाजिक

---

१. *जिन्दगी और गुलाब के फूल-उषा प्रियम्वदा।*

२. *समकालीन हिन्दी कहानी और मूल्य संघर्ष की दिशा (निबंध)-श्री सविता जैन।*

व्यवस्था और प्रवृत्ति काम करती रही है। जाहिर है कि नारी वेश्या तभी बनी होगी, जब से आर्थिक स्तर पर वह पुरुषो के उपर निर्भर हुई होगी, समाज मे वैयक्तिक पूँजी का जन्म हो चुका होगा। पुरुष सत्ता की स्थापना धन-सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण का परिणाम थी। इस प्रवृत्ति के चलते एक पुरुष का एकाधिक विवाह करना तथा अपनी काम-लिप्सा की पूर्ति के चलते एकाधिक औरतो से सम्पर्क स्थापित करने के लिये उसने नारी को वेश्या बनाया। भारतीय जीवन मे वेश्याओ का अस्तित्व काफी पुराना है। सम्भवत जब से वर्गो की स्थापना हुई। समय के साथ-साथ इनमे परिवर्तन व सुधार हुए। आज चाहे *सामन्ती समाज हो या पूँजीवादी, औरतो इस प्रकार के शोषण से मुक्त नहीं हो* पायी। अतएव मुख्य रूप से नयी कहानी मे नये कथाकारो ने औरत के इस रूप को आधार बनाकर कहानियाँ लिखी, सवाल दृष्टिकोण का है कि किसने किस रूप मे नारी को वर्णित किया।

कमलेश्वर की 'मास का दरिया' कहानी मे वेश्याओ को देखने का दृष्टिकोण यथार्थ, मानवीय और तटस्थता से युक्त है। लेखक न उस ओर दया से देखता है, न रूमानी वृत्ति से। उनकी तकलीफो का बड़ा ही यथार्थ और कुछ सीमा तक कठोर चित्रण किया है। *जुगनू* नामक वेश्या केन्द्र मे है। रोगग्रस्त होने के बाद भी उसे लोगो की इच्छा की पूर्ति करनी पड़ती है। उसकी व्यथा अटूट है। 'सैकड़ो मरद आये और गये— पर कोई ऐसा नही जिसकी परछाई तले ही उम्र कट जाये।[१]

इस प्रकार वेश्याओ की जिन्दगी मे भी करुणा, अकेलेपन का बोध, यहाँ तक *किसी विशिष्ट व्यक्ति के प्रति पत्नी के रूप मे समर्पण की भावना दिखाई पड़ती है।* वृद्धावस्था मे जब शारिरीक आकर्षण समाप्त हो जाता है, वेश्या अपनी जिन्दगी मे भयंकर रिक्तता के बोध की यातना को भोगती हुई उस किसी के लिये जिसने उसे समझने की कोशिश की है, तड़पती रहती है।[२]

शिव प्रसाद सिंह की 'वेश्या' कहानी मे वेश्या की स्थिति की झलक मिलती है। मोहन राकेश की 'गुनाहे बेलज्जत' मे सरदार सुन्दर सिंह पैसा देकर 'सुन्दरी' नामक स्त्री के साथ समय बिताता है।

इस प्रकार इस दौर मे कुछ और कहानियाँ इस समस्या को लेकर लिखी गयी है, जो स्थिति जन्यतनाव से सयुक्त है।

प्रेम त्रिकोण एवं विघटन

औद्योगिक सभ्यता, शहरीकरण, सयुक्त परिवारो की टूटन, नयी शिक्षा, स्त्री शिक्षा, वैयक्तिकरण आदि अनेक कारण गिनाये जा सके है। जिनसे हमारी मध्यकालीन परम्परा,

१ *मेरी प्रिय कहानियाँ-कमलेश्वर, पृ० ९१।*

२ *कहानी की सवेदनशीलता सिद्धान्त और प्रयोग-डॉ० भगवानदास वर्मा, पृ० २४६।*

सुधारवादी आन्दोलनों, विधवा-विवाह, नारी शिक्षा, नौकरी में नारी की स्थिति के कारण नये रूप में ढलने लगी। विवाह संस्था के प्रति विद्रोह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि कारणों से पारिवारिक तथा सामाजिक सम्बन्धों में दरार उभरी। मालती जोशी, ममता कालिया, उषा प्रियम्वदा, मन्नू भण्डारी आदि लेखिकाओं ने नारी अस्मिता को उनका संघर्ष को कथा-भूमि के रूप में स्वीकारा। पुरुष लेखकों ने प्रेम-सम्बन्धों को महज और सहानुभूतिपरक दृष्टि से देखा पर महिला लेखिकाओं ने प्रेम-सम्बन्धों की सच्चाई को विविध रूपों, कोणों से देखने समझने की कोशिश की।

जिस मध्यवर्गीय परिवारों के व्यक्ति-चरित्रों को अपनी कथा का आधार नयी कहानी के रचनाकारों ने बनाया है। उसमें प्रेम-विवाहों की महज मान्यता स्वीकृत नहीं रही है। माता-पिता सामान्यतः प्रेम-विवाहों में सहयोग नहीं करते। विवाह-विच्छेद, तलाक की त्रासद स्थिति को भी परिवार के लोग दुर्भाग्य मानते रहे हैं। नयी कहानी में विवाहित युगल के इतर सम्बन्धों को पूरी शिद्दत से उठाने, उकेरने का उपक्रम किया गया है।

प्रेम सम्बन्धों के कारण अलगाव बोध, अजनबीपन के लिये भी निर्मल वर्मा, कृष्ण बलदेव वैद, उषा प्रियम्वदा ने बहुधा विदेशी पृष्ठिभूमि को ही उठाने की कोशिश की है। पाश्चात्य जीवन के अनुभवी रचनाकारों ने ही इस दिशा में पहल की है। प्रेमी के किसी अन्य के साथ तयशुदा विवाह से अलगाव बोध को विरचित करने की एक परिपाटी हिन्दी की नयी कथा रचनाओं में देखा जा सकता है। प्रेमिका से विवाह के इतर सम्बन्ध की आशा करना परिवार और समाज में स्वीकृत रहा नहीं है। पूर्व-प्रेमी की उदासीनता से प्रेमिका का टूटना, निराश होना तथा अव्यवस्थित हो जाना भी कहानियों में उठाया गया है। पर यहाँ परिवेशगत मनोविज्ञान मुख्य हो जाता है। ***राजेन्द्र यादव*** की कहानी— 'मेरा तन-मन तो तुम्हारा है। परन्तु लीला का विवाह कहीं अन्यत्र हो जाता है तब भी वह झूठी सात्वना देती रहती है तथा निष्ठा का दावा करती रहती है। विवाह के पहले साल तक लीला में थोड़ा लगाव बाकी है। यहाँ रोमानी प्यार का सृजन है जो पूरा होता नहीं है। बहुतायत में हताश प्रेमियों को स्वप्नद्रष्टा के रूप में नयी कहानी में चित्रित किया गया है।

ज्ञानरंजन के ***'दिवास्वप्नी'*** कहानी में इन स्वप्नद्रष्टा स्थितियों की स्वीकृति स्पष्ट झलकती है। कहानी का नायक इन्दो झूठी प्रत्याशा में भटकता रहता है। ऐसी कहानियों में नारी की उपेक्षा, विश्वासहीनता की बात उभरती है परन्तु स्थिति होती है विवाह के बाद पति से गहरे लगाव की। लड़की विवाह पूर्व जो वादे करती है वह लम्बे और पारिवारिक दबाव तथा परिवेशगत प्रभावों के कारण सन्देह के घेरे में होता है।

'कोसी के घटवार' शीर्षक कहानी में शेखर जोशी ने अवकाश प्राप्त सैनिक की स्थिति को उत्कीर्ण किया है। वह अपनी अकेली, असंग जिन्दगी जीने के लिये

गाँव लौटता है। सालो पूर्व उसकी प्रेमिका के पिता ने उसे इसलिये दुत्कार दिया था कि उसके आगे पीछे भाई-बहन नही, माँ-बाप नहीं है।

उषा-प्रियम्वदा की दो कहानियाँ, 'पिघलती हुई बर्फ' और 'मछलियां', 'विदेशी परिवेश' मे प्रेम के उभार को वर्णित करती है, पर यहाँ अभय का प्रतिशोध आत्म-निरीक्षण और प्रतिद्वन्द्वी भाव को स्थापित कर सका है। प्रेम मे अव्यवहारिक प्रत्याशाएँ रामकुमार वर्मा की *डेक* तथा *पेरिस और पतझर* मे प्रकट होती है। यहाँ नायक की मानसिक पीड़ा को समझने का सकेत तो है। पर कोई जरूरी नहीं है कि हर पाठक इस कला को इस सकेत को समझ ही ले। 'दहलीज', 'दूसरे का विस्तार' तथा 'अन्तर' जैसी कहानियो मे आत्मदया और प्रतिकात्मक आचरण को उभारा गया है। पुरुष की आक्रामकता और उपेक्षा से व्यक्ति मन की टूटन, अलगाव-बोध तथा विछोभ को भी नये कथाकारो ने उभारने की कोशिश की है। समाजशास्त्रीय सोच आदमी तथा औरत के इन सामाजिक रिश्तो मे दरार, टूटन, अलगाव, एकाकीपन से उपजी कुठा, हताशा को भी सृजित करने का प्रयास किया है। राजेन्द्र यादव 'एक कमजोर लड़की की कहानी' की रूपा पति और प्रेमी के बीच झूलती है। पिता, माता, परिवार और अन्त मे पति के सस्कारो से आक्रान्त यह कमजोर लड़की अपने प्रेमी के साथ हो लेने की हिम्मत नही कर पाती और न ही पति से जुड़ पाती है।

एक ओर समाज मे नारी को स्वतत्र व्यक्तित्व प्रदान किया गया है, दूसरी ओर पारम्परिक सामाजिक रूढियो और सस्कार का मार्ग अवरुद्ध करते हैं। परिणामत प्रेम किसी से होता है शादी किसी और से एक प्रकार के तनाव की स्थिति इन कहानियो मे बराबर बनी रहती है। नारी परिस्थिति के विषय-चक्र मे न प्रेमिका हो पाती है न पत्नी, सामाजिक बन्धन उसे किसी की पत्नी बना देता है, जबकि मन की स्वाभाविक भावनाएँ उसे किसी और से प्रेम करने के लिये बाध्य करती है।[1]

वैवाहिक सम्बन्धो मे टूटन एवं विलगाव की स्थिति हमे कमलेश्वर की 'जो लिखा नही जाता', 'देवा की माँ', राजेन्द्र यादव की 'एक कमजोर लड़की की कहानी', 'टूटना, खेल-खिलौने', निर्मल वर्मा की 'पहाड़', 'अंधेरे मे', उषा प्रियम्वदा की 'सागर पार का सगीत', मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगी', 'फौलाद का आकाश', दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात', मनु भण्डारी की 'तीन निगाहो की एक तस्वीर' मे दिखायी देती है।

राजेन्द्र यादव की कहानी 'खेल-खिलौने' की मालिनी कहती है कि 'वह शादी की अपेक्षा मरना अधिक पसन्द करेगी क्योंकि शादी से उसकी कलात्मक एव बौद्धिक क्षमताएँ नष्ट हो जायेगी।'[2]

१ *आधुनिक परिवेश और नवलेखन डॉ० शिव प्रसाद सिह, पृ० १४७।*

२ *खेल-खिलौने-राजेन्द्र यादव, पृ० ६।*

नयी कहानी के लेखकों ने सयुक्त परिवार की अमावीयता, क्रूरता और झूठी अहन्यता को अस्वीकार किया है तथा साफ-साफ इस बात को माना है, प्रणय विवाह मे सुधार सम्भव है बशर्ते वह विवाह मे परिणत हो सके। प्रतिबन्ध यह है कि वह आजीवन चले।

बच्चे सयुक्त परिवार मे मोह और अपनेपन का बोध जगाते हैं। वे पति-पत्नी के बीच पुल होते हैं। 'देवी मा', 'एक और जिन्दगी', 'कितना समय' तथा 'सुहागिनें' ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'सुहागिनें' कहानी की काशी कहती है 'बहन' जी इन बच्चों को न पालना होता तो मैं आपको जीती नजर न आती।'[1]

नयी कहानी मे पत्नी का पति से अलग होना एक असहनीय, मानसिक, शारीरिक यातना से पलायन के रूप मे वर्णित किया गया है।

मोहन राकेश की 'फौलाद का आकाश' कहानी मे पति की मानसिक भिन्नता के कारण मीरा के अन्दर तनाव की स्थिति विद्यमान रहती है। रवि लेबर अफसर है सदैव आँकड़ो मे उलझा रहता है। मीरा को मानसिक तृप्ति नही हो पाती उसकी हर प्रतिक्रिया बडी और तटस्थ होती है। मीरा आन्तरिक रूप से टूटती, कुण्ठित होती चली जाती है। मीरा को लगता है 'उसको प्यार करते समय भी वह मन ही मन चुम्बनो की गिनती करता रहता होगा, तभी तो उसका आवेश एक चरम पर पहुँचकर रुक जाता है।[2]

परिवार के भीतर ही नारी की सार्थकता को इस पीढ़ी के कथाकारों ने प्रकारान्तर से भी स्वीकार किया है। कुल मिला कर नया पढा-लिखा नौजवान नौकरी की तलाश मे माता-पिता को छोड़ कर भागता है। अधिकतर पुरुष ही स्वतत्रता का उपभोग भी करता है तथा मिथ्या आरोपों के बहाने पत्नी को छोड़ता है। अलगाव, टूटन, विच्छेद का कारण व अनजान कुलशील वालो का विवाह होता है। चारित्रिक पतन चुनाव की परवशता और प्रेम तथा सेक्स की अतृप्ति भी कारण बनता है एवं कभी-कभी सन्देह, गरीबी, दुर्व्यवहार तथा पारिवारिक परिस्थितियाँ भी कारक हो जाती हैं। परिवार विवाह और प्रेम के संबंध कुछ ज्यादे ही अन्तरंग, कुछ ज्यादे ही भीतर होते हैं। यहाँ विच्छेद या टूटन से अजनबीपन, कुंठा और सत्रास की स्थिति उभरती है। निरन्तर अर्थ आधारित होते हुए समाज मे इस विसंगति के लिये समय भी, स्थान भी और परिवेश भी अनुकूल मिलता ही जाता है। जाति पर, पेशेवर या गाँवों, कस्बो की वर्गीय समस्याओं को नये कहानीकारों ने कम ही छूने की कोशिश की है। रेणु, शिव प्रसाद सिंह, काशीनाथ सिंह, मार्कण्डेय आदि ने ग्रामीण परिवेश को उठाने, उभारने की कोशिश की है पर

१. सुहागिनें-मोहन राकेश, पृ० ३८।
२. क्वार्टर-मोहन राकेश, पृ० १८६।

उनकी रचनाओ मे लोकचित, लोकमानस ही उभर पाया है।

'टूटना' कहानी मे द्वन्द्व उभरता है, जाति की टकराहट भी उभरती है। वर्मा अपनी दीक्षित ब्राह्मण पत्नी के समक्ष हीनता के बोध से ग्रस्त रहता है। परन्तु यहाँ भी टकराव का आधार जाति नही आर्थिक कारण बनता है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'रिमाइन्डर' मे जो झूठा अहकार उबरता है वह जाति मे नही पद-प्रतिष्ठा से जुड़ता है। 'चीफ की दावत' और 'अतिथि' जैसी अनेक कथाओ मे सफल व्यक्ति अपनी माँ से, परिवार से बचना चाहता है। भीष्म साहनी ने 'कुछ और साल मे' दिखाने का प्रयास किया है कि अतिरिक्त आदर, सम्मान पाने की इच्छा, मानवीय सहानुभूति को खा जाती है। मोहन राकेश की कहानी 'आखिरी सामान' मे भ्रष्ट पुलिस अफसर जेल जाता है, अमरकान्त के 'पलाश के फूल' मे एक जमींदार छोटी जाति की लड़की को फुसलाता है। ऐसी रचनाओ मे अलगाव धन और पद के आधार पर वर्णित है। शहर के नपुसक दम्भ, को 'मवाली' शीर्षक कहानी मे मोहन राकेश ने उभारने, उकेरने का प्रयास किया है। शहर की जिन्दगी भी अलगाव और अजनबीपन का कारण बनती है। यहाँ है मिथ्या आडम्बर, मिथ्यादम्भ, यहाँ हर वस्तु पैसे से ही तौली जाती है पर यहाँ बात व्यवहार, भाईचारे का कोई अर्थ जैसे होता हो नहीं। यहाँ मानवीय सम्बन्धो के बीच बहुत-सी दीवारे उठ खड़ी हुई है। यह बेगानापन हर पहचान को तोड़ता है यह सब नयी कहानी मे उभर कर आया है। अमरकान्त की कहानी 'डिप्टी कलेक्टरी' अपने सार और सरोकार दोनो दृष्टियो से बरबस झकझोरती है। इसमे मध्यमवर्गीय शकलदीप बाबू की भाग्यवादी सोच और मानसिकता का वर्णन पूरी ईमानदारी से हो सका है। पुराना समाज अपनी नयी पौध से क्या चाहता है। इसका सकेत यहाँ मिलता है। इसी सदर्भ मे 'दिल्ली मे एक मौत' कहानी कमलेश्वर की लेखनी से उभरी यह व्यग्य कथा है। मृत्यु को मानवीय मूल्यो की चरम अभिव्यक्ति का अवसर मानने की परम्परा हमारी रही है। परन्तु आज का शहरी मानव कैसे सवेदना से मुक्त होकर तटस्थ होता गया है इसका इजहार इस कथा मे किया गया है। मत्यु पर हार्दिक दु ख व्यक्त करना तो दूर लोग सजने, सवरने, हैसियत को दिखाने का दिखावा करते है। सभ्यता के मरते जाने का बोध यहाँ उभरकर आता है।

मोहन राकेश की 'आद्रा' आज के टूटे हुए व्यक्ति और खण्डित मनोभावो की कहानी है। यह बिखरते परिवार, शहर और कस्बे के अन्तर्विरोध की कहानी है। यह समाज के खण्ड-खण्ड होते गये स्वरूप की कथा है।

वस्तुतत्व की समीक्षा

डॉ० बच्चन सिंह के अनुसार– 'पश्चिम के अनेक विचारको ने साहित्य के समाजशास्र पर अपने-अपने ढग से विचार किया है। इनमे लूकॉच, एस्सारपिट, लूसिए,

गोल्डमान, रेमंड विलियम्स रोलाँ, वार्थ, मार्त्र, कग्मोड आदि प्रमुख है। मार्क्सवादियो का समाजशास्त्र इसमे भिन्न है। पर उत्तर-आधुनिकतावाद काल मे इन ममाजशास्त्रियो के मतो पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।'[१]

इसी संदर्भ मे वे आगे लिखते है कि 'वास्तविकता तो यह है कि लेखक का रचना संसार वह नही होता जो वह सोचता है, देखता है या अनुभव करता है। रचना प्रक्रिया मे ढलकर उसकी सोच बदल जाती है। लेखक की मोच और रचना-समार की सोच का अन्तर आलोचना का कर्म है।'[२]

अपनी सरचना 'परम्परा की मूल्याकन' मे डॉ० रामविलास शर्मा का विचार है— 'साहित्य की परम्पार का मूल्याकन करते हुए सबसे पहले हम उस साहित्य का मूल्य निर्धारित कर रहे है जो शोषक वर्गो के विरुद्ध श्रमिक जनता के हितो को प्रतिबिम्वत करता है। इसके साथ ही हम उस साहित्य पर ध्यान देते है जिसकी रचना का आधार शोषित जनता का श्रम है और यह देखने का प्रयत्न करते है कि वह वर्तमान काल मे जनता के लिये कहाँ तक उपयोगी है और उसका उपयोग किस प्रकार हो सकता है।[३]

इसी प्रसंग मे प्रसिद्ध समीक्षक डॉ० शर्मा का अभिमत है कि 'साहित्य मनुष्य के समूचे जीवन मे सम्बद्ध है। आर्थिक जीवन के अलावा मनुष्य एक प्राणी के रूप मे भी अपना जीवन बिताता है। साहित्य मे उसकी बहुत सी-आदिम भावनाएँ प्रतिफलित होती है जो उसे प्राणी मात्र मे जोड़ती है।[४]

समाजशास्त्रीय समीक्षा साहित्य का अध्ययन विविध सामाजिक रिश्तो के संदर्भ मे करती है। इस दृष्टि से साहित्य मानवीय समाज या रिश्तो को बिंवित करने वाला एक सामाजिक कार्य है। समाजशास्त्रीय समीक्षा मानव जीवन का आकलन करती है। इस संदर्भ मे सबसे पहले लुइस बोनाल्ड ने कहा था कि किसी देश के साहित्य से वहाँ के मानवीय जीवन के विविध धरातलो, पक्षो को जाना-समझा जा सकता है। 'शैली, 'फिलीपसिउनी' और 'रुचेक' ने साहित्य को समाज का नियामक माना है, जबकि मार्क्सवादी चिन्तको ने साहित्य को समाज के प्रति विद्रोह मानकर उसे व्याख्यायित करने का उपक्रम किया है।

नयी कहानी की वस्तु है जिन्दगी। जिन्दगी से जुड़ाव, टकराव, संघर्ष और जिन्दगी के भीतर से नयी पनपी जिन्दगी की खोज। इस सिलसिले मे हम समाजशास्त्रीय समीक्षक

---

१ *साहित्य का समाजशास्त्र-डॉ० बच्चन सिंह, पृ० ८९।*

२ *वही, पृ० ९२।*

३ *परम्परा का मूल्याकन-डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० ५३।*

४ *वही, पृ० ५७।*

डॉ० मैनेजर पाण्डेय की इस बात को उठाना चाहेगे। उन्होने स्पष्ट ही स्वीकार किया है— यूरोप के आलोचनात्मक यथार्थवाद के रचनाकारो ने पुरानी सामन्ती व्यवस्था, उसके पतनशील जीवन-मूल्यो तथा नयी पूँजीवादी व्यवस्था और उसके उभरते जीवन-मूल्यो के मानव-विरोधी रूपो की आलोचना करके अपनी विशेष ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया।[1]

स्वातंत्र्योत्तर भारत मे उभर रहे जिन नये जीवन सन्दर्भों के कारण नयी कहानी विशिष्ट कही जाती है उसे डॉ० नामवर सिह ने अपनी पुस्तक 'कहानी नयी कहानी' मे विधिवत व्याख्यायित करने का प्रयास किया है तथा नयी कहानी के वस्तु तत्व, उसकी रचना प्रक्रिया को भी रेखाकित किया है। सबसे पहले उन्होने स्थापित कथाकारो को ही आगाह किया कि वे नयी कहानी के प्रति अभिरुचि बनाने का दायित्व स्वीकारे। डॉ० नामवर सिह के अनुसार अभीष्ट विचार, भाव को साकेतिकता प्रदान करने के लिये नये कथाकारो ने प्राय कथानक और चरित्र के स्थूल उपादनो से ध्यान हटाकर वातावरण पर दृष्टि केन्द्रित की है।[2] इसी प्रसग मे वे आगे लिखते है कि 'स्वीकार करना चाहिए कि इन कहानीकारो को छोटी-छोटी अनुभूतियो के चित्रण मे जितनी उपलब्धि हुई है उतनी ऐतिहासिक परिवेश की दिशा मे नही।[3]

काल के प्रवाह मे व्यक्ति के सामाजिक बोध एव स्थिति को नयी कहानी की वस्तु माना जाता है। यहाँ व्यक्ति को उसकी समग्रता मे उभारा गया है। सामाजिक परिवेश, आन्तरिक द्वन्द्व, सघर्ष, सत्रास, कुठा से व्यक्ति के अन्तर-बाह्य को उद्घाटित करने का प्रयास नये कहानीकारो ने किया है। इनमे क्लाइमेक्स का आग्रह नही है वरन् एक विशेष मन स्थिति, एक क्षण, एक विशेष मनोविकार, एक सामयिक सन्दर्भ को ही उठाने का बहुधा उपक्रम दृष्टिगत होता है। यहाँ न प्रवाह है, न सस्पेस, यहाँ सीधी सपाट बयानी है। मन की चिन्ता है, उधेड़बुन से गुजरता मानव का मन है, उसकी चिन्ता है, आशा और प्रत्याशा है। इन कहानियो मे यौन भावनाओ का स्वच्छन्द प्रवाह है, वर्ग सघर्ष है, यहाँ है सकेत विम्ब और प्रतीको से कहने, समझने का एक विशेष आग्रह। 'हत्या और आत्महत्या के बीच' शिव प्रसाद सिह की एक चर्चित कहानी है जो प्रतीको के सहारे विकसित हुई है। इसमे रचनाकार ने स्मृत्याभास का सहारा भी लिया है। यहाँ प्रतीक के रूप मे 'गठरी' का प्रयोग है। एक रेल दुर्घटना के आते-जाते, बनते-बिगड़ते चित्र है। वह मछली और जाल के विम्ब से कथा को वस्तु तत्वता देते है। शोभा बुआ के प्रसग से एक नाटकीयता उभरती है और पूरी कहानी फ्लैश बैक

१ *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका मैनेजर पाण्डेय, पृ० २१५।*

२ *कहानी नयी कहानी-डॉ० नामवर सिह, पृ० ४२।*

३ *वही, पृ० ४७।*

के रूप मे उभरती चली जाती है। अमरकान्त की कहानी 'डिप्टी कलक्टरी' शकलदीप बाबू की आशा, आकाक्षा की कहानी है परन्तु उनकी प्रत्याशा झूठी पड़ जानी है। इस कहानी मे पूरा परिवार सायुक्त एव सयुज्य है परन्तु यही उसकी अन्तहीन प्रतीक्षा निरर्थक हो जाती है। भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' मध्यमवर्गीय परिवार की कहानी है, जिसमे एक मा की दयनीय स्थिति का महानुभूति प्रेरक चित्र उभरता है। एक माँ टूटते युग के सम्पूर्ण दर्द को समेट कर जीवनयापन करने को विवश है। जिस माँ ने बेटे को पढ़ाने के लिए अपने सारे गहने बेच दिये थे आज वही बेटे के सामने विकट समस्या बनकर खड़ी हो गयी है। झूठे अहकार, दिखावे की यह कहानी आज के युग की निर्मम सच्चाई के रूप मे उभरती है।

डॉ० काशीनाथ सिंह ने नयी कहानी को जमीन सौंपी है। ध्वस्त होते हुए पुराने समाज, व्यक्ति-मूल्यों तथा नयी आकाक्षाओ के बीच उभरते आर्थिक द्वन्द्वो, विद्रूपताओ को कथावस्तु के रूप मे चुना है, डॉ० काशीनाथ सिह ने। वे मूल्य भ्रंशता से आगाह करते है, जीवन मूल्यों की पतनशील त्रासदी को विरचित करते हैं और रचना को एक खास तरीके की व्यंग्य-गर्भता प्रदान करते है। उन्हे समकालीन यथार्थ की गहरी पकड़ है। वे विभिन्न विरोधी जीवन-स्तरो, स्थितियो को उकेरने, विरचने वाले सहज सरल भाषा के कथा शिल्पी है। गँवई जिन्दगी के सरोकारो मे लबरेज प्रतीको और नये ताजा-तरीन बिम्बों मे वेष्टित उनकी कहानियो मे ताजगी भी है, समरसता भी। उनका खुद का आत्म कथ्य है— 'मुसीबतो, परेशानियो और बेइमानियों के खिलाफ अपनी जमीन पर अपने तरीके की लड़ाई और उनसे छुटकारा पाने की तड़प।'

शोषितो, पीड़ितो की आवाज को उन्होंने अपनी आवाज बनाया है। वे समस्या के गहरी नजर से देखने और संघर्ष के तरीके देने के कामयाब शिल्पी है। भीष्म साहनी ने शहरी मध्यमवर्ग के जीवन को अपनी कहानियो की कथावस्तु के रूप मे चुना है। वे मध्यमवर्ग की कायरता, पाखंड और निष्क्रिय स्वप्नो को बेरहमी से उभारते है। वे मध्यमवर्ग के बीच से ही सर्वहारा वर्ग के चित्र को बखूबी वर्णित करते है। शहरी मध्यमवर्ग के भड़कीले, चटकीले जीवन के बनावटीपन और उसकी व्यर्थता को सहजता से चित्रित करते है। शहरो मे उजड़ते-बसते मेहनतकश की जिन्दगी के विविध सरोकारो को वे उघारते, उरेहते चलते है। वे बड़े खामोश ढंग मे इस तथ्य को उकेरते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था मे श्रमिक पहले खुद एक बिकाऊ वस्तु बनता है। वे अमानवीयकरण की इस प्रक्रिया की त्रासदी को अनुभव का ताप देते हैं। मजदूर का निजी आत्मीय परिवेश से विच्छिन्न होते जाना उन्हे बेतरह साल्तता है। वे मेहनतकश की बाहरी-भीतरी लड़ाई

को पूरी शिद्दत से उभारने वाले महत्वपूर्ण कथा हस्ताक्षर है। अपने 'वाडचू' कथा सग्रह की राधा, बूढ़े के हाथो मे बिकने से पहले चूहे मारने वाली गोली से आत्महत्या का प्रयास करती है, फिर लड़को के हॉस्टल मे काम करने वाले एक जवान के साथ भाग जाती है। भीष्म जी सूक्ष्म समाजद्रष्टा लेखक है। वे समाज के गहरे अन्तरविरोधो को अपना कथ्य बनाते है। वे गहरा व्यग्य करते है जो जीवन की अथाह गहराइयो से ही उपजता है। इनका व्यग्य आत्मीय करुणा से सराबोर होता है पर वह इतना बारीक होता है कि उसे सीधे, सरल तौर-तरीकों से समझ पाना जरा मुश्किल सा काम है।

कमलेश्वर प्रगतिशील कथाकार है। उनकी पहली कहानी 'कामरेड' थी। १९५० मे उनका कहानी सग्रह 'मुरादो की दुनियाँ' प्रकाशित हुआ। 'आत्मा की आवाज' नामक कहानी मे वे मनोविश्लेषक की भूमिका मे दिखायी देते है। 'राजा निरबसिया' १९५१ मे प्रकाशित उनका एक विशिष्ट कथासग्रह है। वे प्रारभ से मनुष्य के लिये राजनीति को अपरिहार्य मानकर चलते रहे है 'देवा की माँ', 'कस्बे का आदमी', 'नीली झील', मे वे राजनीतिक सोद्देश्यता का आख्यान सिरजते से प्रतीत होते है। आगे चलकर उनकी आस्था मे परिवर्तन दिखायी देता है। दिल्ली प्रवास के दौरान 'जार्ज पचम की नाक', 'दिल्ली मे एक मौत' शीर्षक कहानियो मे उनके बदले हुए तेवर का अन्दाज चलता है। 'खोई हुई दिशाए', 'पराया शहर' से चलकर वे 'मास का दरिया' तक आते-आते एक अनुभव सम्पन्न, लाक्षणिक, प्रतीक प्रधान-सपाटबयानी के रचनाकार प्रतीत होने लगे हैं। उनकी मनोवृत्ति कस्बाई रही है। 'राजा निरबसिया' का कथ्य पुराना है। मूलकथा एक धार्मिक लोककथा से जुड़ती है दोनो कथाओ का मिलन एक विडम्बना, आइरनी है। 'देवा की माँ' मे माँ बेटे के मानसिक द्वन्द्वो को उभारा गया है। यहाँ वे मनोवैज्ञानिक रेखाकन करते हुए से प्रतीत होते है। 'पानी की तस्वीर' मे अक्षय न तो अपने बाबा का आंकलन कर पाता है न मनीषा का। वह दो समानान्तर रेखाओ पर चलता है पर चल नही पाता। 'मुर्दों की दुनियाँ' मे भी कस्बाई वृत्ति का परिवेश ही प्रमुख है। गरमियो के दिन मे पोस्टरो, विज्ञापनो की भूमिका से दुहरी जिन्दगी को तल्ख एहसास को उन्होने सृजित करने की कोशिश की है। आत्मा की आवाज मे भाभी के सकोच एव उसकी श्रद्धा का आलेख सिरजा गया है एक तरफ पुरानी मान्यताओ के माता-पिता हैं दूसरी तरफ युवावर्ग है जो परम्पराओ के बधन को स्वीकारना ही नही चाहता। मीनू के वर की तलाश मे दुहरी मानसिकता का यह द्वन्द्व ठीक से उभारा गया है। 'खोयी हुयी दिशाएँ' एव 'नीली झील' उनकी दूसरे दौर की कथा सरचनाएँ हैं। अतीत के क्षण और वर्तमान की प्यास 'नीली झील' में ठीक से सृजन पाती है जब महेश पाण्डेय की शरीर की भूख को जो मूलत सौन्दर्य की भूख है, मानवेतर करुणा मे बदलती है। 'दिल्ली मे एक मौत' मे आधुनिक नागरिक जीवन और वहाँ की उथली औपचारिकताओ

का चिन्तन प्रस्फुटित हुआ है। 'साँप' में मानव-मन की प्रमुख वृत्ति भय को उभारा गया है। ठहरी हुई जिन्दगी उनकी 'तलाश' कहानी में उभरती है। 'युद्ध', 'मास का दरिया', 'दिल्ली में एक मौत', 'फालतू आदमी', 'नीली झील', 'बदनाम बस्ती' उनकी ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें भूख, बेकारी, सेक्स, हिंसा, जीवन का नग्न यथार्थ, बर्बर शिकारी की चाह आदि कथ्य के रूप में उभरे हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु को 'रसप्रिया', 'तीसरी कसम', दुमरी विशेष संग्रहों से विष ख्याति मिली है। इन कहानियों में ग्रामीण परिवेश की ताजगी थी। लोकजीवन का रस एवं विविधता थी। 'लाल पान की बेगम', 'अग्निखोर', 'आदिम रात्रि की महक', 'पंच लैट' उनकी श्रेष्ठतर कथा रचनाएँ हैं। उनकी कथाओं में 'सेक्स' केन्द्रीय वृत्त है। सेक्स की गहरी पीड़ा ही उन्हें विशिष्ट सर्जक बनाती है। प्रभाव की दृष्टि से 'तीसरी कसम' उनकी विशिष्ट कथ्यता का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

नयी कहानी की विशिष्ट चेतना और संवेदना के शिल्पी हैं मोहन राकेश। यौन केन्द्रित कथ्यों को उन्होंने प्रारम्भ में उठाया था परन्तु आगे चलकर उन्होंने सामाजिक जीवन के विविध आयामों को भी उठाने का उपक्रम किया है। उनकी यौन चेतना सामाजिक परिधि का सम्पर्श करती हुई विकसित होती है। 'नये बादल' में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के बदलाव को कथ्य बनाया गया है। इस संग्रह की कहानियों में परिवेश के दबाव, कड़वाहट और तनावों को विरचित करने का उपक्रम कथाकार ने किया है। उनके प्रथम कहानी संग्रह 'मकान के खण्डहर' में कथ्य एवं शिल्प की प्रारंभिक शिथिलता है पर आगे उनमें परिपक्वता का सहज बोध दिखायी देता है। 'मलबे के मालिक' में विभाजन की ट्रैजिक स्थितियों को कथ्य में रूपान्तरित किया गया है। 'परमात्मा का कुत्ता' में सरकारी खोखलेपन को उभारा गया है। 'एक और जिन्दगी' नारी-पुरुष के वैवाहिक जीवन की समस्याओं से जूझने वाली कथाभूमि पर विरचित एक सशक्त कहानी है। मोहन राकेश में यथार्थ है तो भावुक विस्तार भी।

डा० धर्मवीर भारती की 'सावित्री', 'गुलकी बन्नो', 'बंद गली का आखिरी मकान' और 'आश्रय' श्रेष्ठ कहानियों में गिनी जाने वाली कथाएँ हैं। 'गुलकी बन्नो' गहरी अनुभवशीलता का परिचय देती है। 'सावित्री नं० २' की मूल संवेदना एक लड़की की अभिशप्त जीवन की संरचना है। इसमें जटिल मानसिकता को उभारा गया है। 'बंद गली का आखिरी मकान' कायस्थ एवं ब्राह्मण के बढ़ते सम्बन्धों, आक्रोश, घृणा तथा सामाजिक दबावों की कहानी है। इनकी कहानियों में अनुभव की सघनता होती है।

निर्मल वर्मा को डॉ० नामवर सिंह नयी कहानी का सबसे सशक्त पुरोधा मानते हैं। इन्होंने नयी कहानी को अलग स्वर एवं स्तर से सम्पूरित किया है। निर्मल वर्मा शहरी परिवेश को कथ्य के रूप में उठाते हैं। अजनबीपन का बोध, विक्षोभ, शहरी

अमानवीयता विद्रूपता उसके कथ्य कौशल का विशेष स्वर है। 'लन्दन की एक रात', बेकार नौजवानो की बेचैनी से प्रारभ होती है। 'डेढ़ इच ऊपर एकालाप' जीवन की कुछ तस्वीको को उभारती है। 'लवर्स' दिल्ली के एक रेस्ट्रा मे प्रेमी-प्रेमिका के मिलन के कथ्य पर आधारित है जबकि 'परिन्दे' उनकी एक श्रेष्ठतर रचना के रूप मे स्वीकृति हो चुकी है। 'परिन्दे' चर्चित भी है और प्रसिद्ध भी हुयी है।

मन्नू भण्डारी प्रमाणिक अनुभवो के सृजन मे सिद्धहस्त लेखिका है। मन्नू भण्डारी तथा उषा प्रियम्वदा से नयी कहानी को एक गरिमा मिली है। आगे चल कर कृष्णा सोबती, मेहरुन्निसा परवेज, ममता कालिया ने भी नयी कहानी मे विशेष योगदान किया है। सुधा अरोड़ा दीप्ति खण्डेलवाल, राजी सेठ का नाम भी विशेष महत्व का है। 'वापसी' तथा 'जिन्दगी और गुलाब का फूल' मन्नू भण्डारी की उनकी दो ऐसी यशस्वी कथा रचनाएँ हैं जिन्होने नयी कहानी को विशेष गरिमा से सवलित किया है। पीढियो के अन्तर के भाव को उन्होंने कथ्य के रूप मे उभारा है। मालती जोशी अन्तर्द्वन्द्वो को उभारती है।

हिन्दी कहानी की रूपात्मकता को सजीव करने का प्रयास राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियो मे बेहतरीन तरीके किया है। वे विघटित्त होते हुए मानवीय मूल्यो के सक्षम सर्जक रहे है। वे स्त्री-पुरुष सम्बन्धो, सामाजिक मूल्यो, अन्तरविरोधो को 'देवताओ की मूर्तियाँ', 'खेल-खिलौने', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'अभिमन्यु की आत्महत्या', 'छोटे-छोटे ताजमहल', 'किनारे से किनारे तक', 'टूटना', 'वहाँ तक पहुचने की दौड़' जैसे संग्रहो मे उभारते और उकेरते रहे है। 'हस' कहानी पत्रिका द्वारा उन्होंने नयी कहानी की स्थापना मे सार्थक पहल भी की है। वे प्रामाणिक यथार्थ के खोजी कहानीकार है। आगे के कहानीकार महीप सिंह, दूधनाथ सिंह, ज्ञानरजन, अमरकान्त, मार्कण्डेय, नीलकान्त, नीलाभ, बटरोही भी विशेष महत्व के और उल्लेखनीय रचनाकार है जिनसे नयी कहानी का स्वरूप निखरा है तथा कुछ नया सृजित हुआ है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से स्थापित कथाकारो की कहानियो पर विहगम दृष्टि डालने से जो प्राथमिक स्वरूप उभरता है उसमे पारिवारिक सम्बन्धो मे जो तनाव, परिवर्तन, विघटन है वह लगभग सभी कथाकारो मे समान रूप से पाया जाता है। सेक्स, विवाह, प्रेम तथा विरोध के आधार पर सृजित महिला कथा लेखन के पीछे भी जो परिवर्तन हमे दिखायी देते है उनके मूल मे अर्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है। भौतिक सभ्यता ने भोग और समृद्धि का जो नया ससार सिरजा है उसने एक तरफ तो परम्परा को ध्वस्त कर दिया है और दूसरी तरफ सदवेना को भी भोथरा कर दिया है। तरक्की के लिये बेटा चीफ को दावत देता है। 'चीफ की दावत' शीर्षक इस कहानी मे भीष्म साहनी ने नयी पीढ़ी के स्वार्थ, अर्थलोलुप दिमाग का स्पष्ट वर्णन किया है। पहले

वह बूढ़ी माँ को बंद रखता है फिर सामने आ जाने पर भीतर ही भीतर क्रुद्ध होता है, कुढ़ता है। मानसिक द्वन्द्व को यहाँ कथाकार सूक्ष्मता से उकेरता है। चीफ जब माँ के पुलको पर रीझता है तो वही माँ, बेटे के लिये एक अर्थपूर्ण साधन प्रतीत होने लगी है। आपसी सम्बन्धो की इस छीजती हुई स्थिति को, गिरती हुई मन स्थिति को माँ की निरीहता और बेटे की प्रगति कामना दोनो का आभास देर तक जेहन मे झंकृत होता रहता है। कहानी की यह विडम्बना पाठक को देर तक झनझनाती हुई-सी महसूस होती है। इसी प्रकार बाप-बेटे के आपसी रिश्ते की कहानी 'शटल' जो नरेन्द्र कोहली की एक सशक्त संरचना है, मे सम्बन्धो की व्यर्थता एक अदभुत विडम्बना के रूप मे उभरती है। यहाँ एक रिटायर्ड बाप अपने ही बेटो के बीच पराया हो जाता है, अतिरिक्त एवं बोझ बन जाता है। माँ को तो सभी अपने पास रखना चाहते हैं क्योंकि वह घर का कार्य करती है किन्तु बाप उन सभी के लिये निरर्थक हो जाता है। उषा प्रियम्वदा की चर्चित कहानी 'वापसी' जिसे नयी कहानी मे प्रारंभिक, प्राथमिक कहा जाता है मे भी रिटायर्ड गजाधर बाबू की पीड़ा सामाजिक एव आर्थिक संत्रास की परिचायक बनती है। गजाधर बाबू अभी भी अपने जमाने की तरह, अपनी तरह परिवार को चलते देखना चाहते हैं परन्तु परिवार के किसी भी सदस्य को बेटा, बेटी बहू किसी को भी उनका यह दखल सहन हो नही पाता, परिणामत एक उपेक्षा, एक खीझ, एक वितृष्णा क्रमश: उभरती एवं पसरती जाती है। और अन्त मे निराश गजाधर बाबू एक सेठ के पास पुन. नौकरी करने चले जाते हैं। उषा प्रियंवदा की एक और कहानी 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' मे भी यही आर्थिक पक्ष भाई के बेकारी के सम्बन्ध मे उभरता है। कमाने वाली बहन का पूर्व स्नेह यहाँ चुक जाता है। सारे स्नेह सम्बन्ध भोथरे हो जाते है। माँ भी कमाउ बेटी के सामने दबने लगती है। कमलेश्वर की कहानी 'आशक्ति' भी कमाऊ बहन तथा बेकार भाई के रागात्मक सम्बन्धो की क्षीणता की कहानी है।

अर्थोपार्जन एवं परिवार के भरण पोषण मे कमाऊ पत्नी के समक्ष भी बेकार पति निरर्थक, बोझ बनता जाता है। यहाँ कथ्य कही मानसिक उदासीनता और कही सम्बन्धो मे दरार तथा विघटन को उजागर करता है। हमारी परम्परित सामाजिकता मे न तो लोच रह जाता है न सम्बन्धों की वह प्राथमिक उष्मा जो परिवार को बांधने, सहेजने और प्रफुल्ल रखने का कारगर औजार हुआ करता था। पारिवारिकता टूटती है, मन बिखरता है और समाज कमजोर पड़ता जाता है। अर्थ-सम्बन्धो के कारण ही व्यक्तित्वो मे टकराहट उभरती है। यह दूर तक व्यक्ति-सम्बन्धो को प्रभावित करता है। पति, पत्नी की यह टकराहट 'कमलेश्वर' की कथा 'राजा निरबमिया' के कथ्य मे एक चुनौती, एक प्रतिस्पर्धा, एक कुंठा बनती है तथा इतर सम्बन्धों की ओर पत्नी को उन्मुख कर देती है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'टूटना' मे किशोर और लीना प्रेम-विवाह करते हैं। लीना

इन्कम टैक्स कमिश्नर की बेटी है और किशोर प्रारम्भ मे 'लीना' का ट्यूटर और बाद मे लेक्चरर। 'लीना' किशोर के रहन-सहन, बात-व्यवहार मे खोट खोजती है उसे अप टू दी मार्क, अप टू डेट बनाने के नुस्खे समझाती है तो किशोर झल्ला उठता है और अन्तत अलग हो जाता है। मोहन राकेश की कहानी 'एक और जिन्दगी' मे भी 'बीना' का दर्प अन्तत एक टूटन को, बिखराव को जन्म देता है। दो पत्नियो को तलाक देकर, उन्हे परित्यक्ता व असहाय जिन्दगी सौंपकर 'एक धोखा और' में धर्मेन्द्र गुप्त ने असामंजस्य, दर्प, ईर्ष्या और व्यथा को सम्पूर्णता मे उजागर किया है। पत्नियो का खुला व्यवहार, अर्थ लिप्सा, बढ़ती महत्वाकांक्षा, नौकरी की ललक, दिखावा और कजूसी की वृत्ति से भी परिवार टूटे है, समाज बिखरा है तथा परम्परा शिथिल और पगु हुई है। इधर हाल के वर्षो मे स्त्री-पुरुष मे मित्रता का भाव बढ़ा है जो पुरानी पीढ़ी मे सन्देह उपजाता है। मोहन राकेश की कहानी 'नये बादल' इसी बन्धुभाव के विकसित होने की कथा है। मध्यमवर्ग की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ नौकरी के प्रति झुकी है। दिनभर की भाग-दौड़ थकान तथा पर्यावरण का शोर, काम का बोझ उन्हे घर की जिन्दगी, परिवार की व्यवस्था का समय दे नही पा रहा है जिससे समस्याएँ उठती हैं। घर की गरमी से जूझने मे परित्यक्ता औरत, विधवा अथवा गरीबी की मार झेलती हुयी घरेलू नौकरानियो का काम करती है। नौकरी से पैसा मिलता है और थकान भी। बोझिल मन और शिथिल तन लिये ये औरतें अपने ऊपर, अपने आश्रितो के ऊपर खीजती, भुनभुनाती रहती है अतएव कुठा, अजनबीपन, एकाकीपन, हताशा की अनेक परिस्थितियाँ निर्मित होने लगती है और पूरे मध्यमवर्गीय समाज से जो आगे बढ़ने की आकाक्षा, ललक, धनवान, सम्पन्न होने की तृष्णा है, उच्च पद पाने की प्रबल इच्छाएँ है उन्होने यौन-शोषण, घूस, बेगारी जैसी समस्या को उभारा है।

प्रेम सम्बन्धो को लेकर लिखी गयी कहानियो मे वय का अन्तर, जाति का अन्तर तो है ही परन्तु वहां केवल रोमानियत का ही सृजन नही है। यहाँ मन स्थितियो, स्तरो परिस्थितियो के तनाव, जटिलता, नैतिकता के द्वन्द्व, स्पर्धा के भाव और सघर्ष की आधारभूमि पर कथ्य को विस्तारित किया गया है। उषा प्रियवदा से लेकर राजी सेठ तक, शशि प्रभाशास्त्री, मालती जोशी, ममता कालिया से लेकर दीप्ति खण्डेलवाल, सुधा अरोड़ा तक की रचनाओ मे नारी की अस्मिता, उसके सघर्ष, उसके यौनशोषण, उसकी उपेक्षा, उसकी प्रतारणा के अनेकानेक कथ्य प्रसारित मिल जाते है। निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' मे लतिका, मिस्टर वुड तथा डाक्टर सभी टूटे मन, व्यथित तन लेकर पहाड़ पर जुटे हैं। 'लतिका कथा' के केन्द्र मे है। उसकी सम्पूर्ण परेशानी दिवगत प्रेमी 'त्यागी' से उसके भावुक लगाव मे है। 'गुलकी बन्नो' धर्मवीर भारती की एक परित्यक्ता, कुरुप गुलकी की कहानी है। मन्नू भण्डारी की 'यही सच है' भी ऐसी ही कथा है।

ग्रामीण परिवेश और गंवई मन-भाव को लेकर लिखी गयी कहानियों मे, टटकी संवेदना को आधार बनाया है फणीश्वरनाथ रेणु ने अपनी कहानी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम मे'। मार्कण्डेय की चर्चित कथा सरचना 'हंसा जाई अकेला' डॉ शिव प्रसाद सिंह की 'न हो', लक्ष्मीनारायण लाल की 'राम जानकी रोड', मेहरुन्निसा परवेज की 'टोना', शिवसागर मिश्र की 'दीवार पर औरत', भैरवनाथ गुप्त, नीलकान्त, दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, लक्ष्मण सिह विष्ट, शानी, ज्ञानरजन वीरेन डंगवाल, राम कुमार ने ऐसी अनेक कहानियो का सृजन किया है जिसमे गाँव की बदहाली, बेनूरी, टूटते-परिवार, विलुप्त होते हुए तीज-त्यौहार, आपसी द्वेष, ईर्ष्या, स्त्रियो की घृणा, बड़बोलापन, द्वेष, मानसिक कुंठा, उभर कर सामने आयी है। 'हंसा जाइ अकेला' मे सुशीला बहन गांधी का सन्देश लेकर गाँव आती है और अविवाहति हंसा से उनका प्रेम हो जाता है। गांव के बाबू साहेब तो चुनाव हारते है पर सुशीला की मृत्यु हंसा की विक्षिप्तता से कहानी कारुणिक अवसान की ओर बढ जाती है। 'नन्हो' मे नन्हो को जवान देवर रामसुभग को दिखाया जाता है पर उसे व्याहा जाता है बूढे मिसरी लाल से। विधवा नन्हो भीतरी भाव, उद्वेग और चाह के बावजूद रामसुभग से जुड़ नही पाती और भीतर ही भीतर दाह से, त्रास से घुटती रह जाती है।

राजेन्द्र अवस्थी की चर्चित कहानी 'मैली धरती के उजले हाथ' मे ब्राह्मण कन्या का विवाह, हरिजन के युवक से प्रेम की परिणति के रूप मे चित्रित किया जाता है। 'टोना' भी आदिवासी प्रेम कथानक पर सिरजी गयी कहानी है, जिसमे परिवेश गत सचाई, टोनहिन का सहज प्यार यहाँ वर्णित है। 'अदरक की गांठ' मे दो युग्मो की कथा है जो चारित्रिक पतन, दुहरे मनोभाव को उभरती है. नयी कहानी इन इतर सम्बन्धों के साथ-साथ जीवन की अनेक विसंगतियो को भी उभारती, सहेजती है। मानव-मन की पीड़ा, दंश, स्पर्धा और प्रत्यारोपो से उपजी वितृष्णा, शरीर की भूख, प्यार की तृष्णा, सभी यहाँ उभरते है।

नयी कहानी का समाज आर्थिक गाँव राजनीतिक विसंगतियो का समाज है जिसमे प्रेम, परिवार, घर, गाँव, रोजी-रोटी, नौकरी सभी अर्थ के भरोसे उभरते, टूटते हैं। 'जिन्दगी और जोंक', अमरकान्त की ऐसी ही कहानी है जिसमे गरीबी, दुर्दशा, उपभोग, विवशता बीमारी के बावजूद जिन्दगी की जिजीविषा मे जोंक की तरह चिपटा आदमी समय की काल की, अर्थ व्यापार की, व्यवहार की मार झेलने को अभिशप्त है। जमाखोरी, चोर बाजारी तथा राशन-पानी, धूल-धुआ, चीनी-किरासन की लूट-खसोट, घूस और बेईमानी की पीड़ा ने आज के मध्यमवर्ग को लहुलुहान करके रख दिया है। नयी कहानी इसी बेहाल समाज, मध्यमवर्ग की रोजमर्रा की जद्दोजहद को शब्द देती है।

अमरकान्त की 'निर्वासित', डॉ. माहेश्वर की 'कोई आग', सुरेश सिन्हा की 'हालत'

मे नेताओ के झूठे आश्वासन, गरीबी, बेहाली बदइन्तजामी के आलेख परक कथ्य है। '**भूख**' की आग मध्यमवर्ग को बेहाल करती है। मध्यवर्ग अपनी सफेदपोशी मे भी भीतर-भीतर असहाय और कितना खोखला होता गया है इसका उल्लेख भी नये कथाकारो ने किया है। सामाजिक रिश्तो की टूटन, बिखराव सामूहिक चेतना का अभाव भी इन कहानियो मे मुखर अभिव्यक्ति पाता रहा है। बाद की नयो कहानियो मे राजनीतिक चेतना मे बेहद उभार आया है। दूधनाथ सिह की कहानी 'कोरश', रमेश उपाध्याय की 'जलूस' हिमाशु जोशी की 'मनुष्य चिह्न' ऐसी ही कथा रचनाएँ है।

इस प्रकार इस छानबीन से यह बात विशेष रूप से उभर कर सामने आती है कि नयी कहानी, नये सक्रमण शील समाज की हर कोशिशो, प्रयासो को अपनी सीमा मे उठाती है। वह निष्कर्ष भले ही नही देती पर स्थित के अन्दाज से दिशा का बोध देती है। नयी कहानी समाज सापेक्ष है और सामाजिक सोद्देश्यता से जुड़ी हुई है।

6

नयी कहानी का संरचनागत समाजशास्त्रीय विवेचन

'कला सौन्दर्य का सत्य को कई जगह देखने का उपक्रम करने मे है। हर कहानी अपना अलग रूप, अलग रग लेकर आती है। अत हर कहानी का शिल्प भी सर्वथा अलग-अलग होता है। नयी कहानी के कथाकारो ने कथा-शिल्प के क्षेत्र मे अनेक प्रयोग किये है, कथा-शिल्प मे इतने नूतन प्रयोग हुए है कि कुछ आलोचक नयी कहानी को 'शैली मात्र' कहना पसन्द करते है। यथार्थ को जीवन सन्दर्भो मे ढूढना, सम्बन्धो का विघटन, अकेलेपन की स्थिति का बोध, संश्लिष्ट जीवन और भोगे हुए क्षण को कथ्य का रूप देना ही आधुनिकता के सदर्भ मे लिखी गयी नयी कहानी की अपनी दिशा है। नयी कहानी का यात्रा हमेशा बदलती रही है। यहाँ भाषा अग्रगामी नही होती, तथ्य अग्रसर होता है सोच से भाषा सयमित होती है और ट्रैक बदलती है।

नयी कहानी की भाषा-संरचना

नयी कहानी न केवल वस्तु के स्तर पर पारम्परिक कहानी से इतर व भिन्न है, बल्कि सरचना के स्तरपर भी यह उससे अलग है, विशिष्ट व भिन्न है। नयी कहानियो मे स्वीकृत संसार औद्योगिक और पूँजीवादी प्रभावी से उत्पन्न जटिलता मे संक्रान्त समाज था। नयी कहानी ने जिस समाज से अपनी कथाओ का चुनाव किया, वह समाज प्राय मध्यवर्गीय समाज था। आत्मनिष्ठता जिसका गुण था, मध्यमवर्गीय जीवन की संवेदनाओ को अभिव्यक्ति देना बहुत चुनौतीपूर्ण कार्य था। इसलिये नयी कहानी मे संरचना के स्तर पर कहानीकार अधिक सजग-सक्रिय दिखायी देता है।

बदली हुई भाषा को, पहले कथा भाषा की अपेक्षा विश्लेषण के लिये गहरी, सूक्ष्म दृष्टि का होना आवश्यक है। 'कहानी की भाषा, पिछले वर्षो मे जिस ढंग से और जिस दब से बदलती रही है उसे पूरी तरह समझने के लिये काफी सूक्ष्म स्तर के अध्ययन की आवश्यकता है।'[१]

नयी कहानी ने अज्ञेय, जोशी, यशपाल और जैनेन्द्र की कहानियो की सरचना को विरासत रूप मे स्वीकार किया या नही यह एक अलग प्रश्न है, किन्तु उन्होने

१ आजकल, जुलाई २०००, कथाकार निर्मल वर्मा के साथ राजेश वर्मा की बातचीत, पृ० १०-११।

प्रेमचन्द की परम्परा को उसकी सादगी और जीवन्तता मे आगे नही बढाया। कही न कही ये *मानसिक सूक्ष्म व्यापारो को सकेतो, व्यजनाओ मे व्यक्त करने वाले अमूर्तन* की ओर जाते दिखायी पड़ते हैं। यद्यपि नगर-बोध की कहानियो के समानान्तर जो ग्राम-कथाएँ लिखी गयी, इनमे प्रेमचन्द की विरासत अधिक सर्जनात्मक निखार पाती दिखायी देती है। कमलेश्वर की कहानियाँ विम्बो की क्षमता मे अत्यधिक विश्वास रखती है और मोहन राकेश अपने व्यक्तिवादी आग्रह के बावजूद सरचना के स्तर पर अधिक व्यस्त हैं। *उनकी कहानियो मे खटकने वाले प्रयोग प्राय नही मिलते। नयी कहानी के कथाकारो* ने यह दावा किया कि उन्हे अधिक जाने-पहचाने जीवन की प्रामाणिक गाथा लिखनी है। इस गाथा मे निम्न मध्यमवर्गीय जीवन की समस्याएँ, महत्वाकाक्षाएँ, बौद्धिक सवेदनशील और आत्म-सजग व्यक्ति का प्रखर अस्तित्व बोध, बाहरी जीवन से कटाव के कारण उत्पन्न अजनबीपन, रचनात्मक आस्था के प्रति अविश्वास के कारण आत्मपरायापन, संत्रास, दिशाहीनता आदि प्रतिफलित हुए। इन कथाकारो मे समाजिकता उतनी सक्रिय नही थी जितनी कि आत्मपरकता, यही कारण है कि जीवन-बोध के रचनात्मक प्रतिफलन का सर्वथा नकारात्मक रूप नयी कहानी मे दिखायी देता है।

नयी कहानी की भाषा के सन्दर्भ मे ***राजेन्द्र यादव*** लिखते हैं कि— 'अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच भाषा निश्चय ही एक तीसरी जीवित और स्वतंत्र सत्ता है। वह *हमे औरो से मिली है, हमे औरो से जोड़ती है।*'[1]

सामान्य बोलचाल की भाषा को रचनाकार अपनी रचना मे स्थान देता है। राजेन्द्र यादव ने अपनी पुस्तक मे एक जगह उल्लेख किया है— 'कथा भाषा वह पारदर्शी शीशा है जिसके दूसरी ओर जिन्दगी गाल सटाये झाकती है। उसे हम जैसा का तैसा छू भले ही न सके महसूस जरूर कर सकते है। अपने भीतर फिर से जी सकते हैं, वस्तुत बाहर के साथ जीते तो हम अपनी ही जिन्दगी है।'[2]

भाषा संरचना के साथ ही साथ शिल्प पर भी विचार कर लेना आवश्यक जान पड़ता है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका मे शिल्प को व्याख्यायित करते हुए—

'इसे कलात्मक निर्वाह की पद्धति माना है।'[3]

भाषा रचनाकार की अभिव्यक्ति तथा पाठक तक सम्प्रेषित करने का माध्यम होता है। रचनाकार जो कुछ कहना चाहता है उसे भाषा को बीच का *माध्यम बनाना पड़ता* है। जिससे विचारो तथा भावनाओ को मुखर किया जाता है। इसलिये भाषा को समृद्धिशाली होनी चाहिये।

---

१. *राजेन्द्र यादव-कहानी स्वरूप और सवेदना-कथा साहित्य की भाषा, पृ० ११२।*

२ *राजेन्द्र यादव-कहानी स्वरूप और संवेदना-कथा साहित्य की भाषा, पृ० ११७।*

३ *इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग-२७, पृ० ८१०।*

शैली टेकनीक होती है। अंग्रेजी भाषा मे 'स्टाइल' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जिसका जिमका अर्थ हम ढग या तरीका से भी ले सकते है। अंग्रेजी मे टेकनीक के साथ 'क्राफ्ट' स्ट्रक्चर तथा फार्म शब्द का प्रयोग किया जाता है।

कहानियो के शिल्प के लिये रुपवध शब्द भी जहाँ-तहाँ प्रयुक्त हुआ है। साहित्य के स्तर पर वाह्य तत्व के साथ-साथ भाषिक सरचना की जाती है। शिल्प अपने मे वह सम्पूर्ण रूप है जिसमें रचना का कथ्य आकार ग्रहण करता है। अज्ञेय ने लिखा है—

'पूरा समाज जिम भाषा के साथ जीता है उसमें और उसी के साथ जीते हुए अगर हम जीवन सन्दर्भ को पहचानते है और उस भाषा मे रचना करते है तो हमारा समाज ही रचनाशील हो सकता है। जबकि दूसरी ओर अनुवादजीवी समाज के सामने जब कोई नयी चीज आती है तो वह तुरत दूसरे का मुँह देखने लगता है क्योंकि *अपनी शक्ति को पहचानना उसने सीखा ही नही। भाषा हमारी शक्ति है। उसको हम* पहचाने, यही रचनाशीलता का उत्स है। व्यक्ति के लिए समाज के लिए।'[१]

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने शोध प्रबंध मे शिल्प को अंग्रेजी टेकनीक का अनुवाद मानकर ही चले है।'[२] कहानी रचना एक कला है और शिल्प उस कला की चरम परिणति का नाम है अत. शिल्प और कला का अटूट रिश्ता है।

वहुत-सी कहानियो का कथ्य एक हो सकता है लेकिन कहने का ढंग अलग ही रहता है। युगवोध का परिचय कथाकार शिल्प के माध्यम से कराता है। अनुभूति का स्वर जैसे-जैसे वदलता जाता है वैसे-वैसे कलारूपो के मानदण्ड भी वदल जाते है। *विना शिल्प के किसी भी रचना का अस्तित्व सम्भव नही।*

अक्सर लोग शैली और शिल्प को एक ही मान वैठते है परन्तु दोनो मे भिन्नता है। शैली विषयगत होती है शिल्प वस्तुगत।

नयी कहानियों में विविध प्रयोग

कहानी ने अपने पुराने तेवर को त्यागकर आगे वढ़ने का वहुआयामी प्रयास किया। नयी कहानी मे भोगे हुये यथार्थ को आधार वनाया गया है। आगे नयी कहानी मध्यमवर्गीय समाज से जुड़ी हुई थी और इसी समाज से ही वह अपने पात्रो का चयन करने की दिशा मे पूरी तत्परता से अग्रसर हुई।

नयी कहानी का कथाकार उसी भाषा को आधार वनाता है जिस भाषा मे यथार्थ घटा हो, रचनाकार के लिये भाषा दुहरा माध्यम है एक तो रचना के विषय के अनुभव

---

१ *सच्चिदानन्द, स० सामाजिक यथार्थ और कथा-भाषा, पृ० २७।*

२ *डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल हिन्दी कहानियो की शिल्प विधि का विकास।*

का माध्यम और दूसरे अभिव्यक्ति का भी। नयी कहानी के कथाकार की भाषा सुघड़ एवं तैयारी पूर्ण एव पात्रानुकूल बनी। राजेन्द्र यादव की कहानियो का शिल्प कहीं-कहीं कठिन लगने लगता है, यादव का मन हमेशा विशिष्टता स्थापित करने के प्रन मे लगा रहता है। यह एक प्रयोगधर्मी रचनाकार है तथा अपने कथ्य को विभिन्न कोणो से उठाने का प्रयास करते है। *डा. नामवर सिंह* एव *डा. शिव प्रसाद सिंह* इनके शिल्प पर तीखी आलोचना करते हुए इन्हे जटिल कथाकार सिद्ध किया है। राजेन्द्र यादव ने अपने अनुभव को ही अभिव्यक्त किया है। कभी-कभी लगता है यादवजी, अपनी कहानियो मे किसी एक ही बात को बार-बार घुमा-फिरा कर समझाने का प्रयास करते है। उर्दू एव अग्रेजी के शब्द तद्भव, तत्सम शब्दो का प्रयोग अपनी भाषा के अन्तर्गत करते है। कही-कही पर तद्भव तथा तत्सम शब्दो का असगत प्रयोग कर दिया गया है। जैसे— 'कुतिया' नामक कहानी से यह स्पष्ट है 'वह कभी हमारे यहाँ रही थी और प्यार की भाजन थी।'[1] भाजन तत्सम है और प्यार शब्द तद्भव।

इसी तरह राजेन्द्र यादव की 'टूटना, प्रतीक्षा, पेट्रोल पम्प, कमजोर लड़की की कहानी आदि मे अग्रेजी भाषा का भरपूर प्रयोग हुआ है। 'टूटना नामक कहानी को पढकर ऐसा लगता है कि अग्रेजी भाषा के प्रयोग के बिना यह कहानी पूरी नही हो सकती।

चाहे प्रणय प्रसग हो या अन्य राजेन्द्र यादव ने अज्ञेय की भाँति मौन की अभिव्यक्ति हेतु ' . ' का प्रयोग बखूबी किया है, कभी-कभी कथाकार अपनी बातो को शब्दो के माध्यम से अभिव्यक्त करने मे असमर्थ हो जाता है। तब उन क्षणो को इन बिन्दुओ को माध्यम बनाता है। 'भावनाओ की एकलयता के उन क्षणो मे शब्द क्यो भावो को ढके? क्यो न मौन के माध्यम से हम लोग एक-दूसरे को लिये पाये निराकरण और निर्व्याज ।[2]

राजेन्द्र यादव की कहानियो मे छोटे-छोटे वाक्यो का प्रयोग किया गया है। इसके लिए 'अपने पार नामक' दृष्टव्य है।

'पापा नही है। यहाँ नही है। सिर्फ मम्मी है। उनकी बहुत-सी सहेलियाँ है उनसे मे बहुत जल्दी बोर हो जाता हूँ।'[3]

रचनाकार मानव-मन की जटिलताओ को खोलने के लिये कही-कही प्रश्नो की लगातार झड़ी-सी लगा देता है जैसे— 'अभिमन्यु की आत्महत्या' कहानी के अश से स्पष्ट होता है—

१ *राजेन्द्र यादव-खेल-खिलौने, पृ० ४१।*
२ *राजेन्द्र यादव-टूट और मन, पृ० २०७।*
३ *वही, अपने पार, पृ० ३१।*

'.........लेकिन निकलकर ही क्या होगा? किस शिव का धनुष मेरे बिना अनटूटा पड़ा है? किस अपर्णा सती की वरमालाएँ मेरे बिना सूख-सूख कर बिखरी जा रही है? किस एवरेस्ट की चोटियाँ मेरे बिना अछूती बिलख रही है।''

नयी कहानियों की भाषा की प्रमुख विशिष्टता उसकी प्रतीकात्मकता है। प्रतीक का अभिप्राय-अभिधेय अर्थ के अतिरिक्त अन्य अदृश्य अर्थ जो वास्तविक होता है का संकेत करना है। प्रतीको के सन्दर्भ मे अपने विचार प्रकट करते हुए बच्चन सिंह लिखते हैं कि— 'प्रतीक सर्वदा अपने मे इतर संकेत देता है'।[२]

नयी कहानियो मे प्रतीक अपनाने की विधा पाश्चात्य कथा साहित्यो से आया है, अज्ञेय ने अधिकाश कहानियाँ लिखी है। राजेन्द्र यादव का 'खेल-खिलौने', 'जहाँ लक्ष्मी केन्द्र है', 'खेल', 'छोटे-छोटे ताजमहल' आदि कहानियो मे प्रयोग किया है।

नयी कहानियो मे बिम्बो का प्रयोग हुआ है। इसे डा नामवर सिंह ने स्वीकार किया है। बिम्ब वस्तुत. आधुनिक युग की कलात्मक अभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम हो गया है।[३] बिम्ब अंग्रेजी भाषा के 'इमेज' से लिया जाना है।

बच्चन सिंह के अनुसार– 'बिम्ब किसी अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्निमिति है।'[४] बिम्ब संवेदनो, प्रतीकों का मूर्तन है। वह एक सहज क्रिया है।'

राजेन्द्र यादव की कहानियो मे बिम्बो का प्रयोग हुआ है। 'अभिमन्यु की आत्महत्या' के एक दृश्य जिसे उसने बान्द्रा की सड़क से टहलते हुए सीएट के स्टैण्ड पर देखा था.. ...को बिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

'पास ही मजदूरो का एक बड़ा-सा परिवार धूलिया फुटपाथ पर लेटा था। धुआते गड्ढे जैसे चूल्हे की रोशनी मे एक धोती मे लिपटी छाया पीला-पीला मसाला पीस रही थी। चूल्हे पर कुछ खदक रहा था। पीछे की बाउण्ड्री से कोई झूमती गुनगुनाहट निकली और पुल के नीचे से रोशनी अंधेरे के चारखाने के फीते-सी रेल सरकती हुई निकल गई।'[५]

राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियो के अन्तर्गत मिथकों का भी संयोजन किया है। रचनाकार पौराणिक या ऐतिहासिक आख्यानो को आज के संदर्भ के साथ जोड़ कर जो कुछ नयी उपलब्धि या पुन. सन्दर्भन करता है, वही मिथक है।

डा. नामवर सिंह ने लिखा है नयी कहानी संकेत करती नही, बल्कि स्वयं ही

---

१ राजेन्द्र यादव-अभिमन्यु की आत्महत्या, पृ० ६६।

२. बच्चन सिह-आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, पृ० ६२।

३. नामवर सिंह- कहानी नयी कहानी, पृ० ३७।

४. बच्चन सिंह-आधुनिक आलोचना के बीच शब्द, पृ० ७०

५. राजेन्द्र यादव-मेरी प्रिय कहानियाँ 'अभिमन्यु की आत्महत्या, पृ० ६७।

संकेत है। डा. नामवर सिंह की बात इस ओर संकेत करती है कि साकेतिकता नयी कहानी का एक विशेष गुण है। इसमे व्यंजना एवं लक्षणा नामक शब्द शक्तियाँ निहित होती है।

कथ्य को सम्प्रेषित करने के लिये भाषा मे पैनेपन की आवश्यकता होती है क्योकि जो बात सामने रखी जा रही है वह अधिक से अधिक प्रभावशाली होनी चाहिए। अलकारो एवं अप्रस्तुत विधानो का प्रयोग भी राजेन्द्र यादव की कहानियो मे देखा जा सकता है।

राजेन्द्र यादव की कहानियो मे फ्लैश बैक पद्धति का प्रयोग हुआ है। 'टूटना', 'प्रतीक्षा', 'खेल-खिलौने' आदि इसके उदाहरण है।

कहानी की विभिन्न शैलियाँ है, जैसे— वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक, आत्मकथात्मक, डायरी, पत्र एवं स्मृतिपरक शैली। राजेन्द्र यादव ने अधिकाश डायरी, आत्मकथात्मक, डायरी, पत्र एवं स्मृतिपरक शैली आदि शैली मे कहानियाँ गढ़ी हैं। पत्र शैली मे भी इन्होने अपनी कहानियाँ लिखी है। ऐसी कहानियाँ 'तीन पत्र और आलपीन', 'अँगारो का खेल' आदि अनेक कहानियाँ हैं।

राजेन्द्र यादव की भाषा मे कही-कही संगीत के उपमानो का चुनाव किया गया है। भाषा मे रूमानीपन, सहजता, सरलीकरण, यथार्थबोध आदि प्रवृत्तियाँ मिलती है।

परम्परागत, लेखक अनुभव को अनुभव के रूप मे व्यक्त करते रहे, इस अनुभव को पूरी तरह से जी लेने के बाद फिर अभिव्यक्ति का काम करते थे।

कमलेश्वर के अनुसार– 'कला के स्तर कहानी मेरे लिये एक बहुत ही कठिन विधा है। हर कहानी एक चुनौती बनकर सामने आती है और उसके सब सूत्रों को सभालने से नसे फटने लगती है। .... तमाम ऐसी तकलीफे मुझे उसी वक्त सताती है और मैं भागता रहता हूँ। . यह भागना तब तक चलता रहता है, जबतक अनुभव अनुभूति मे आत्मसात नही हो जाता। उसके बाद लिखना मेरी मुक्ति का प्रयास बन जाता है।'[1]

कमलेश्वर ने नयी अनुभूति से नये शिल्प की उद्भावना की है ऐसे मे 'राजा निरबंसिया' का शिल्प मे, दो युगो के बदलाव को एक साथ रखा गया है और इस कहानी मे एक नये शिल्प का जन्म होता है। जीवन के विविध और विरोधी सवेदनाओ, उसके अर्न्तबाह्य संक्रान्तो को अभिव्यक्त करने के लिये कहानी के पुराने ढाचे से निकल कर 'राजा निरबंसिया दृष्टि या चेतना से अधिक रूप के' सक्रमण की प्रतीक है।

धनंजय वर्मा का कहना है। इसमे कोई सन्देह नही कि लेखक इस कहानी से शिल्प के प्रति सजग है। कमलेश्वर की अधिकतर कहानियो मन स्थिति केन्द्र मे रहती

१. धर्मयुग पत्रिका-८ नवम्बर १९६४, आत्मकथा, कमलेश्वर, पृ० ३९।

है। पात्र उस मन स्थिति को जीने लगते है मन स्थिति और अभिन्नता स्थापित होने पर धीरे-धीरे मन स्थिति एक विशिष्ट ऊँचाई पर चली जाती है, और वही कहानी का समापन होता है। जिसे हम मन स्थिति की चरम सीमा भी कह सकते हैं। 'नीला झील' का महेश पाण्डेय मन्दिर बनवाने के बजाय झील बनवा लेता है। 'तलाश' की मर्मी की उदासी अतिम वाक्य द्वारा स्पष्ट हो जाती है। 'मास का दरिया' मे जुगनू मदनलाल को बुलवाना चाहती है। इस प्रकार की कहानियो मे यह चरम स्थिति है। इसलिये पाठको की उत्सुकता अत तक बनी रहती है।

भाषा की नवीनता और भाषा की शक्ति उसकी सम्प्रेषणयता से ही सिद्ध होती है। इसमे कमलेश्वर की भाषा सफल रही है। कथ्य, चरित्र और वातावरण के अनुसार भाषा का सृजन यहाँ हुआ है। भाषा की दृष्टि से कमलेश्वर की कहानियाँ बहुत योजनाबद्ध एवं तराशी हुई होती है।

डॉ० सुरेश सिन्हा ने लिखा है– 'कमलेश्वर की भाषा भी बड़ी मजी हुई है। उर्दू और अग्रेजी के सामान्य प्रचलित शब्दो को आवश्यकतानुसार शामिल कर उन्होने अपनी भाषा को अत्यन्त सशक्त, साफ-सुथरी एव प्रभावशाली बनाया है, जिसमे सादगी के साथ रवानी है। भाषा का यह प्रवाह एव अभिव्यक्ति की यह समर्थता कमलेश्वर मे इतनी उत्कृष्ट मात्रा से मौजूद है कि कभी-कभी कमजोर-सी लगने वाली कहानी भी ए-वन-सी प्रतीत होने लगती है।[१]

कमलेश्वर की भाषा की एक विशेषता यह भी है कि इनकी कहानियो के अन्तर्गत उर्दू भाषा के शब्दो का विपुल भण्डार देखने मे मिलता है जिससे अधिक रूमानीपन आ गया है। कमलेश्वर की भाषा प्रेमचन्द की भाषा शैली का अनुकरण करती है। कमलेश्वर की कहानियाँ भाषा सम्बन्धी दुराग्रह से परे हैं। उर्दू के प्रभाव को इस अंश मे देखा जा सकता है— 'बराए मेहरबानी, आम आदमी की तकलीफ को हिन्दी और उर्दू की तकलीफ मे तकसीम न कीजिए।'[२]

रचनाकार जनसामान्य का होता है इसलिये लेखक के लिये जरूरी हो जाता है समाज को देखते हुए जनता के मनोभावो को समझकर उन्ही के अनुरूप भाषा का प्रयोग करे। इसीलिये कमलेश्वर ने भाषा को उर्दू और हिन्दी के दायरे मे बांधने का प्रयास नही किया है। भाषा से लेखक का जुड़ाव अनिवार्य है। इसलिये इन्होंने जनसामान्य के बोल-चाल को भाषा का ही प्रयोग किया है।

कमलेश्वर लिखते है कि– 'भाषा की कोई जाति नहीं होती। एक जनता अपने जज्बातो, जरूरतो और संघर्षो के लिये भाषा को पैदा करती है और इस्तेमाल करती

१. *डॉ० सुरेश सिन्हा-नयी कहानी की मूल सवेदना, पृ० ११०।*

२. *धर्मयुग, पृ० २१, दिसम्बर १९७३, धर्मयुग मे प्रकाशित कमलेश्वर का लेख।*

है, उसे लेकर जीती या मरती है।'[१]

उर्दू शब्दो के साथ ही अपनी कहानियो के अन्तर्गत कमलेश्वर ने अंग्रेजी भाषा के प्रचलित शब्दो का भी प्रयोग किया है जैसे— *कालेज, यूनिवर्सिटी, मिस्टर, मिसेज, मार्केट* आदि।

कमलेश्वर की कहानियो मे प्रतीको का भी प्रयोग हुआ है। इनकी कहानियाँ अधिकतर प्रतीकवादी हैं 'तलाश' की ममी और सुमी के बीच की बढ़ती दूरी की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक ढग से की गयी है—

'उन दोनो के बीच पानी का एक रेला आ गया था। वे सिर्फ किनारो की तरह समानान्तर खड़ी रह गयी थी।'[२]

कमलेश्वर ने 'नीली झील', 'लाश', 'जोखिम', 'राते', 'नागमणि' आदि अनेक प्रतीकात्मक कहानियाँ लिखी है।

कमलेश्वर ने अपने कहानियो मे बिम्बो का प्रयोग बखूबी किया है। 'तलाश', 'नागमणि', 'मेरी प्रेमिका', 'मेरी उदास रात', 'वह मुझे ब्रीच कैण्डी पर मिली थी' आदि अनेक कहानियो मे बिम्बो का अत्यन्त सुन्दर ढग से प्रयास किया गया है। चाहे परिवेश का चित्र अकित करना हो या किसी पात्र का चित्र। 'मास के दरिया' नामक कहानी मे जुगनू का चित्र वैसा ही प्रस्तुत किया है जैसा कि पाठक के मन मे होना चाहिये। व्यग्यात्मक कहानियाँ कमलेश्वर की उत्कृष्ट कोटि की कहानियो के अन्तर्गत आते है जैसे— 'जिन्दा मुर्दे', 'जार्ज पचम की नाक' आदि।

'जार्ज पचम की नाक', कहानी मे कितना *तीखा व्यग्य किया गया है*—

'विदेशो की सारी चीज हम अपना चुके है। दिल, दिमाग, तौर-तरीके और रहन-सहन . .जब हिन्दुस्तान मे बाल डान्स तक मिल जाता है तो पत्थर क्या नही मिल सकता।'[३] एक अन्य स्थल पर भी भाषा की ऐसी ही शक्ति उभर कर सामने आयी है— 'जार्ज पचम की नाक को मल-मल कर नहलाया गया था, रोगन लगाया गया था। सब कुछ था, सिफ नाक नही थी।'[४]

कमलेश्वर की भाषा मे निरन्तर निखार आता गया, शब्दो को नये तरीके से प्रस्तुत करने *की कला, नित-नूतन प्रयोग उत्कृष्ट प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति,* इनकी कहानियो को उत्कृष्ट रूप प्रदान करती है।

'तलाश' की ममी अपने मित्र मिस्टर चन्दा की ओर आकृष्ट होती चली जाती

१ *धर्मयुग-दिसम्बर १९७३, पृ० १२-१३।*

२ *कमलेश्वर-तलाश।*

३ *जार्ज पंचम की नाक, पृ० ११।*

४ *जार्ज पंचम की नाक, पृ० १४।*

है। जिससे बेटी सुमी को लगता है कि ममी मृत पिता से दूर होती जा रही है। इसी कारण सुमी और ममी के सम्बन्ध औपचारिक ही होकर रह जाते है। प्रस्तुत अंश मे इसी मनोभावो को व्यक्त किया गया है— 'दोनो कमरे दो अलग-अलग दुनियाओं में वदल गये थे। उमके कमरे मे पापा अब भी रुके हुए थे। ममी शायद उनसे कुछ बात करना चाहती थी। शायद उन्हे लग रहा था कि पापा की तरफ से अब सुमी ही बात कर मकती है।'[1] कमलेश्वर की भाषा मे सम्प्रेषण की अद्भुत क्षमता है जिमके कारण रचनाकार कथ्य, चरित्र, वातारवरण के अनुमार भाषा रचने तथा गढने का प्रयाम किया।

जो लिखा नही जाता कहानी की नायिका के अकेलेपन के एहमास को कथाकार शब्दवद्ध करता है—

'जो बताने से बच जाता है, वही बहुत अकेला कर जाता है। नितान्त अकेलापन भर जाता है चारो तरफ। सबकी यही मजबूरी है।'[2] कमलेश्वर की भाषा मे मुहावरो का भी प्रयोग हुआ है जैसे— चमड़ी उतारना, कलेजे पर साँप लोटना आदि। सूक्ति वाक्य भी इनकी कहानियो मे आये है। सूक्तियो का इन्होने प्रयोग किया है। कमलेश्वर— 'अपनी मौलिकता सबसे बड़ी निधि है।'[3]

'दूसरो की ज्यादती सब याद रखते है और अपनी तो कोई बात ही नही जैसे।'[4]

कमलेश्वर कस्वाई मनोवृत्ति के कथाकार है। इन्होने अपनी कहानियो मे समर्थ भाषा का प्रयोग कर कहानी की भाषा को समृद्ध बनाने मे योगदान किया जिसका स्पष्ट उदाहरण 'राजा निरबंसिया' से लेकर 'इतने अच्छे दिन' आदि सभी कहानी संग्रहो मे देखने मे आता है।

मोहन राकेश कमलेश्वर की ही भाति नगरीय जीवन से जुड़े रचनाकार थे। इन्होने मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओ तथा समाज मे व्याप्त विसंगतियो को उभारने का सार्थक प्रयास किया है। आज का मध्यमवर्गीय मानव अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिये लिये जद्दोजहद कर रहा है। मोहन राकेश ने कथ्य के अनुरुप ही शिल्प को ढाला है। कथाकार के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि जिस वर्ग को वह अपनी रचना मे स्थान दे रहा है उसी वर्ग के भाषा के साथ जुड़े।

शब्द-विन्यास की दृष्टि से इनकी कहानियो को विश्लेषित किया जा सकता है। इनकी कहानियो मे उर्दू शब्दो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है। जैसे— 'मलवे का मालिक', नामक कहानी मे पात्रो के नाम भी उर्दूधारी है। वाक्यो मे उर्दू शब्दो का प्रयोग निश्चित

१. *तलाश, पृ० १४।*
२. *कमलेश्वर जो लिखा नही जाता, पृ० ७७।*
३. *वही राजा निरबंसिया, पृ० १०९।*
४. *कमलेश्वर-राजा निरबंसिया, पृ० १२०।*

रूप मे किया गया है। जैसे—

'उपर से जुबैदा, किश्वर, सुलताना हताश स्वर मे चिल्लाई और चीखती हुई नीचे की ड्योढ़ी की तरफ दौड़ी। रक्खे के एक शार्गिद ने चिराग की जद्दोजहद करती बाह पकड़ ली।'[१]

'मिसपाल' 'आर्द्रा', 'एक और जिन्दगी', आदि कहानियो मे अग्रेजी भाषा का प्रभाव देखा जा सकता है। कहानियो के बीच-बीच मे छोटे-छोटे वाक्य भी आते गये है।

हिन्दुस्तानी पात्र अग्रेज़ी बोलने मे अपनी गरिमा समझते है। यह पाश्चात्य प्रभाव भारतीय जनमानस मे रच-बस गया है। अंग्रेजो के आगमन का ही यह प्रभाव है। रहन-सहन के साथ ही भाषा पर भी इनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था और यह धीरे-धीरे अनिवार्य अंग बन गया। इसी कारण भाषा का रूप मिश्रित हो गया।

शब्द-विपर्यय तथा वाक्य विपयर्य की स्थिति भी अधिकाधिक रूप मे आयी। यह स्थिति अधिकांश कथाकारो मे देखने को मिलती है। जैसे— राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती आदि रचनाकारो की भाँति मोहन राकेश ने भी इस शैली को अपनाया है।

मोहन राकेश की 'जंगला', 'फौलाद का आकाश', 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'सेफ्टिपिन', 'परमात्मा का कुत्ता', 'मलबे का मालिक' प्रतीकवादी कहानियाँ है। इनकी 'सेफ्टिपिन' कहानी से सेफ्टीपिन पारिवारिक सम्बन्धो के प्रतीक के रूप मे प्रयुक्त हुई है। उन पर नारियो से अपनी भोगेच्छा पूर्ण करने वाले पुरुष सेफ्टिपिन की बाढ मे बचने का प्रयत्न करते है। 'जानवर और जानवर' कहानी उच्च और मध्यमवर्ग स्तर को प्रभावित करती है। मलबे के मालिक का प्रतीक मलबा विभाजन से उत्पन्न दर्द और पीड़ा का प्रतीक है। 'एक ठहरा हुआ चाकू', कहानी महानगरीय सत्रास और भयावहता की प्रतीक बनकर उपस्थित हुई है।

'मलबे का मालिक' कहानी मे प्रतीकात्मकता को उजागर करने वाली निम्न पक्तियाँ उदाहरण स्वरूप है— 'उनमे से कई इमारतें फिर से खड़ी हो गयी थी, मगर जगह-जगह मलबे का ढेर अब भी मौजूद थे। नई इमारतो के बीच के मलबे के ढेर एक अजीब वातावरण प्रस्तुत करते थे।'[२]

'मलबा' देश के विभाजन में हुई बर्बरता एव पशुता की परिणति का प्रतीक है। व्यक्ति मे दानवी एव मानवीय दोनो प्रवृत्तियाँ वर्तमान होती हैं, लेकिन कभी-कभी इनमे से किसी एक प्रवृत्ति के प्रबल होने पर व्यक्ति उस प्रवृत्ति के वशीभूत होकर

१ मोहन राकेश-मलबे का मालिक, कहानी, पृ० १५२।

२ मोहन राकेश-मलबे का मालिक कहानी, पृ० १४८।

व्यवहार करने लगता है, उसी आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण होता है।

'ग्लासटैंक' नामक कहानी में भी ऐसी प्रतीकात्मक स्थिति के दर्शन होते है। कथाकार ने 'ग्लासटैंक' की मछलियों के समानान्तर 'नीरू' के 'इमोशनल लाइफ' को रखा है जिसे नीरु जानने के लिये उत्सुक है।

मोहन राकेश की कहानियों मे बिम्बों का प्रयोग देखा जा सकता है। 'पहचान' शीर्षक कहानी मे बच्चे के मन के अन्तर्द्वन्द्व को बखूबी उभारा है। 'एक ठहरा हुआ चाकू' मे फन्तासी के सहारे कहानी को मुखरित किया गया है। यह स्पष्ट है— 'आँखें खुल जाती तो बाहर बिजली चमकती दिखायी देती। फिर मूँद जाती तो कोई अन्दर कौंधने लगती। .एक जीने की सीढ़ियो ने उसे रस्सियो की तरह लपेट रखा है। एक तेज धार का चाकू उन रस्सियों को काटता आता है। उसके पास आने से पहले ही उसकी धार जैसे शरीर मे चुभने लगती है। यह उसकी पीठ है. नही पीठ नही छाती है। *चाकू की नोक सीधी उसकी छाती की तरफ .नही, गले की तरफ ... आ रही* है। वह उस नोक से बचने के लिये अपना सिर पीछे हटा रहा है। .. पर पीछे आसमान नही है दीवार है। वह कोशिश कर रहा है कि उसका सिर दिवार मे गड़ जाय ......दीवार के अन्दर छिप जाय पर दीवार-दीवार नही रस्सियाँ का जाल है और जाल के उस तरफ.....फिर वही चाकू की नोक है। जाल टूट रहा है सीढ़ियाँ पैरो के नीचे से फिसल रही हैं। क्या वह किसी तरह की सीढियो मे ...... रस्सियो मे उलझा रहकर अपने को नही बचा सकता।''

नयी कहानियो की भाषा जीवन्त है। अंग्रेजी एवं प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का समावेश है। नवीन शिल्प गढ़ने का आग्रह है। मोहन राकेश की कहानियों मे नाटक के गुण झलकते हैं। उसमे आकस्मिकता, त्वरित परिवर्तन, मोड़ और गति दिखायी देती है। इसलिये भाषा का सहज प्रवाह उनकी कथाओं मे विरल एवं क्षीण होता है। 'जख्म' शीर्षक कहानी तथा 'फौलाद के आकाश' नामक कहानी मे यह स्थिति परिलक्षित होती है। वे सीधी, सपाट, सरल तथा एकान्वित भाषिक प्रयोगो मे कहानी को संयोजित करते है। जहाँ वाक्य होते हैं, वहाँ वे असहज से प्रतीत होते हैं परन्तु लम्बे वाक्यो की संरचना से वे अपनी अनुभूतियाँ सहज ही अभिव्यक्त करने मे प्रवीण है। छोटे-छोटे वाक्यो मे उनकी सोच अटकती-सी प्रतीत होती है। जैसे— 'फिर वही रख कर किताब बन्द कर दिया। उसे पलंग पर छोड़ कर उठ खड़ा हुआ। फिर पलंग से उठाकर मेज पर रख दिया। और खिड़की के पास चला गया।[2]

मोहन राकेश की सहज भाषा अनुभूति की सूक्ष्मता से उभारने मे जहाँ शिथिल

१. *मोहन राकेश-पहचान तथा अन्य कहानियाँ, एक ठहरा हुआ दिल, पृ० २३।*

२. *शिव प्रसाद सिंह-आधुनिक परिवेश और नवलेखन।*

प्रतीत होती है यही उनकी अलकृत शब्दावली नवीन बिम्बात्मकता का आरोह उभारती है। जैसे— 'तो लगा कि सितारा लॉन की घास पर उतर आया है। वहाँ से आँख झपकता हुआ उसे ताक रहा है। वह उठी और अपनी रबड़ की चप्पल वहाँ छोड़ कर लॉन मे उतर गयी। पास जाकर देखा कि शबनम-शबनम की अकेली बूँद उस सितारे को अपने मे समेटे है।'[1]

नयी कहानी की भाषा मे गति है, लय है, प्रवाह है, खुरदुरे सच को बेबाकी से उभारने की त्वरित गतिमयता, नवीनता तथा जीवन्तता है। उसमे अग्रेजी तथा प्रान्तीय भाषाओ के लोकविश्रुत शब्दो का समावेश है। नवीन शिल्प गढ़ने का आग्रह है और गहरी व्यजनात्मक शक्ति एवं सामर्थ्य है। ऐसे ही सामर्थ्य से भरी-पूरी है निर्मल वर्मा की भाषा और साथ ही पाश्चात्य प्रभाव मे आकठ डूबी हुई है। नयी कहानी की इन्ही विविधताओ की ओर इगित करते हुए डा शीताशु ने लिखा है कि इसकी विविध छवियाँ है, विविध रंग हैं, विविध मुद्राएँ है, विविध भगिमाए है, विविध संकेत है और विविध त्वराए है।[2]

नयी कहानी भाषिक शुचिता के परम्परित आग्रहो से सर्वथा मुक्त है, नयी कहानी की भाषिक विधान अतएव उसकी भाषा को रस, अलकार, ध्वनि और वक्रोक्ति के आग्रहो से मुक्त करके देखा जाना चाहिये। अभिधा के सक्षम प्रयोग यहाँ प्रमुख है लक्षणा तथा व्यजना विरल होती गयी है। नयी कहानी पात्र तथा परिवेश के दबावो से परिचालित है तथा समय और सीमा का अतिक्रमण करती हुई-सी प्रतीत होती है।

निर्मल वर्मा की कहानियो की पृष्ठिभूमि विदेशी रही है। वे देशकाल वातावरण के संयोजन मे पाश्चात्य प्रभावो को समेटने का उपक्रम करते है। वे अग्रेजी के बहुप्रचलित शब्दो को सहजता से प्रयोग करते हैं। भावो की अभिव्यक्ति के लिये सहजता और पात्रो का मानसिकता की दृष्टि विषयक शाब्दिक प्रयोग सीधे, सहज एव अनिवार्य जैसे प्रतीत होते हैं जैसे—

'लड़कियो के चेहरे सिनेमा के पर्दे पर क्लोज अप की भाँति उभरने लगे।'[3]

कहानी मे पात्रो के नाम अग्रेजीयत लिये हुए हैं, जैसे- जूली, जेली, लूसी, फादर, एलमण्ड, ह्यूर्बट, जार्जविली आदि।

'परिन्दे' के पात्र ह्यूर्बट जब गुनगुनाते है तो वह भी अग्रेजी मे 'इन द बैकलेन आफ द सिटी, देयर इज ऐ गर्ल हू लव्स मी ।'[4]

१ मोहन राकेश-रोंदे रेशे फौलाद की आकाश, पृ० १७०।

२ शशि भूषण शीताशु-नयी कहानी के विविध प्रयोग, पृ० ११९।

३ राजेन्द्र यादव (सपादक) एक दुनिया समानान्तर 'परिन्दे', पृ० १६७।

४ राजेन्द्र यादव (सपादक)-एक दुनिया समानान्तर 'परिन्दे', पृ० ११२।

निर्मल वर्मा ने अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी के परसर्गों में जोड़ कर उनका हिन्दीकरण भी करने का प्रयास किया है। जैसे— केबिनों, पोस्टरों, रिकार्डों, ट्रेनों, स्टेशनों आदि। इसी तरह 'पराये शहर' के पात्र अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा में वार्तालाप करते हैं। अंग्रेजी के अतिरिक्त उर्दू, फारसी, देशज शब्दों के प्रयोगों में भी भाषा का अर्थ सक्षम करते हैं। अंग्रेजी के साथ-साथ उर्दू शब्द का भी प्रयोग इन्होंने किया है। जैसे— मुलाकात, उम्मीद, आइना, हैमियत, मुल्क आदि शब्दों का प्रयोग 'परिन्दे' नामक कहानी में हुआ है।

निर्मल वर्मा की 'कुत्ते की मौत' नामक कहानी में उर्दू की स्थिति नजर आती है। 'एक छोटा सा दायरा है आलोक का मुन्नी की निगाह स्थिर है इस 'दायरे' पर है।'[1]

निर्मल वर्मा की कहानियों में काव्यात्मक पुट और लचक से इनकी भाषा काव्यात्मक हो गयी है। लेखक का मन स्वप्निल कल्पनाओं में तैरने लगता है। तब यहाँ हमें छायावादी रोमानीयतपन की अनुभूति होने लगती है, जो अप्रत्यक्षत गद्य में भी अपना प्रभाव छोड़ती चलती है। जैसे—

'दोपहर की उस घड़ी मीडोज अलसाया—सा ऊँघता जान पड़ता था। जब हवा का कोई भूला-भटका झोंका गहरी नींद में डूबी सपनों-सी कुछ आवाजें नीरवता के हलके झीने परदे पर सलवटें बिछा जाती हैं, मूक लहरों-सी तिरती है, मानो कोई दबे पाँव झांक कर अदृश्य संकेत कर जाता है, देखो, मैं यहाँ हूँ।'[2]

'परिन्दे' कहानी पूर्णत. प्रतीकात्मक है। इनमें पात्र भी प्रतीक स्वरूप आये हैं। पात्रों के कथोपकथन विराट फलक पर ध्वनित होने हैं और सांकेतिक अर्थ प्रस्तुत करने लगे हैं। इसी सन्दर्भ में रामदरश मिश्र और नरेन्द्र मोहन ने अपनी पुस्तक हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा में लिखा है कि 'परिन्दे', 'मरणधर्मा' मनुष्यों के प्रतीक हैं। कहानी में बुझता हुआ लैम्प मरणासन्न ह्यूबर्ट की ओर संकेत करता है।'[3]

लतिका उड़ते हुये *परिन्दों* के झुण्ड को देखकर सोचने लगती है— 'हर साल सरदी की छुट्टियों में पहले ये परिन्दे मैदानों की ओर उड़ते हैं, कुछ दिनों के लिये बीच के इस पहाड़ी स्टेशन पर बसेरा करते हैं, प्रतीक्षा करते हैं बरफ के दिनों की जब वे नीचे अजनबी, अनजाने देशों में उड़ जायेंगे।'[4]

'ऐसा सोचते-सोचते उसके मन में तुरन्त यह सवाल उठता है कि क्या हम सब भी परिन्दों की भाँति प्रतीक्षारत हैं? अन्त कैसा होगा आदि—'क्या वे सब भी प्रतीक्षा

१ कृष्ण लाल (संपादक)-हिन्दी कहानियाँ 'निर्मल वर्मा' कुत्ते की मौत, पृ० ११७।
२. राजेन्द्र यादव (सम्पादक) एक दुनिया समानान्तर निर्मल वर्मा 'परिन्दे', पृ० १८६।
३. रामदरस मिश्र एव नरेन्द्र मोहन, हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा, पृ० २५८।
४. राजेन्द्र यादव (सपादक) एक दुनिया समानान्तर, निर्मल वर्मा 'परिन्दे', पृ० १९०।

कर रहे है। वह, डाक्टर मुकर्जी, मिस्टर ह्यूबर्ट। लेकिन कहाँ के लिये, हम कहाँ जायेगे।'[1]

निर्मल वर्मा की कहानियो मे 'फ्लैश बैक' का भी प्रयोग हुआ 'परिन्दे' कहानी मे लतिका को गिरीश नेगी से अपने परिचय की बाते स्मृति हो आती हैं यह क्षण कहानीकार कथा मे फ्लैश बैक के सहारे उभारता है।

डॉ० नामवर सिंह ने लिखा है कि— 'निर्मल की अधिकाश कहानियाँ अतीत की स्मृति हैं। कहानी कहने वाला बरसो पश्चात् उस स्मृति को दोहराता है। स्मृति मे भावुकता सम्भव है, किन्तु समय का अन्तराल तात्कालिकता के आवेग को काफी कम कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तात्कालिक आवेग की भावुकता को कम करने के लिये भी निर्मल समय का इतना *अन्तराल दे देते है।'*[2]

निर्मल वर्मा की कहानियो मे बिम्बो का प्रयोग बखूबी हुआ है। निर्मल वर्मा 'जलती झाड़ी कहानी' मे कल्पनात्मक बिम्ब उभर कर आता है। 'उस शाम हम पैवेलियन के पीछे टैरेस पर बैठे थे। मेरे रूमाल मे उसकी चप्पले बँधी थी और उसके पाँव नगे थे, घास पर चलने से वे गीले हो गये थे, और उन पर बजरी के चार लाल दाने चिपके रह गये थे। अब वह शाम बहुत दूर लगती है। उस शाम एक धुधली-सी आकाक्षा आयी थी और मैं डर गया था। लगता है, आज वह डर दोनो का है। गेद की तरह *कभी उसके पास आता है, कभी मेरे पास।'*[3]

इसमे 'बजरी के दो-चार लाल दाने' 'धुँधली-सी आकाक्षा', 'गेद की तरह डर' जैसे बिम्ब उभरकर सामने आते हैं।

निर्मल वर्मा की भाषा अपनी अलग पहचान बनाती हैं। नयी कहानी के साथ मे कृष्णा सोबती, मन्नू और उषा प्रियम्वदा जैसी लेखिकाओ के भी नाम जुड़े हुए है।

कृष्णा सोबती की रचनाओ मे विविधता है। शिल्प विधान अलग प्रकार का है। कहानी का तथ्य परिवेश के अनुसार बदलता रहता है। कृष्णा सोबती की कथा, भाषा की दो विरोधी विशिष्टताओ से सम्पन्न है, एक तरफ इनकी *भाषा अभिजात्य सस्कारो* से युक्त रोमानीपन लिये हुए है, दूसरी तरफ यथार्थपरक, रूखी, कड़वी भाषा है। विषयानुकूल भाव मे विविधता और विरोधीपन के साथ मुहावरो का उत्तम प्रयोग देखने को मिलता है।

कृष्णा सोबती द्वारा अपनी कहानियो मे शब्दो की पुनरावृत्ति के माध्यम से भावबोध को अत्यधिक गहराने एव उसमे विस्तार लाने का प्रयास किया गया है। जैसे— 'बिना आंखो के भटक-भटक जाती है। धुंध के निष्फल प्रयास देखता हूँ।'[4]

१. *राजेन्द्र यादव (सपादक) एक दुनिया समानान्तर, निर्मल वर्मा 'परिन्दे', पृ० ११०।*

२ *नामवर सिह-कहानी नयी कहानी, पृ० ७५।*

३ *निर्मल वर्मा-लवर्स जलती झाड़ी सग्रह से उद्धृत, पृ० १४-१५।*

४ *राजेन्द्र यादव (सपादक) - एक दुनिया समानान्तर, कृष्णा सोबती 'बादलो के घेरे', पृ० १२२।*

भावबोध की ऐसी गहनता अन्य जगह भी देखी जा सकती है। 'ऐसा लगा, किसी घुटी-घुटी जकड़ में से बाहर निकल आया हूँ।'

'यारों के यार' नामक कहानी मे लेखिका द्वारा एक कुण्ठित व्यक्ति की पीड़ा को नये तेवर के साथ प्रस्तुत किया गया है। काव्यात्मक कोमलता और रोमानियत को छोड़ कर भाषा व्यंग्यात्मक और सख्त हो गयी है। उदाहरणस्वरूप— 'सूरी ने अग्रवाल को घूरा तेरी घरवाली के नेफे मे तिलचट्टा, साले हमी से मुँहजोरी।'[२]

एक लेखिका द्वारा इस भाषा का प्रयोग अपने आप मे एक साहसी प्रयास है। जो अन्य साहित्यकारो के लिये चुनौती है। लेकिन कुछ लोग इस प्रकार की भाषा को रचना की अनिवार्य माँग समझते है।

सोबती जी की कहानियो मे परिस्थितियो की अपेक्षा मन स्थितियो का चित्रण अधिक दिखलाई पड़ता है। इनमे युग मे व्याप्त असगतियो, तनाव, सन्देह जैसे भावो का चित्रण होता है, जो समाज की देन है। मनुष्य के तनाव और उसकी जटिल मानसिक स्थितियाँ ही आज की कहानी का कथानक है। अधिकाश कहानियो मे एकाकीपन की मन स्थिति का अंकन हुआ है। 'बादलो के घेरे' का रवि अपने अकेलेपन से ही ज्यादा परेशान है।

शैलीगत प्रयोग

भावनाओ एवं विचारो को मूर्तरूप प्रदान करने वाला तत्व शैली है। शैली के अन्तर्गत यह देखा जाता है कि 'कथाकार कथा के तत्वो को किस तरह प्रस्तुत करता है। डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल ने अध्ययन की दृष्टि से इसके अन्तर्गत दो पक्ष मानते है— भाषा पक्ष एवं विधान पक्ष।'[३]

कृष्ण सोबती की भाषा ही मूल आधार है, जो उन्हे अपना एक विशिष्ट स्थान निर्धारण करने मे सहयोग देता है।[४]

सोबती जी के कथा साहित्य की भाषा अपना अलग अस्तित्व बनाये हुए है। सोबती जी भाषा के विषय मे स्वयं का कथन है—'चिन्तन साहित्य की आत्मा है, तो भाषा उसकी देह। भाषा की जड़ो को हरा करने वाला रसायन जो किसी भी भाषा को जिन्दा रखता है, जिन्दा करता चला जाता है। उसका स्रोत हमारा लोकमानस ही है। लोकभाषाएँ, बोलियाँ अपनी ताकत धरती से खीचती है।[५]

---

१. राजेन्द्र यादव (सपादक) एक दुनिया समानान्तर, कृष्ण सोबती 'बादलो के घेरे', पृ० १२७।
२ कृष्णा सोबती-यारो के यार, नपृ० २३।
३. डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल-हिन्दी कहानियो मे शिल्प विधि का विकास, पृ० ३४३।
४. वही, पृ० ३४३।
५. कृष्ण सोबती-संघर्षपरिवर्तन और रचनात्मक मानसिकता, मार्च १९८२, पृ० २८।

हर शब्द से एक स्थिति बने। एक तस्वीर उभरे। यहाँ तक कि गलियाँ भी उसके *'अण्डर करेण्ट'* को उद्वलित करे। उसके अन्दर बाहर के खोल को एक संग वातावरण से बांध दे।'[1]

कृष्णा सोबती की भाषा गली-कूचों की रोजमर्रा की बोल-चाल की भाषा है अतएव उसमें तद्भव, देशज और सहज शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग है। वे स्वच्छन्द शब्दों की प्रयोक्ता है और सामाजिक विरूपता के लिये परिवेश के अनुरूप वे भाषा का सहज प्रयोग करती हैं।

कथा सरचनाएँ आंचलिकता और उपनगरीय बस्तियों की रोज-मर्रा की ऊहा-पोह, किच-किच 'यारों के यार' के पलकों की एकरस घिटसती हुई जिन्दगी की।

इनकी कहानियों में 'मैं' शैली का प्रयोग मिलता है। 'बादलों के घेरे' नामक कहानी में यह 'मैं' एक अन्य पात्र के रूप में उपस्थित हुआ है। इस प्रकार कृष्णा सोबती ने 'मैं' शैली का प्रयोग भी किया है। जैसे— 'भुवाली की इस छोटी-सी काटेज मे लेटा-लेटा मैं सामने के पहाड़ देखता हूँ।'[2]

कृष्णा सोबती प्रतीकों, बिम्बों और मिथकों के व्यामोह से विरत रहने वाली कृतिकार हैं। 'तीन पहाड़ और बादलों के घेरे' मे यदा-कदा बिम्ब योजना के दर्शन होते हैं।

'तिरछे सीधे, छोटे-छोटे खेत किसी के घुटने पर रखे कसीदे के कपड़े की तरह धरती पर फैले थे।'[3]

निष्कर्षत कृष्णा सोबती की भाषा का अपना अलग टोन है और अलग अन्दाज भी। इन्होंने वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है।

कृष्णा सोबती के अतिरिक्त बहुचर्चित कहानी लेखिका मन्नू भण्डारी है। इनकी सहज, सरल, परन्तु प्रवाहपूर्ण भाषा है। वे व्यंग्य, विद्रूप, लक्षणा, व्यंजना की सम्यक् प्रयोक्ता तथा धनी रचनाधर्मी हैं।

मन्नू भण्डारी ने अपनी कहानियों मे प्रसंगानुकूल शब्दों का प्रयोग किया है। इनकी कहानियों मे तत्सम, तद्भव, अरबी, फारसी, अंग्रेजी भाषा के बोलचाल के शब्दों का बहुत अधिक प्रयोग मिलता है। कहानियों में कहावतों, मुहावरों एवं लोकगीतों का यथासम्भव प्रयोग हुआ है। जिससे भाषा जीवंत हो उठी है। इनकी भाषा सहज एवं सरल है। मन्नू भण्डारी ने भी 'मैं' शैली का प्रयोग किया है। 'यही सच है' नामक कहानी में इस शैली मे उत्तम पुरुष के कहानी चलती है। पूरी कहानी 'मैं' के माध्यम से पूरी होती है।

---

१ हम हशमत, पृ० २५९।

२ राजेन्द्र यादव, एक दुनियाँ समानान्तर, कृष्णा सोबती, बादलों के घेरे मे, पृ० १२२।

३. वही, पृ० १२९।

'सामने आँगन मे फैली धूप सिमट कर दीवारो पर चढ़ गयी और कन्धे पर बस्ता लटकाये नन्हे-नन्हे बच्चों के झुण्ड के झुण्ड दिखायी दिये, तो एकाएक ही मुझे समय का आभास हुआ घटा भर हो गया यहाँ खड़े-खड़े और सजय का अभी तक पता नही। झुझलाती सी मैं कमरे मे आती हूँ।'[1]

मन्नू भण्डारी की भाषा अधिक समर्थशील है। मन्नू की कहानियाँ अपने परिवेश के विविध अनुभवो, मानवीय पीड़ा, मानवीय दृष्टि, अपने खुलेपन, अकृत्रिम भाषा के कारण सार्थक एव प्रवाहशाली कहानियाँ बन पड़ी है।

उषा-प्रियवदा चर्चित महिला कथाकार है। अपनी कहानी म इन्होंने यथार्थ की अभिव्यक्ति को महत्व दिया है। 'वापसी' कहानी मे गजाधर बाबू आधुनिक वृद्ध के प्रतीक पात्र हैं। उषा प्रियम्वदा की चर्चित कहानी 'मछलियाँ' है। इस कहानी मे वीजी मुकी के आकर्षक, सुसंस्कृत एव सुरुचि सम्पन्न 'सोफिस्टिकेटेड' व्यक्तित्व के कारण अपने प्रेमी मनीष के लिये महत्वहीन हो जाती है। मनीष द्वारा ठुकराये जाने पर वह उसके मित्र नटराजन की ओर झुकती है तभी उसे ज्ञात होता है कि नटराजन और मुकी विवाह कर रहे हैं। अत वह पुन हार जाती है। ऐसे मे सोचती है कि क्या जिन्दगी के नाटक मे मत्स्यभाव ही एकमात्र भाव है।

'वाशिगटन मे मैंने एक नाटक देखा था, जो बहुत पसन्द आया। 'छोटी मछली, बड़ी मछली, जिसमें बड़ी मछली छोटी मछलियो को निगलती रहती है। तब से कभी-कभी सोचती हूँ कि क्या छोटी मछली उलट कर वार भी नही कर सकती।'[2]

वीजी मुकी के मन मे नटराजन के प्रति सदेह पैदा कर देती है। निशाना सही जगह लगता है। मुकी क्रोधित होकर कहती है उसी ने बताया कि तुमने उसे १५ सौ डालर दिये है। डाक्टर के पास जाने और इडिया लौट जाने के लिए।'[3]

विजी (छोटी मछली) के वार से मुकी 'बड़ी मछली छटपटाने लगी थी क्योंकि उसके शरीर मे तड़पती मछली की तरह एक लहर दौड़ गयी।'[4]

इस प्रसंग को ध्यान में रखने हुये कन्हैया लाल नदन की यह टिप्पणी दृष्टव्य है—

'मनुष्यो के रिश्ते-खासतौर पर 'स्री-पुरुष के रिश्ते-नयी कहानी के जमाने मे एक तरह से लेखन के केन्द्रिय विषय थे। उषा प्रियम्वदा की कहानियाँ और उपन्यास भी मध्यक्ति परिवारो के सम्बन्धो की बेचारगी, हिचक और कभी-कभी उनसे उपजी कुंठा को भी व्यक्त करते रहे है। इसी क्रम मे भारतीय स्री को जो नयी स्थिति बनी

१ राजेन्द्र यादव (सपादक), एक दुनिया समानान्तर, मन्नू भण्डरी 'यही सच है', पृ० २३३।
२ उषा प्रियम्वदा-मछलियाँ, पृ० ९५।
३ वही, पृ० ११३।
४ वही, पृ० ११३।

है या उसके बीच जो 'नयी स्त्री' निर्मित हुई है, उसकी मुक्ति तथा मुक्ति की विडम्बना दोनो को भी सामने लाती है।[१]

उषा प्रियम्वदा की कथ्य एवं संरचना दोनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट कोटि की है।

आंचलिक रचनाकार के रूप में फणीश्वरनाथ रेणु का नाम अधिक लोकप्रिय है। मूलत: वे ग्रामबोध के रचनाकारो की श्रेणी मे आते हैं। रेणु ने ग्राम जीवन के यथार्थ के विविध आयामो को बहुत गहराई मे चित्रित किया। लोकभाषा के कथाकार होने के कारण यह रेणु के लेखकीय चरित्र का वैशिष्ट्य है कि उन्होंने अत्यधिक आत्मीयनापूर्वक अंचल की माटी मे रमकर, वहाँ के जन-जीवन की समस्त कटुता और सगीत मे रुदन और गायन मे, सरलता और विकृति मे, स्वार्थपरता और सामाजिक एकता मे सुध-बुध बिसराकर भाषा को आयोजित किया है। उनकी रचनाओ मे अचल विशेष मे बोली जाने वाली ठेठ ध्वनियो और लोकभाषा के शब्दो को ग्रहण करके भाषा को समृद्ध बनाने का यत्न किया जिससे इनकी भाषा लालित्य, माधुर्य और प्रसादगुण मे सम्पन्न हो गयी। इनकी कहानियो मे नगरीय शब्द विकृत रूप मे आते अपने मौलिक रूप से हटकर उच्चारित होते हैं। अंग्रेजी तो अंग्रेजी, हिन्दी के भी विकृत शब्द ग्रामीण कथाओ मे आये है। उस विकृत रूप को रेणु ने ज्यो का त्यो उठाकर अपनी रचना मे रख दिया है। भाषा के अन्दर कही भी कृत्रिमता नही आने पायी है।

कहानी के एक प्रसंग मे बक्सा ढोने वाला अंग्रेजी भाषा का गलत उच्चारण करता है। 'लाट फारम से बाहर भागो। ....।'

इसी प्रकार रेणु ने उर्दू शब्दो के विकृत रूपो का भी प्रयोग किया है। 'तीसरी कमस उर्फ मारे गये गुलफाम' मे लाल मोहर हिरामन से कहता है— 'इलाम बकसीस दे रही है।' मालकिन, ले लो, हिरामन।[२]

ठेठ ध्वनियाँ तो रेणू की कथा-भाषा का आवश्यक अंग बन गयी है। रेणु ने अपनी कहानियो मे कुछ शब्दो का प्रयोग बिल्कुल नये ढंग से किया है। एक ही शब्द की पुनरावृत्ति के माध्यम मे भाषा मे सौन्दर्य उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। इसकी पुष्टि निम्न कथन मे हो जाती है 'हिरामन को सब कुछ रहस्यमय अजगुत-अजगुत लग रहा है।[३]

हिरामन बात-बात मे अपने शर्मीलेपन को 'इस्स' शब्द द्वारा व्यक्त करता है। यह शब्द उसका अत्यन्त प्रिय शब्द है जो कहानी मे उसके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाता

---

१. कन्हैयालाल नंदन (संपादक)-दिनमान १३-१९ अक्टूबर १९९५, पृ० ४८।

२. राजेन्द्र यादव (संपादक) एक दुनिया समानान्तर, फणीश्वरनाथ रेणु 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम', पृ० २४।

३. राजेन्द्र यादव (सपादक)एक दुनियाँ समानान्तर, फणीश्वरनाथ रेणु 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम', पृ० २०३।

है। प्रत्ययो और उपसर्गो का सधा हुआ प्रयोग रेणु की भाषा को जीवन्त बना देता है। जैसे— बेखटक, बे आहट, अस्फुट आदि शब्दो मे प्रयत्नो का प्रयोग।

रेणु की भाषा मे लोकोक्तियो तथा मुहावरो का सहज प्रयोग हुआ है, ये मुहावरे कहानी को और भी स्वाभाविक बना देते हैं। 'लो खूब देखो नाच। वाह रे नाच। कथरी के नीचे दुशाले का सपना।'[१]

हिरामन का यह वाक्य भी कितना मार्मिक है— 'नही जी। एक रात नौटकी देखकर जिन्दगी भर बोली-टोली कौन सुने। देशी मुर्गी, विलायती चाल।'[२]

'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' मे रेणु की भाषा काफी साकेतिक हो जाती है कही-कही। हीराबाई को ले जाते समय हीरामन को ऐसा लगता है जैसे उसकी गाड़ी मे कभी चम्पा का फूल खिल उठता है तो कभी चादनी का टुकड़ा। सब कुछ रहस्यमय और अजगुत-अजगुत जैसा लगने लगता है। रेणु मे काव्यात्मक सगीतमय गद्य की सृष्टि करने की अद्भुत क्षमता एवं सामर्थ्य निहित है। रेणु ने अपनी कथा मे गाँव, अंचल के गीतो का भी प्रयोग किया है। यह सगीत लोक-संस्कृति का प्राण है—

'सजनवा बैरी हो गये हमार

आचलिकता के पूर्ण निर्वाह हेतु रचनाकार ने मैथिली, मगही, और बगला भाषा की क्रियाओ को भी ग्रहण किया है।

रेणु की भाषा मे लयबद्धता, सहजता एव सुकुमारता आदि गुण दिखाई पड़ती है। रेणु की भाषा मे भोलापन, प्रवाहमयता सर्वत्र दिखायी पड़ती है। यह भाव रेणु की *ठुमरी, तीन बिंदिया, रस प्रिया आदि कहानियो मे देखी जा सकती है।*

जैसा कि इस सदर्भ मे कहा भी गया है—

'रेणु की भाषा मे दो मुख्य तत्व है। एक उसकी 'रसता' और दूसरा किसी भी जीवन को उसकी पूरी सवेदना और चेतना के साथ पढ़ने वालो की नसो मे उतार देना। 'मैला आचल', 'परती परिकथा', 'जुलूस', 'एक श्रावणी दोपहर की धूप', 'ठुमरी' किसी भी कृति मे रेणु की इस शक्ति को देखा जा सकता है। अपनी रचनाओ मे रेणु गाँव के बदलते हुए नये स्वरो को उसकी चेतना, विद्रोह, आक्रोश, जागरण, सपनो और सघर्ष की बात करते है। भूख, गरीब, अशिक्षा, अन्याय, बेरोजगारी के जाल के बीच गाव की साफ-सुथरी आत्मा को तलासते है और यह तलाश लोक-नृत्यो, लोक सगीत, *ध्वनियो, कहावतो, परिवेश के बीच गुजरती किसी नदी सी जारी रहती*

१ परमानन्द श्रीवास्तव एवं गिरीश-रस्तोगी कथान्तर फणीश्वरनाथ रेणु, लालपान की बेगम, पृ० ९९।

२ राजेन्द्र यादव (सपादक) एक दुनियाँ समानान्तर, फणीश्वरनाथ रेणु 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम, पृ० २४।

है। मानवीय संवेदनाओ और काव्यात्मक अभिव्यक्तियो के माथ पलाश का वह वृक्ष फूलता रहता है।[१]

शिव प्रसाद मिह गवई जिन्दगी से जुड़े हुए गवई भाषा के कथाकार हैं। रेणु की भाति इन्होंने भी अपनी कहानियो मे लोकभाषा के ठेठ शब्दो का प्रयोग किया है। सकारात्मक जीवन मूल्यो के स्वीकार के साथ ही शिव प्रसाद मिह जी की भाषा की पकड़ी मजबूत है। शिल्प, कथ्य से प्रभावित हुए बिना नही रहता, इसलिये इनकी कहानियो मे कथ्य और शिल्प दोनो ही एक-दूसरे मे जुड़े हुए है। शिव प्रसाद जी कहानियाँ शिल्प-विधान की दृष्टि मे बिम्बधर्मी एव प्रतीकात्मक है। इनकी कहानी 'मुरदा सराय' मे सराय का आशाहीन चित्रण मूर्त मानवता का प्रतीक है। 'केवड़े का फूल' भी एक प्रतीक कथा है। जिसमे भारतीय नारी वर्ग का प्रतीक 'केवड़े के फूल' मे अनीता के माध्यम से हुआ है। 'मै जब भी, जब कभी अनीता के बारे मे सोचता हूँ मेरे सामने के केवड़े के फूलो की याद आ जाती है। यदि इन्हे स्वतत्र खिले रहने दे तो जहरीले साँप इन्हे अपनी गुञ्जलक मे लपेट लेते है। क्योंकि इनकी मादक गन्ध सही नही जाती और यदि किसी को निवेदित किया जाय तो भद्र लोग इन्हे तरोड़-मरोड़ कर कुएँ मे डाल देते है। इसमे पानी खुशबूदार होता है।'[२]

'सपेरा' कहानी मे ठाकुर गाँव का जमीदार है। वह आदमी के रूप मे साँप का प्रतीक है।

स्वातंत्र्योत्तर युग की जटिल मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति के लिये कथाकारो ने अनेक प्रकार के बिम्बो का प्रयोग किया है। किसी स्थिति विशेष का वर्णन करने के लिये शिव प्रसाद सिंह ने अपनी कहानियो 'बरगद का पेड़', 'सुबह के बाद' आदि मे बिम्ब शिल्प का प्रयोग किया है। नयी कहानी मे प्रयुक्त बिभावो मे आभासित होने वाली प्रतीकात्मकता 'आर-पार की माला' मे देख सकते है 'चमकती-सी नदी की धार मे मुर्दे की तरह मनहूस रेती निकल आने पर भी मन को ऐसी पीड़ा नही होती जैसी आज सहसा सत्ता को देखने से हुई।'[३]

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कहानी मे समाज की घटना को व्यक्तिगत बनाने की कला मे संश्लेष शिल्प का नया प्रयोग हुआ है। संश्लेष शिल्प मे दोहरा कथानक होता है जिसमे एक पुराना और एक नया और यह दुहरा शिल्प दो युगो की समानान्तर तुलना और अन्तर्विरोध को प्रस्तुत करता जाता है— नयी और पुरानी कहानी के अन्तर

१. कन्हैया लाल नन्दन (सपादक) दिनमान प्रियवदा 'रेणु की कहानियाँ.आग के जंगल मे पनपता हुआ पलाश, २०-२६ अप्रैल १९८६, पृ० ४८।

२. डॉ० शिव प्रसाद सिह-कर्मनाशा की हार, पृ० ५८।

३. वही, पृ० २८।

और दूरियो को उजागर करता है। शिव प्रसाद सिंह की 'बरगद का पेड़' इस प्रकार के शिल्प की पहली कहानी है। 'महुए का फूल' भी इसी शिल्प मे लिखी गयी है। इसकी एक कहानी 'सती' की है दूसरी कहानी महुए और कोल सॉप की है।

शिव प्रसाद सिंह ने कहानियो मे हिन्दी शब्दो के अपभ्रश रूपो का प्रयोग किया है। जैसा कि ग्रामीणो के उच्चारण मे सुनने मे आता है। इनकी कहानियो मे इस प्रकार के प्रयोग बहुत अधिक मात्रा मे हुए है। जैसे— 'परलय' मही बोल-चाल मे प्रचलित अंग्रेजी भाषा के शब्द भी आये है। जैसे— 'प्लूज', 'इटरव्यू', 'हेलो' आदि उर्दू भाषा के 'उम्दा' जहनुम, 'तब्दीली' आदि शब्दो का प्रयोग किया है। शिव प्रसाद सिंह ने, ग्रामीणो पात्रो के माध्यम से कथ्य को उन्ही के लहजे मे प्रस्तुत करके अपनी अलग पहचान बनाने का प्रयास किया है। ये ठेठ शब्द सांस्कृतिक मूल्यो एव सस्कारो से ओत-प्रोत है।

मुहावरो के प्रचुर प्रयोग के कारण इनकी कहानियो की भाषा प्रवाहमयी हो चली 'वह बेबस असहाय की तरह छटपटा रहा था, हाथ-पैर पीट रहा था।'[1]

अलंकारो के प्रयोग से शिव प्रसाद सिह की कथा-भाषा मे सौन्दर्य की वृद्धि हुई है। इन्होने कहानी के अंश मे 'वीर बहूटी' शब्द का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया है। 'लाल साड़ी उसके बदन पर कितनी फबती है। उसका सॉवला बदन मानो सावन की धरती वीर-बहूटी की छीट मे झूम रही थी।'[2]

शिव प्रसाद सिंह कहानियो मे रेखाचित्र शैली की प्रचुरता है। क्योकि नयी कहानी के रचनाकार चरित्रांकन को विशेष महत्व प्रदान करते हैं। पुरातन कथा ढॉचे के स्थान पर अनुभूति की प्रमाणिकता हेतु जीवन्त मनुष्य से जुड़ने की प्रवृत्ति प्रबल है। कुछ लोगो ने नयी कहानी को शैली को विलीन शैली का नाम दिया है। शिव प्रसाद जी की 'प्लास्टिक का गुलाब' कहानी डायरी शैली का उत्तम नमूना है। नयी कहानी की सर्वाधिक प्रिय शैली है, 'मैं शैली। शिव प्रसाद ने तो प्राय अपनी सभी कहानियो मे 'मैं' नामक पात्र को प्रतिष्ठित किया है। इस प्रकार की शैली निर्मल वर्मा की कहानियो मे सर्वाधिक मिलती है। इसमे स्मृति को अतीत के साथ सपृक्त किया जाता है। अर्थात् फ्लैश बैक की पद्धति अपनायी जाती है। 'अलग-अलग वैतरणी' नामक उपन्यास इस शैली का श्रेष्ठतम नमूना है।

कहानियो मे व्यंग्य का पुट तो प्राय अनेक स्थलो पर दिखायी देता है। अवधू का यह छोटा सा वाक्य शोभा के लिये व्यग्य से कम नही है *'हो गयी खातिर।'*[3]

१. *शिव प्रसाद सिंह- एक यात्रा सतह के नीचे, पृ० १८।*

२ *वही, धतूरे का फूल, पृ० १२८।*

३ *शिव प्रसाद सिंह- एक यात्रा सतह के नीचे, पृ० १५*

काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी कहानी की भाषा का अंग बनकर रचनाकार की लेखनी मे उतर आयी है। यह प्रभाव 'सुबह के बादल', 'अरुंधती', 'जर्जर', 'फायर ब्रिगेड' और इन्सान, बेजुबान लोग अनेक कहानियो मे दिखायी देता है। इस सदर्भ मे 'खैरा पीपल कभी ना डोले' से एक अंश प्रस्तुत किया जा रहा है।

'चाक डोले, चक बम्बा डोले, खैरा पीपल कभी ना डोले।'[१]

शिव प्रसाद जी ने शिल्प की समृद्धि हेतु भाषा एवं शैली सबधी सभी प्रकार की विशेषताओ एवं लक्षणो को अपनी कहानियो मे समेटने का सार्थक प्रयास किया है।

कहानीकार की शब्द-योजना उसके वाक्य-विन्यास, उसके भाषा प्रवाह, मुहावरेदानी, इन सारी बातो द्वारा एक वातावरण बन जाता है, जो चरित्र की गभीरतम, सवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने का अवसर देता है। शिव प्रसाद सिह की 'नन्हो' कहानी मे वातावरण निर्माण मे सलग्न भाषा की भगिमा देख सकते है— 'चैती हवा मे गर्मी बढ़ गयी थी। उसमे केवल नीम की सुवासित मंजरियो की गन्ध ही नही, एक नयी हरकत भी आ गयी थी, उसकी लपेट मे सूखी पत्तियाँ, सूखे फूल पक्की फसलों की टूटी बालियाँ उटकर आंगन मे बिखर जाती। दोपहर मे खाना खाकर मिसरी लाल दालान मे सो जाता और राम सुभग बाजार गया होता या कही घूमने 'नन्हो' अपने घर मे अकेली बैठी सूखे पत्तो का फड़फड़ाना देखती रहती।'[२]

अपनी कहानियो मे कथ्य को उस परिवेश मे और प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिये कथाकार भाषा प्रयोग मे पर्याप्त जागरुक रहे।

मार्कण्डेय अपनी कहानियो मे प्रेमचन्द की परम्परा को ही आगे बढ़ाते हैं। तत्कालीन राजनैतिक सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक परिवेश को बड़ी जीवन्तता के साथ प्रस्तुत करते हैं। इनकी कहानियो मे गहन संवेदनात्मक अनुभूति के साथ कलात्मक पकड़ की सामर्थ्य है।

आर्थिक कष्ट से घिरे हुए लोगों को जिन्दगी से अपनी कहानियो के कथ्य का चुनाव किया है। 'भूदान' दाना भूसा', 'बादलो का एक टुकड़ा', 'संवरइया' आदि कहानियो मे विषय मेहनतकश किसान है। जिस जमीन पर उनका पसीना फलता-फूलता है उसे भी उनका हक नही। शोषणचक्र मे घिरा मार्कण्डेय की कहानियो का पात्र न ही अपनी गरीबी को अपनी नियति मानता है और न ही पराजित होता है। बल्कि उसमे एक साहस ही जन्म लेता है। मार्कण्डेय की कहानियो का कथ्य पक्ष काफी सशक्त होकर उभरा है।

---

१. *शिव प्रसाद सिह- एक यात्रा सतह के नीचे, पृ० १५।*

२. *शिव प्रसाद सिंह-नन्हो।*

मार्कण्डेय की कहानियो मे खड़ी बोली के साथ देशज शब्दो का भी प्रयोग हुआ है। इसी कारण इनकी भाषा कही-कही असगत हो गयी है। जैसे—

'कोई सेत का खाती हूँ जो लात मारी सहूँ, रात-दिन छाती पर बज्जर जैसा *गगरा-बाल्टी ढोती हूँ। यत्न कर दूँ तो सरने लगे रानी लोग। का हमरी देहियां माटी* की है। का हमके देखे वाले की अखियाँ धुचमची की है। हमहूँ हाथ-पाँव मे मेहदी रचाय के बैठ सकती है।[1]

इनकी अधिकतर कहानियाँ प्रतीकात्मक पद्धति पर आधारित है। जैसे— 'दाना-भूसा', 'माही', 'तारो का गुच्छा', 'दौने की पत्तियाँ' आदि।

'तारो का गुच्छा' कहानी मे सुन्दर प्रतीक विधान मिलते है। इसमे अपूर्ण इच्छाओ के प्रतीकस्वरूप गदराये हुए आकाश से तारो का गुच्छा तोड़ लिये जाने की कल्पना रोली करती है। जो स्पष्ट है—

'जैसे उसकी खिड़की के पास तारो से गदराया आसमान झुक आया है। और वह खिड़की बद किये बैठी है। क्यो न, वह तारो का एक गुच्छा तोड़ ले। कही उसने मांग ही लिया तो क्या होगा और वह चारपाई से उतरकर खिड़की खोल देती है। सचमुच रेल की ऊँची पटरियो पर तारो का धोल पुत गया है और दूर आसमान के सीमान्त मे उसकी नुकीली धार धँसती चली गयी है।'[2]

प्रतीक के साथ-साथ बिम्ब विधान भी मार्कण्डेय की शिल्पगत विशेषता है। जैसे— 'इधर-उधर चारो ओर बेल और झरबेरी के झार-झखाड़, बीच-बीच मे शीशम, नीम और कहीं-कही इक्के-दुक्के आम के बड़े-बड़े पेड़ो से घिरे सोलह बीघे के इस तालाब को कल्यानमन कहते हैं। कुल एक डेढ़ गज पानी ही ठहरता होगा इसमे और वह *भी तब, जब साधारा हम चार खेत भी पानी मे डूबे रहते है* वर्ना पानी आया और गया, फिर हर जगह एक-सा समतल, थिर और निर्मल जल। एक ओर मीट के पास नरई के हरे, शाख विहीन, नुकीले डंठलो की बारात और दूसरी ओर सिघाड़े के गहरे-हरे और बीच मे लाल धब्बो वाले सुहावने छत्ते। कोई दिलवाला आँखे डाल दे तो *शोभा की इस अनबूझी बंशी मे फसे बिना न रहे।'*[3]

मार्कण्डेय की कहानियो मे मुहावरे तथा लोकोक्तियो के प्रयोग से भाषा मे स्वाभाविक प्रवाहमयता आ गयी है।

'मेरी समाज मे इज्जत है, चार आदमी जानते-मानते हैं। कोई ऐरा-गैरा-नत्थू *खैरा तो नही कि जो भी चाहे चला आये और दरवाजा खटखटा कर मुझसे मिल*

---

1. *मार्कण्डेय 'दाना-भूसा' तथा अन्य कहानियाँ 'कल्यानमन', पृ० ८४*
2. *मार्कण्डेय की कहानियाँ-तारो का गुच्छा, पृ० ७३।*
3. *मार्कण्डेय-दाना-भूसा तथा अन्य कहानियाँ 'कल्यानमन', पृ० ८२।*

जाए।'[१] शिल्प की दृष्टि से 'हंसा जाई अकेला' मार्कण्डेय की प्रमुख कहानी है इन्होंने अपनी कहानियों में फन्तासी का भी प्रयोग किया है। 'प्रलय और मनुष्य' नामक कहानी में आंचलिकता का दबाव भी देखा जा सकता है।

रांगेय राघव की 'गदल' एक सुप्रसिद्ध कहानी है। यह ऐतिहासिक परिवर्तन को इंगित करने वाली यथार्थ के धरातल पर लिखी हुई नाटकीयता पूर्ण कहानी है। 'गदल' का चरित्र सशक्त रूप मे उभरता है। जिसके कारण पूरी कहानी जीवन्त हो उठती है। 'गदल' का वातावरण यथार्थवादी है कहानी मे व्यग्य और विम्ब का पुट द्रष्टव्य है। भाषा बोल-चाल की तथा सरस प्रवाहयुक्त है।

भाषा की मुखरता के कारण गदल का चरित्र रूप बहुत सशक्त रूप मे सामने आता है। 'ऐसी बांदी नही हूँ कि मेरी कुहनी बजे, औरों की बिछिया झनके। मैं तो पेट तब भरूँगी, जब पेट का मोल कर लूँगी।'[२]

कथ्य और शिल्प दोनों पर साधिकार है रांगेय राघव का। 'गदल' कहानी पर विचर देते हुए परमानन्द श्रीवास्त ने लिखा है कि 'नयी कहानी के महत्वपूर्ण विकास के पूरे दौर मे रांगेय राघव की कहानी 'गदल' को विशिष्ट स्वीकृति मिली केवल इसलिये नही कि इसने गदल जैसा ठेठ, जीवन्त चुनौती देने वाला चरित्र विम्ब निर्मित किया है। इसलिये भी कि इस चरित्र कल्पना को सहजीवी चरित्रो के द्वन्द्व मे उपयुक्त विशिष्ट भाषाई संगठन भी मिला, वह रचनात्मक सगठन भी मिला जो रचना को अर्थ की सघनता या मार्मिकता दे जाता है।[३]

नयी कहानी के कथाकारो मे अमरकान्त प्रेमचन्द सरीखे थे। इनकी भाषा सरल, सहज तथा छोटे-छोटे वाक्यों मे गुंथी हुई है। अमरकान्त की भाषा में कही भी दुरुहता नही आने पायी है। इनकी भाषा मे व्यक्त अन्तरंग क्षणो की झलक मिलती है। 'जिन्दगी और जोक', 'दोपहर का भोजन', 'डिप्टी कलक्टरी' आदि कहानियाँ इस दृष्टि से विशेषरूप मे उल्लेखनीय हैं। अमरकान्त की भाषा मे अलंकारो प्रतीको तथा विम्बों का बन्धन नही है। उनकी भाषा के सन्दर्भ मे डा. सुरेश सिन्हा यह कथन स्पष्ट है— 'अमरकान्त की कहानियाँ प्रयासहीन शिल्प का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। ....न कही चमत्कृत कर देने वाले वाक्य, न रहस्यमय तन्तुजाल, न चौका देने वाली बात, और न दुर्बोध और जटिल प्रतीक।'[४]

१. मार्कण्डेय 'माही' आदर्शो का नायक, पृ० ८६।
२. परमानन्द श्रीवास्तव एवं गिरीश रस्तोगी (सपादक) कथान्तर, रांगेय राघव, गदल, पृ० ७७।
३ गोविन्द रजनीश 'रांगेय राघव का रचना ससार, परमानन्द श्रीवास्तव 'गदल अर्थ और भाषिक सरचना, पृ० १६३।
४ सुरेश सिन्हा 'नयी कहानी की मूल सवेदना।

डॉ० नामवर सिंह ने अमरकान्त की भाषा को प्रेमचन्द की परम्परा का अद्यतन विकास मानते हुए लिखा है कि—

'अमरकान्त की भाषा प्रेमचन्द की परम्परा का अद्यतन विकास है, वही सादगी वही सफाई। पढ़ने पर गद्य की शक्ति मे विश्वास जगाता है।'[1]

अमरकान्त की कहानियाँ भाषा की सहजता एव सरलता के कारण सीधे जीवन से जुड़ी है। अमरकान्त की भाषा को प्रेमचन्द की कथा-भाषा का अगला चरण घोषित गया किया है।

'आप मे कौन सुर्खाब के पर लगे हैं, जनाब? बड़े-बड़े बह गये, गदहा पूछे कितना पानी।'[2]

इनकी कहानियो मे तद्भव, देशज शब्दो के प्रयोग मिलते है। इनकी कहानियो मे पात्रो की मन स्थितियाँ, स्वभावो, हाव-भाव आदि सभी मे देशज शब्दो के प्रयोग सार्थक प्रतीत होते है। शकलदीप बाबू अपनी पत्नी जमुना की बात पर बिगड़ उठते हैं। 'क्रोध से उनका मुँह विकृत हो गया और वह सिर को झटकते हुये, कटहा कुकुर की तरह बोले।'[3]

नयी कहानी की अनेक भाषिक विशेषताएँ अमरकान्त की कहानियो मे मिलती हैं।

कमलेश्वर के शब्दों में- 'नये कहानीकार ने इसी भाषा की खोज की है अपने भीतर से और अपने समय से। इसी भाषा मे उसने जीवन-मूल्यो का स्पष्टीकरण किया है। इसी भाषा को उसने सारे विघटन, सारी घुटन, उब, बदहवासी और टूटन मे से उठाया है . यह भाषा मरते हुए शानदार अतीत की नही, उसी मे से फूटते हुए विलक्षण वर्तमान की भाषा है। उस अनाम अरक्षित आदिम मनुष्य की जो मूल्य और संस्कार चाहता है। अपनी मानसिक और भौतिक दुनिया चाहता है।'[4]

ज्ञानरंजन की कहानियो का संसार एक परिचित ससार है। इनकी प्राय सभी कहानियाँ परिवार को केन्द्र मे रखकर उसके रिश्तो तथा उसकी समस्याओ को लेकर लिखी गयी है। कहानियो मे किसी तरह का चमत्कार या फार्मूला नही है वरन् वे एक सरल व सहज आत्मीयता के साथ पाठक को बाँधे रखती हैं। व्यंग्य ज्ञानरजन का अचूक हथियार है। वे छोटे वाक्यो मे गहरा व्यग्य करते है इसके कारण इनकी भाषा बड़ी सशक्त और जीवन्त हो उठी है। ज्ञानरजन की कहानियो मे घंटा, फेस के इधर, उधर, बहिर्गमन,

१ नामवर सिंह, कहानी नयी कहानी, पृ० ४७।

२ पत्रिका 'कहानी अमरकान्त' डिप्टी कलक्टरी, पृ० ४२।

३ अमरकान्त, डिप्टी कलक्टर, पृ० ११।

४. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका-नयी कहानी की भाषा, गति मे आकार गढ़ने का प्रयास।

पिता आदि है। अन्य लेखको की कतिपय कहानियाँ बहुत अधिक चर्चित रही जैसे—रमेश बक्षी की 'शबरी', श्रीकान्त वर्मा की 'झाड़ी', 'दूसरे के पैर', राम कुमर की 'मिमिट्री' दूधनाथ सिंह की 'रीछ' आदि।

नयी कहानी मे भाषा और शिल्प दोनो दृष्टियो से सफलतम् प्रयोग परिलक्षित होते है। भाषा की भूमि पर नयी कहानी ने अपने समय की परिस्थितियो से भाषा को चुना है। क्योकि नये कहानीकारो ने न तो भाषा को गढने का अतिरिक्त प्रयास किया है और न तो पच्चीकारी द्वारा भाषा को बोझिल बनाया है। नयी कहानियाँ भाषा रचना की अनिवार्य अग बनकर उभरी। प्राय नये कहानीकार ऐसा मानते है कि— 'कथ जिन्दगी का सीधा अनुवाद है, वहाँ शब्द और उसके पीछे का चित्र अलग खड़ा होकर नही बोलता, वह भाषा मे ढल कर और घुलकर सम्पूर्ण स्थिति का चित्र और स्वर बनता है।'[1]

नयी कहानी एक प्रकार की रचनात्मक भाषा है। अभिव्यक्ति के स्तर पर इनमे नये-नये प्रयोग मिले है। मोहन राकेश ने कहा है— 'नयी कहानी मे आरम्भ से हर लेखक ने वस्तु की अपेक्षाओ के अनुसार, अपनी अलग-अलग शिल्प, शैली का विकास किया। हर कहानीकार आरभ से ही अपने अलग-अलग व्यक्तित्व को लेकर चला और किसी दूसरे या किन्ही दूसरो के व्यक्तित्व मे उसने अपने को खो जाने नही दिया।'[2]

१ राजेन्द्र यादव, 'कहानी : स्वरूप और सवेदना कथा साहित्य की भाषा', पृ० १७७।
२ मोहन राकेश बकलम खुद, पृ० १००।

उपसंहार

साहित्य मानव जीवन और समाज तथा उसके परिवेश के यथार्थ का सौन्दर्य परक चित्रण करता है, और समाजशास्त्र मानव के उद्भव और विकास का अध्ययन प्रस्तुत करता है। दोनो ही विषयो का सम्बन्ध अतीत और वर्तमान तथा भविष्य से है। दोनो ही विषय मनुष्य की सामाजिकता को अपने निरूपण का विषय बनाते है। साहित्य सवेदना और कथा का आधार लेकर एक जीवित जागृत ससार का पुनर्निमाण करता है जबकि समाजशास्त्र समाज के उद्भव और विकास को परिभाषित, व्याख्यायित और सिद्धान्तनिष्ठ बनाता है।

समाजशास्त्र, मानव समाज का विश्लेषण करता है। वह सामाजिक विवरण को रेखाकित करता है और उसके पतन के कारणो तक जाता है, उन्नत समाजो के भीतर झाँकता है और दूसरे पतनोन्मुख समाजो के सामने एक आदर्श रखता है।

नयी कहानी का समाजशास्त्र शोध प्रवध को विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय साहित्य के विवेचन की समाजशास्त्रीय पद्धति इस अध्याय मे साहित्य एवं समाज की मूल अवधारणा को समझने का उपक्रम है। निश्चय ही कृतिकार समाज का द्रष्टा, उपभोक्ता, निर्माता एव प्रवक्ता होता है। वह समाज मे रहकर समाज के लिये सृजन कर्म मे संलग्न होता है। पाश्चात्य विचारको के अध्ययन को समेटने के क्रम मे इस स्थापना को साहित्य समाज का नियामक होता है और जीवन की समीक्षा भी साहित्य है एवं भारतीय चिन्तन के अनुसार मनुष्य की प्रज्ञा-प्रतिभा ज्ञान और सकल्प को अवधारणा के सम्यक् योग को भी इसी सदर्भ मे विवेचित करने का यथा सम्भव प्रयास इसी अध्याय मे है।

उपर्युक्त सोच मे पाश्चात्य-पौर्वात्य समीक्षको की विचारधाराओ से पुष्ट करते हुए, साहित्य के समाजशास्त्रीय सन्दर्भों को, समाजशास्त्रियो, विचारको की सोच के क्रम मे उठाने का उपक्रम भी किया गया है। अन्त मे हम इस विचार पर पहुँचते है कि रचना, रचनाकार और साहित्य के आपसी सरोकारो को समझने के लिये समाजशास्त्रीय पद्धति अपरिहार्य औजार हो सकती है।

शोध के दूसरे चरण का शीर्षक है 'साहित्यिक स्वरूपो का समाजशास्त्रीय अर्थ' इस संदर्भ मे सर्वप्रथम यह प्रयास किया गया है कि समाज की शास्त्रीय अवधारणा

को समझा जाय पाश्चात्य समाजशास्त्रियो आगम्ट, काण्ट, स्पेमर से लेकर चार्ल्सबुथ, गिन्सवर्ग की सोच के समान्तर ही। शोध के स्तर पर समाजशास्त्रीय अवधारणा को जानने के क्रम मे यहाँ समाज अर्थ विवृत्ति और स्थिति उपशीर्षक के अन्तर्गत हमने सामाजिक संरचना के मूल आधार को विश्लेपित करने का प्रारंभिक प्रयास किया है। रीति-रिवाज, कार्य-प्रणाली और अधिकार जैसे तत्वों के द्वारा ही समाज की पहचान होती है। व्यवहार के नियम विशेष कार्य प्रणाली का अन्दाज चलता है। जिसमे समस्याओं का समाधान होता है। अधिकार राज्य द्वारा प्रदत्त परमानुमोदित होते है। जिससे संगठन बनता व मजबूत होता है। परस्पर अवलम्बिता ही सामाजिकता कही जा सकती है।

इस प्रकार मानवीय सम्बन्ध और उसके निर्वाह की स्वीकृति विधि ही समाज है जैसे व्यापक स्वीकृति प्राप्त हो। इसी के विस्तार क्रम मे समुदाय, समिति तथा व्यक्ति और समाज के सन्दर्भो को भी जानने का प्रयास हमारा रहा है। यह सोच कि समाज कृत्रिम नही स्वाभाविक सरचना है, जो धर्म, प्रथा, सस्था द्वारा नियत्रित होता है। साहित्य और समाज शीर्षक के भीतर यह विचार उभरा है कि साहित्य मे मनुष्य के जीवन का प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय समाज की स्थिति का सम्यक् विवेचन करते हुये हम धर्मगाथाओं, मिथको, लोकवार्ताओ, पुराकथाओं के अवदान को रेखांकित किया है।

पाश्चात्य चिन्तको की चर्चा से हमने विचारक्रम को आगे बढाया है। क्रोचे, कीर्कगार्द एवं ज्या पाल सार्त्र ने अस्तित्व की चिन्ता से सामाजिक सोच को संवलित किया एव भारत के समाज सुधारकों ने एक सुनिश्चित सोच एवं सरणि दी। हिन्दी साहित्य मे सामाजिक सन्दर्भो को रूपायित करने वाली महनीय चेतना को भी हीं रेखांकित करने का प्रयास हमने किया है।

शोध का तीसरा चरण 'नयी कहानी के विकासक्रम की ऐतिहासिक सामाजिक दृष्टि' पर विचार से प्रारंभ किया गया है और परिस्थिति तथा परिवेश की अनिवार्य परिणति के रूप मे सम्भव विधा के रूप मे कहानी बहुआयामी स्वरूपो मे उभरी उसे चिह्नित किया गया है। राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक परिवर्तन और यांत्रिक उपलब्धियों ने जीवन को जटिल तथा समाज को बहुद्देश्यीय धाराओ मे प्रवर्तित किया। इस प्रसंग मे भारतीय राजनीति मे होने वाले बदलाव तथा जनमानस मे राष्ट्रवाद-जनवाद की लहरो ने आदमी को विशेषत. मध्यमवर्ग को नयी जीवन पद्धतियो से जोड़ने का विभास किया। मशीनीकरण ने भावुता को भोथरा कर दिया। रूढ़ियो से मुक्ति के अनेक सुधारवादी प्रयासो ने नये तरीके से सोचने जीवन-जीने की ललक को जन्म दिया। प्रगति, प्रयोग तथा मनोविश्लेषण की राह पर चलते हुए नये सर्जको ने प्रयोग से आगे बढ़कर यथार्थ और अनुभूत सत्यो को उद्घाटित करने का उपक्रम प्रारम्भ किया।

प्राथमिक चरण की सूचनात्मक, व्याख्यात्मक, सुधारवादी, वृत्तिपरक, आदर्शवादी कहानियो के बाद प्रेमचन्द ने यथार्थवादी रुझान का सकेत दिया और कहानी को मध्यमवर्ग की जीवनधारा का परचम बनाया। अज्ञेय, यशपाल, जैनेन्द्र, अश्क ने मानव-मन के परतो को उघारने, उकेरने का उपक्रम किया। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात आदर्शवादिता से मोहभंग होता है और समाजवादी, समाज के गठन की दिशा मे नये प्रयोग प्रारभ होने लगते है। सेवंदनशीलता से सयुक्त व्यक्ति मे टूटन, एकाकीपन, घुटन, सत्रास और पीड़ा ने उसके स्वर को स्पष्टता दी। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर ने नयी कहानी को एक स्वतंत्र आन्दोलन स्वीकार किया है।

डॉ० नामवर सिंह ने 'परिन्दे' को प्रथम नयी कहानी माना है। नयी कहानी आन्दोलन के प्रारंभ मे नगरबोध एव ग्रामबोध का सवाल उठाया गया। रेणु, शिव प्रसाद सिंह तथा मार्कण्डेय ने ग्रामबोध को पूरी शिद्दत से स्थापित करने की पहल की। धर्मवीर भारती, कमलेश्वर और उषा प्रियम्वदा ने सार्थक पहल करके नयी कहानी के फलक को विस्तार दे दिया। कई चर्चित कहानियो के साकेतिक उल्लेख से पूरी सोच को व्याख्यायित करने का प्रयास यही शोधार्थी द्वारा किया गया है। चूंकि शोध की एक सीमा है अतएव उसे अप्यावधि विस्तार नही दिया गया है।

चतुर्थ चरण मे हमने नयी कहानी के आधारभूत तथ्यो से चर्चा को उठाने की कोशिश की है। परिवेश तथा परिस्थितिगत स्थितियो के आलोक मे नयी कहानी कैसे उभरी इस आख्यान के साथ चर्चा प्रारभ की गयी है कि कैसे स्वतत्रता प्राप्ति के बाद स्थितियो मे परिवर्तन आया, मोहभग हुआ। विघटन, अनास्था और मूल्यहीनता ने इस दौर के आदमी को झकझोर कर रख दिया था। नया समाज द्वन्द्व, द्विधा और विषाद तथा व्यथा से व्याकुल हो उठा। यात्रिकता के पाश मे आबद्ध समाज लाचार, बौना तथा विरूप होता जा रहा था। विभाजन, सीमा-विवाद, भाषा-समस्या, गरीबी, बेरोजगारी, शहरीकरण, परम्परित जीवन पद्धति से विदकी हुई नयी पीढी शहरो की झुग्गी झोपड़ियो मे शरण देने लगी। उपर्युक्त स्थितियो मे परिवेश की सचाई तथा भोगे हुए क्षणो के यथार्थ को शब्दबद्ध किया नयी कहानी ने। आधुनिकता के मूल्यो-मान्यताओ ने स्वार्थी अहलकारो की लूट-खसोट, मिलावट की नयी तकनीक से समाज को वाकिफ कराया। नयी कहानी के रचनाकारो मे मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर का आना एक परिवर्तन का सूचक सिद्ध हुआ। मोहन राकेश लोकप्रिय कथाकार है। 'इन्सान के खण्डहर', 'नये बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और जिन्दगी' का यह कृतिकार 'अपनी पहचान', 'मिले जुले चेहरे तथा रोये तथा रेशे' से बुनता है। *कमलेश्वर* की कीर्ति का आधार उनकी कृतियाँ है। विशेषत 'राजा निरबसियाँ', 'कस्बे का आदमी', 'खोयी हुई दिशाएँ', 'मास का दरिया'। राजेन्द्र यादव 'उखड़ी हुई चेतना', 'उखड़े हुये'

लोग के यशस्वी कथाकार हैं। 'जहाँ लक्ष्मी कैद' है तथा 'छोटे-छोटे ताजमहल' की अनन्त प्रतीक्षा मे निरन्तर संरचनाशील बने रहते हैं। विदेशी पृष्ठभूमि और मानसिकता के कृतिकार हैं। 'परिन्दे' उनकी कालजयी रचना हैं। नयी कहानी के क्षेत्र मे मन्नू भण्डारी भी एक यशस्वी रचनाकार है। अकेली कहानी मे वे अकेलेपन के बोध को उजागर करती है। पीढ़ियो के अन्तर की पीड़ा को उन्होंने मजबूती मे उभारा है। उषा प्रियम्वदा की 'वापसी' सेवानिवृत्त वृद्ध की त्रासदी का जीवन्त दस्तावेज है।

मार्क्सवादी चेतना और लोकानुभाव के यशस्वी कथाकार मार्कण्डेय, 'हसा जाई अकेला', 'पान फूल', 'महुवे का पेड़', अमरकान्त नयी संवेदना और शिल्प से विशिष्ट प्रतीत होते हैं। धर्मवीर भारती और रेणु शहर तथा गाँव के लोकमन को उठाते हैं।

पाँचवे अध्याय का शीर्षक है नयी कहानी के वस्तुतत्व का समाजशास्त्रीय विश्लेषण इस स्तर पर आकर मैंने नयी कहानी के विशिष्ट एवं चर्चित प्रमुख रचनाककारो की रचनाओ का अनुशीलन करने का प्रयास किया है। यह प्रयास लीक से हटाकर अलग तरके से नये प्रकार मे संयोजित है, क्योकि हमने सीधे कथाकार की भाषिक अभिव्यक्ति को उनके परिवेश और प्रयास से जोड़कर देखने का उपक्रम किया है। इस दिशा मे स्थापित समीक्षकों की स्थापनाओ का उल्लेख करते हुए पहले उनके निष्कर्षो का सम्यक् प्रस्तुतीकरण किया है। नयी कहानी के परिवेशगत यथार्थ के कतिपय उल्लेखनीय विन्दुओ को सिलसिलेवार देखने का उपक्रम किया है। व्यक्ति को उसकी सामाजिक पीठिका और परिवेश मे रखकर देखने की प्रारंभिक कोशिश से बात को आगे बढ़ाया है। तथा सामाजिक यथार्थ के बीच व्यक्ति को प्रतिष्ठित करके देखने का प्रयास किया है। नयी कहानी का चेतना और व्यक्ति-मन की उलझन नयी कहानी मे उभरकर आयी। वर्तमान के संश्लिष्ट यथार्थ स्थिति के प्रति जागृत विवेक से नयी कहानी सृजित है। कमलेश्वर की 'तलाश' तथा मन्नु भण्डारी की 'बन्द दरवाजो के साथ' कहानी में नारी की नवीन यातना, छटपटाहट, को अकेलेपन और विरूपता को उभारा गया है। प्रे' त्रिकोण, परिवार एवं समाज से विघटन विविध मुद्दो को भी चर्चित रचनाकारो ने बार-बार उठाने-सिरजने का प्रयास किया है।

नयी कहानी का वस्तुतत्व है जिन्दगी जिन्दगी सामाजिक सरोकारो से जुड़ती है। जुड़ाव, टकराव संघर्ष सभी इसी जिन्दगी मे घटित होते हैं इन्ही से समाज मे मानव जीवन का आंकलन भी होता है। सामाजिक बोध और स्थिति का विन्यास यहाँ महत्वपूर्ण घटक बनता है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि नयी कहानी, नये संक्रमणशील, समाज की हर कोशिशो, प्रयासो को चुनती, बुनती है। इससे निष्कर्ष तो नही मिलता पर समाज की दशा-दिशा तय जरूर होती है।

शोध का छठा भाग 'नयी कहानी का संरचनागत समाजशास्त्रीय विवेचन' से सम्बद्ध

है। नयी कहानी वस्तु एवं शिल्प दोनो दृष्टियो से इतर तथा भिन्न प्रतीत होते है। नयी कहानी के कथाकार मानसिक सूक्ष्म व्यापारो को सकेतो, व्यजनाओ मे व्यक्त करने वाले अमूर्तन की ओर बढ़ गये थे। इस सदर्भ मे राजेन्द्र यादव ने लिखा कि भाषा रचनाकार को समाज से ही मिलती है। और इस सूक्ष्मतर होते जाते औजार को कृतिकार माज कर समाज को ही सौंपता है। अज्ञेय ने भाषा की रचनाशीलता पर बल दिया है।

नयी कहानी की भाषा यथार्थ की स्वीकृति के साथ तत्सम, तद्भव, देशज एव बोलियो के सहज चलते प्रयोगो को उठाती है। वे नये प्रतीक चुनते हैं तथा प्रतीको से अछूते बिम्बो को सृजित करते चलते हैं। राजेन्द्र यादव भाषा का औजार बनाते हुए जटिलतर होते जाते है। कमलेश्वर के लिये वह रचनात्मक तनाव से मुक्ति का प्रयास है। जहाँ घटना नही क्षण, चरित्र नही मन केन्द्र मे हो वहाँ भाषा का सकेत प्रवण हो जाना सहज होता है। सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से कमलेश्वर की भाषा इन कथाकारो की सामाजिक सोद्देश्यता को उजागर करती है। निर्मल वर्मा की कहानियाँ विदेशी पृष्ठभूमि पर रचित है। वे परिवेश तथा परिस्थिति का सयोजन भी पाश्चात्य प्रभावो की पृष्ठभूमि मे करते हैं। 'कुत्ते की मौत' मे वे उर्दू के दायरे मे बाधते है। तो 'परिन्दे' मे विदेशी प्रतीकात्मकता का दामन सहेजते हुए से प्रतीत होते हैं।

उषा प्रियवदा सीधी, सहज, सरल सपाटबयानी की राह पकड़ती है। वे मध्य वित्त परिवारो की नयी बनती हुयी सामाजिकता को रोजमर्रा की भाषा मे उठाती है। फणीश्वरनाथ रेणु की आचलिकता उन्हे विशिष्ट आधार देती है। उनकी भाषा मे माधुर्य एवं लालित्य आंचलिकता के प्रति आग्रह का ही विशेष परिणाम है इसी क्रम मे वे शब्दो को भी तोड़कर गँवई टच देते चलते हैं। 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' मे उनकी भाषा सांकेतिक, बिम्बात्मक एवं सगीतमय गद्य की सरचना करती है। वे मैथिली, मगही, भोजपुरी क्रियाओ से नया बिम्ब गढ़ते है। और लय से सामाजिक एक लयता को उभारते है। शिव प्रसाद सिह गवई चित्तवृत्ति के यशस्वी कृतिकार रहे हैं। वे सकारात्मक जीवन मूल्यो के लिये वर्जनाओ का अतिक्रमण करते हैं और बदलते हुए समाज की नयी बोली-बानी को अख्तियार करते है। वे बिम्बधर्मी प्रतीको का सहज निर्वाह करते हैं। वे शब्दो के विकृत, अग्रेजी के प्रचलित प्रयोगो को भी सहेजते है ताकि परिवेश को ध्यान मे रखकर सामाजिक सरोकारो से जुड़े रहने वाले अप्रतिम कृति रहे हैं, उनकी भाषा मे लयात्मक प्रवाह है पर वह समाज के भीतर की टूटन, घुटन को बड़ी ही तल्खी से उठाकर भी सहज, सामान्य कर देते है। जबकि मार्कण्डेय भाषिक स्तर पर प्रेमचन्द की सहज, सरल, बोधगम्य परम्परा को ही आगे बढ़ाते हैं। अमरकान्त और बटरोही, ज्ञानरंजन तथा दूधनाथ नयी भाषिक सरचना से नये समाज मे होने वाले त्वरित परिवर्तनो को सहेजते है। इस प्रकार नयी कहानी की भाषा वृहत्तर समाज के अनुरूप

निरन्तर परिवर्तित, प्रवाहमान, गत्यात्मक तथा सांकेतिक बनी रहती है।

उपर्युक्त अध्ययन, विश्लेषण में जो निष्कर्ष सामने आते है उनको क्रमश: व्यवस्थित करने से शोध-कार्य की उपयोगिता एवं पूर्णता दोनो प्रतिफलित होती है। साहित्य समाज को उजागर करता है तथा समाजशास्त्र मे साहित्य नियत्रित होता है। यह अवधारणा सहज ही स्वीकृति प्राप्त करती है। रचना, परिवेश, भाषिक अभिव्यक्ति को समसामयिक समाज मे ही, समाज से ऊर्जा मिलती है और एक परिवर्तित होता हुआ समाज ही रचना मे रूपायित होता है। इस दृष्टि मे दोनो पूरक है। परस्पर अवलम्बित हैं। साहित्यिक स्वरूप सामाजिक दबावों मे ही उभरता है। इस दृष्टि मे सामाजिक सन्तरण, परिवर्तन, परिवर्धन की सापेक्षता मे ही साहित्य प्रतिफलित होता है। एतदर्थ समाजशास्त्रीय अध्ययन की विकासमान गति व परम्परा का अध्ययन जरूरी है। नयी कहानी के ऐतिहासिक, सामाजिक परिदृश्य के अध्ययन मे राजनीतिक, सामाजिक परिवेश की चर्चा उठायी गयी है तथा उसके परिणाम व्यक्ति को रचनाधर्मी को कैसे, कितना और क्यों कर प्रभावित प्रेरित तथा प्रोत्साहित करते है का सकेत उभारा गया है। परिवेश, परिस्थिति, परिवर्तनो ने कैसे नयी कहानी को अग्रगामी, बहुआयामी बनाया है इसका भी लेखा जोखा किया गया है। तथा चर्चित साहित्यकारो की प्रसिद्ध प्रतिनिधि रचनाओ के माध्यम से सामाजिक सरोकारो को चिह्नित करके उनकी स्थिति मे समाजशास्त्रीय आधारों को पुष्ट किया गया है, साथ ही भाषिक सर्जना के अध्ययन द्वारा सामाजिकता के दबावो को रेखांकित करने का प्रयास भी यहाँ दिखाया गया है। इस प्रकार यह अध्ययन अपनी सीमा में भी एक दिशा की ओर संकेत करता है तथा समीक्षा के नये आयाम की ओर सुधी चिन्तकों को आकृष्ट करेगा ऐसा मेरा अपना भरोसा और विश्वास कुछ और मजबूत हुआ है।

❖❖❖

सहायक ग्रंथ-सूची

१. भेड़िये. *शिवप्रसाद सिंह,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

२. परिन्दे *निर्मल वर्मा,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

३. कहानी. नयी कहानी *नामवर सिंह,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

४ खेल-खिलौने *राजेन्द्र यादव,* भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।

५. छोटे-छोटे ताजमहल *राजेन्द्र यादव,* राजपाल एण्ड सस, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

६. राजा निरबसिया. *कमलेश्वर,* भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।

७ मांस का दरिया. *कमलेश्वर,* भारती प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२।

८. जिन्दगी और गुलाब का फूल *उषा प्रियम्वदा,* भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।

९ पान-फूल *मार्कण्डेय,* नया साहित्य प्रकाशन, मिंटो रोड, इलाहाबाद।

१०. एक दुनिया समानान्तर सम्पादक एवं भूमिका लेखक *राजेन्द्र यादव,* अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली।

११. मेरी प्रिय कहानियाँ *उषा प्रियंवदा,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

१२. आज की हिन्दी कहानी विचार और प्रतिक्रिया, *मधुरेश* ग्रन्थ निकेतन, रानीघाट, पटना।

१३. कोसी का घटवार *शेखर जोशी,* नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद।

१४ जिन्दगी और जोक. *अमरकान्त,* राजपाल एण्ड सस, दिल्ली।

१५ टूटना और अन्य कहानियाँ *राजेन्द्र यादव,* अक्षर प्रकाशन, प्रा०लि०, दिल्ली।

१६ ठुमरी *फणीश्वरनाथ रेणु,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६।

१७ दूसरे किनारे से *कृष्णदेव वेद,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-६।

१८ नयी कहानी की भूमिका *कमलेश्वर,* अक्षर प्रकाशन, प्रा०लि०, दिल्ली।

१९. मेरी प्रिय कहानियाँ *इलाचन्द्र जोशी,* राजपाल एण्ड सस, दिल्ली-६।

२०. कहानीकार मोहन राकेश *डॉ० सुषमा अग्रवाल,* पचशील प्रकाशन, जयपुर।

२१ कहानीकार कमलेश्वर सदर्भ और प्रकृति *सूर्यकान्त मा० रण सुधे,* पचशील प्रकाशन, जयपुर।

२२ नयी कहानी की मूल सवेदना *डॉ० सुरेश सिन्हा,* भारतीय निकेतन, दिल्ली-६।

२३. हिन्दी कहानी अन्तरग पहचान *रामदरश मिश्र,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

२४ मेरी प्रिय कहानियाँ *राजेन्द्र यादव,* राजकमल एण्ड सस, कश्मीरी गेट, दिल्ली।
२५ हिन्दी कहानी उद्‌भव और विकास *डा. सुरेश सिन्हा,* अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।
२६ कहानी स्वरूप और सवेदना *राजेन्द्र यादव,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
२७ मेरी प्रिय कहानियाँ *कृष्ण बलदेव वेद,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-६।
२८ मेरी प्रिय कहानियाँ *कमलेश्वर,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-६।
२९ जहां लक्ष्मी कैद है। *राजेन्द्र यादव* अक्षर प्रकाशन, दरियागज, दिल्ली-६।
३० नये बादल *मोहन राकेश,* भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
३१ साहित्य का समाजशास्त्र-*डॉ. बच्चन सिंह,* लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
३२ साहित्य मे समाजशास्त्र की भूमिका *डॉ. मैनेजर पाण्डेय।*
३३ विघटन का समाजशास्त्र *राजेन्द्र जायसवाल।*
३४ आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य मे प्रगति चेतना-*डॉ० लक्ष्मणदत्त गौतम।*
३५ आधुनिक कहानी का परिपार्श्व- *लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।*
३६ मेरी प्रिय कहानियाँ *निर्मल वर्मा।*
३७ आधुनिक हिन्दी कहानी. समाजशास्त्रीय दृष्टि- *डॉ० रघुवीर सिन्हा।*
३८. धर्मवीर भारती और कमलेश्वर की कहानियाँ: एक तुलनात्मक अध्ययन, *प्रो० कमलेश।*
३९ नयी कहानी. संदर्भ और प्रकृति. *देवीशंकर अवस्थी।*
४०. कहानीकार कमलेश्वर· सन्दर्भ और प्रकृति. *सूर्यनारायण।*

पत्र-पत्रिकाएँ

सारिका
संचेतना
ज्ञानोदय
कल्पना
माध्यम
कहानी
धर्मयुग
आलोचना
आजकल